राजभाषा भारती

'आर्थिक सुधार' विशेषांक

भारत सरकार
गृह मंत्रालय
राजभाषा विभाग

राजभाषा भारती

(आर्थिक सुधार विशेषांक)

वर्ष : 22 अंक : 88
मार्च : 2000
निःशुल्क वितरण के लिए

संपादकीय

नई सहस्राब्दि के उपलक्ष्य में 'राजभाषा भारती' की ओर से अपने सभी पाठकों को हार्दिक शुभकामनाएं। जैसाकि आप जानते हैं 14 सितम्बर, 1999 से राजभाषा हिंदी की स्वर्ण जयंती मनाई जा रही है। इस ऐतिहासिक अवसर पर विभाग द्वारा 'राजभाषा भारती' का एक स्वर्ण जयंती विशेषांक निकाला गया था। उक्त विशेषांक का विमोचन महामहिम उपराष्ट्रपति जी द्वारा 24 दिसम्बर 1999 को विज्ञान भवन में आयोजित एक भव्य समारोह में किया गया था। संदर्भित विशेषांक को भाषा और साहित्य संबंधी विषयों तक सीमित न रखकर उसमें आधुनिक ज्ञान की विभिन्न विधाओं से संबंधित विद्वानों के लेख भी शामिल किए गए थे। तकनीकी विषयों पर लेखों को संकलित करने का मूल उद्देश्य इस आशय का एक स्पष्ट संकेत देना था कि हिंदी ज्ञान–विज्ञान सहित आज के युग की सभी विधाओं की प्रभावी अभिव्यक्ति करने में पूर्णतः सक्षम है।

हमें अपने पाठकों को यह सूचित करते हुए हर्ष हो रहा है कि उक्त विशेषांक के बारे में हमें हिंदी के विद्वानों तथा अपने सुधी पाठकों से बहुत उत्साहवर्धक प्रतिक्रियाएं प्राप्त हुई हैं। उन्हीं से प्रेरणा लेते हुए 'राजभाषा भारती' का प्रस्तुत अंक आर्थिक सुधारों के विभिन्न पहलुओं को लेकर निकाला गया है। हम आशा करते हैं कि यह अंक भी हमारे पाठकों को पसन्द आएगा।

उप संपादक :
सुरेंद्र लाल मल्होत्रा
दूरभाष : 4698054

संपादक :
(प्रेम कृष्ण गोरावारा)
दूरभाष : 4617807
(बृजमोहन सिंह नेगी)
दूरभाष : 4617764

(पत्रिका में प्रकाशित लेखों में व्यक्त किए गए विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखक के हैं। सरकार अथवा राजभाषा विभाग का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।)

पत्र-व्यवहार का पता :
संपादक, राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, लोकनायक भवन (दूसरा तल)
खान मार्किट
नई दिल्ली–110 003

विषय सूची

* आर्थिक सुधारों के लिए प्राथमिकताएं	डॉ. एम.एस. आहलूवालिया	1
* विश्व व्यापार संगठन	डॉ. रमाकान्त	21
* उदारीकरण और आर्थिक विकास	डॉ. (श्रीमती) माया दे. केम	32
* भारत में आर्थिक पुनर्रचना	पी.वी. राजीव	35
* व्यापार में उदारीकरण के पहलू	अरुण गोयल	48
* देश आर्थिक प्रगति की ओर	नवीन पन्त	54
* भारत में उदारीकरण की नीति–एक आकलन	डॉ. जे.पी. नौटियाल	58
* भारत में उदारीकरण की नीति–लघु उद्योगों के संदर्भ में आकलन	श्रीनिवास कृष्णन	64
* वित्तीय क्षेत्र में सुधार : बैंकिंग के परिप्रेक्ष्य में	बी.एन. सेठ	71
* भारत में आर्थिक सुधार और वैश्विक अर्थतंत्र	जितेन्द्र गुप्त	77
* भारत के संदर्भ में पर्यावरण अनुकूल विकास	पूर्णिमा एम. गुप्ता	81
* भारतीय औद्योगिक नीति	सी.पी. आर्या	84
* भारतीय अर्थव्यवस्था और सहकारिता	देवेन्द्र उपाध्याय	89
* सब्सिडियां देना कितना उचित कितना अनुचित	वेद प्रकाश अरोड़ा	94
* भारत के ज्ञानाधारित आर्थिक समाज का भविष्य	पूरन पाल	100
* प्रबंध में कार्मिकों की भागीदारी	अमरेश्वर मिश्र	108
* भारतीय निर्यात–एक दृष्टिकोण	हेमन्त श्रीवास्तव	111
* बैंकिंग : कल आज और कल	विजय कुमार गुप्त	114

आर्थिक सुधारों के लिए प्राथमिकताएं

(तेरहवें जवाहर लाल नेहरू मेमोरियल इफ्को लेक्चर के अवसर पर)

—डॉ. मोन्टेक सिंह आहलूवालिया

मुझे अत्यधिक गर्व का अनुभव हो रहा है कि मुझे इफ्को द्वारा आरंभ की गई जवाहर लाल नेहरू मैमोरियल की व्याख्यान श्रृंखला का 13वां व्याख्यान देने के लिए आमंत्रित किया गया। अमूमन ऐसे स्मृति-व्याख्यानों की शुरूआत उस व्यक्ति के बारे में दो शब्द कह कर की जाती है जिसकी स्मृति में व्याख्यान आयोजित किए गए हों। और जब वह व्यक्ति पंडित जवाहर लाल नेहरू हो, तो यह समझ पाना मुश्किल हो जाता है कि कहां से शुरूआत की जाए और कहां समाप्ति। यह बात खासतौर से मेरी पीढ़ी के लोगों के सामने आती है। जब भारत को आज़ादी मिली, उस समय मैं चार वर्ष का था और अगले सत्रह वर्षों के दौरान, जो स्कूल और कॉलेज में मेरे विकास का समय था, हम सब यह सोच कर निश्चिंत थे कि सरकार की बागडोर एक ऐसे व्यक्ति के हाथ में है जो स्वतंत्र भारत का एक बेजोड़ नेता है और हाल ही में मिली स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए किए गए संघर्ष की जीती-जागती मूर्ति है। हमने उन्हें एक ऐसे कर्मठ व्यक्ति के रूप देखा जो एक आधुनिक, धर्मनिर्पेक्ष और आर्थिक रूप से सशक्त भारत के निर्माण में जुटा था और जो श्रेष्ठतम स्तर की राजनीतिज्ञता का एक ज्वलंत उदाहरण था और यह बात हमारे लिए और भी अधिक गर्व और सुकून की थी कि सम्पूर्ण विश्व भी उनके बारे में ऐसा ही सोचता था।

नेहरू जी की रुचियां इतनी व्यापक थीं कि कोई भी ऐसा विषय नहीं होगा जो उनकी स्मृति में दिए जा रहे व्याख्यान के लिए उपयुक्त न हो। हालांकि हम एक ऐसे मोड़ पर खड़े हैं जहां आर्थिक सुधारों का एक दशक समाप्त होने जा रहा है और हम नई संहस्त्राब्दि की चौखट पर भी खड़े हैं, अतः हमें निश्चित रूप से आगे की ओर देखना है, इसलिए मैंने सोचा कि नई सहस्त्राब्दि के पहले दशक की देहलीज पर पांव रखते हुए क्यों न यह व्याखन आर्थिक सुधारों की प्राथमिकताओं पर आधारित हो।

[illegible]कारात्मक विशेषताएं

[illegible]भविष्य के लिए नीति संबंधी एजेंडा निर्धारित करते समय यह ज़रूरी है कि मौजूदा [illegible]तियों और कमज़ोरियों पर नज़र डाली जाए और कमज़ोरियों को दूर करते हुए शक्तियों को बढ़ाया जाए। यह स्वाभाविक है कि सार्वजनिक चर्चा का केन्द्र सामान्यतः हमारी कमज़ोरियां होती हैं और इसीलिए यह हमेशा निरूत्साहित करने वाली प्रतीत होती हैं। परन्तु मुद्दे को सही परिप्रेक्ष्य में रखते हुए मैं यह कहते हुए अपना व्याख्यान शुरू करना चाहूंगा कि हम कुछ महत्वपूर्ण शक्तियों के साथ नई सहस्त्राब्दि में प्रवेश कर रहे हैं। मैं इनमें से केवल

तीन शक्तियों का जिक्र करूंगा :—

* पहली, आज हमारी वृद्धि दर हताश कर देने वाली 3.5% से 4% की धीमी वृद्धि दर से कहीं बेहतर है जो हमें स्वतंत्रता के बाद पहले तीन दशकों में दखने को मिलती थी। वर्ष 1980 में भारत के सकल घरेलू उत्पादक की औसत वृद्धि 5.8% थी। आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992-93 से 1996-97) की अवधि के दौरान यह तेज़ी से बढ़कर लगभग 6.5% हो गई और आशा है कि नवीं योजना के दौरान भी यह वृद्धि दर बनी रहेगी। यह रिकार्ड इस बात की ओर संकेत करता है कि भारतीय अर्थव्यवस्था नई नीतियों को भली-भांति अपना रही है। सामान्यतः हम यह महसूस नहीं करते। अगर हम 1980 और 1990 के दशकों पर नज़र डालें तो पाएंगे कि भारत, विश्व की तेज़ी से बढ़ती अर्थव्यवस्थाओं में से एक रहा है।
* भारत की जनता में शिक्षा की कमी हमारे विकास की संभाव्यता की राह में एक बड़ी बाधा रही है। हमने हमेशा अपने अत्यधिक कुशल कार्मिकों, अपने वैज्ञानिकों, अपने प्रबंधकों और हाल ही में अपने सॉफ्टवेयर विशेषज्ञों की योग्यता पर गर्व महसूस किया है। किंतु हमारी अधिकांश जनता के शिक्षा का सामान्य स्तर बड़े लंबे समय से अत्यधिक निम्न रहा है। वर्ष 1951 में प्रौढ़ साक्षरता केवल 18.3% थी और 1960 में यह बढ़कर केवल 28.3% हुई और 1971 में केवल 34.3%। निस्संदेह प्रारंभिक वर्षों में यह हमारे लगातार धीमी गति से विकास का एक कारण रहा है। एन.एस.एस. द्वारा हाल ही में किए गए प्राक्कलन से पता चलता है कि 1996-97 में साक्षरता बढ़कर 62% हो गई थी। यह भी कम थी, किंतु अब यह उस सीमा में है जो 7 से 8% की वृद्धि दर प्राप्त करने के लिए उपयुक्त है।
* जनसंख्या की वृद्धि दर लंबे समय से 2% से अधिक तक बनी रही। अब आखिरकार इसमें गिरावट आ रही प्रतीत होती है। इस क्षेत्र में तमिलनाडु की उपलब्धियां केरल की प्रशंसनीय उपलब्धियों के बराबर रही हैं और ऐसा लगता है कि आंध्र प्रदेश और कर्नाटक भी पीछे नहीं रहेंगे। उत्तरी राज्यों में जन्म दर काफी अधिक है पर इन राज्यों में भी अब इन दरों में गिरावट आ रही है। आशा की जा रही है कि अगले दशक में भारत की जनसंख्या की वृद्धिदर कम होकर 1.5% तक आ जाएगी।

ये सकारात्मक विकास अगले दशक में हमारे भविष्य को महत्त्वपूर्ण ढंग [illegible] करेंगे। यदि दशक के प्रारंभ में ही सकल घरेलू उत्पाद लगभग 6.5% से ब[illegible] फिर दशक के अंत में 8% किया जा सके तो पूरे दशक के लिए हमारी वृ[illegible] 7.5% हो जाएगी। यदि जनसंख्या की वृद्धि दर 1.5% हो जाती है, तो इसका प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि दर लगभग 6% वार्षिक हो जाएगी। वृद्धि का यह के दौरान रही वृद्धि दर से काफी अधिक होगा और इससे कई प्रभावशाली हैं। यदि इसका वितरण समुचित ढंग से किया जाए तो अगले दशक के अंत तक गरीबी

के स्तर में निश्चित रूप से तेज़ी से गिरावट आएगी। बल्कि यह कहा जा सकता है कि जब तक हम इस स्तर तक वृद्धि प्राप्त नहीं कर लेते हम अपनी जनता के जीवन-स्तर में किसी महत्वपूर्ण सुधार की आशा नहीं कर सकते।

ऐसी वृद्धि की प्राप्ति के लिए, विशेष रूप से इसे व्यापक बनाने के लिए हमें कौन-कौन सी नीतियां अपनानी होंगी? सौभाग्यवश, आर्थिक नीतियों पर व्यावसायिक और राजनीतिक हलकों में भी अब पर्याप्त सहमति हो गई है। इस विषय पर आम सहमति व्यक्त की गई है कि आर्थिक सुधारों की प्रक्रिया को गहन और सशक्त बनाया जाना चाहिए और इसे कभी-कभी "सुधारों के दूसरे चरण" का क्रियान्वयन कहा जाता है। मैं इस बात से पूरी तरह सहमत नहीं हूं। इसका अभिप्राय यह है कि हमने सुधारों का पहला चरण सफलतापूर्वक पूरा कर लिया है और अब हमें इस क्रम में अगले चरण की ओर कदम बढ़ाना चाहिए। किंतु वास्तविकता कुछ और ही है। हमारे सामने जो सुधार का एजेंडा है उसे मैं तीन वर्गों में बांटूंगा :—

* इस एजेंडा की पहली मद जिस पर पर्याप्त सहमति है वह यह है, कि राजकोषीय नियंत्रण बहाल किया जाना चाहिए। वस्तुतः यह पहले चरण का सुधार है जिसे हम उस ढंग से पूरा नहीं कर पाए जैसी हमने योजना बनाई थी।
* दूसरी श्रेणी में पहले चरण के ऐसे सुधार आते हैं जो कुल मिलाकर सही चल रहे हैं किंतु इन्हें पूरा किया जाना अभी बाकी है क्योंकि सुधार कार्यनीति को चरणों में पूरा करना हमारी सुविचारित नीति है।
* अंतिम श्रेणी में वे सुधार आते हैं जिन्हें हम वास्तव में दूसरे चरण के सुधार कह सकते हैं; जिनमें सुधार प्रक्रिया ऐसे नए क्षेत्रों में अपनाई जानी हैं जिन क्षेत्रों में अभी तक इस दिशा में कुछ नहीं किया गया है।

2. राजकोषीय नियंत्रण

सबसे पहले मैं राजकोषीय नियंत्रण की बात करूंगा जो प्रथम चरण का ऐसा सुधार है जो बीच रास्ते में ही कहीं अधूरा रह गया। देश जिस वित्तीय समस्या का सामना कर रहा है उसकी गंभीरता इतने व्यापक स्तर पर महसूस की गई है कि इसे किसी परिप्रेक्ष्य में रखना लाभदायक होगा।

वर्ष 1991 में, जब आर्थिक सुधार प्रारंभ हुए थे, हमें असाधारण रूप से गंभीर संकट का सामना करना पड़ा था और केंद्र सरकार का वित्तीय घाटा जो गत वर्श में सकल घरेलू उत्पाद के 8.3% तक पहुंच गया था—इस संकट का मूल कारण माना जा रहा था। इससे वित्तीय सुधार की आवश्यकता तीव्र हो गई और पहले ही वर्ष में हमने वित्तीय घाटा कम करके उसे सकल घरेलू उत्पाद का लगभग 6% बना दिया। उस समय यह माना गया था कि यह भी बहुत अधिक था और इसे और कम किए जाने की आवश्यकता थी ताकि अर्थव्यवस्था

के लिए संसाधन उपलब्ध कराए जा सकें और ब्याज की दर कम की जा सके, ये दोनों ही उपाय निजी निवेश में तेज़ी लाने के लिए अत्यावश्यक थे। वर्ष 1993 में वित्त मंत्रालय द्वारा परिचालित एक परिचर्चा-पत्र में उल्लिखित मध्यावधि उद्देश्य यह था कि वर्ष 1996-97 तक वित्तीय घाटा कम करके लगभग 3% तक लाया जाए। दुर्भाग्यवश, यह लक्ष्य कभी पूरा नहीं किया जा सका। वर्ष 1996-97 में वास्तविक घाटा 5.2% था, जो 1997-98 में बढ़ कर 6% हो गया और इसके बाद यह लगभग इसी स्तर पर बना हुआ है। इसका परिणाम यह रहा है कि ब्याज की दरें काफी अधिक बनी हुई हैं।

इस दौरान, राज्यों की वित्तीय स्थिति में भारी गिरावट आई है, इनमें वे राज्य भी शामिल हैं जिनके विषय में यह कहा जाता है कि वहां बेहतर प्रशासन है। केंद्र की तरह राज्यों को स्वतंत्र रूप से ऋण लेने की छूट नहीं है और इससे उनका वित्तीय घाटा स्वतः सीमित हो जाता है। लेकिन, इसका अभिप्राय केवल यही है कि उनकी वित्तीय कमजोरियां गैर-योजना व्यय में अनियंत्रित वृद्धि और विभिन्न आर्थिक सेवाओं की आपूर्ति पर बढ़ते हुए घाटे में परिलक्षित होती है। इस समस्या के पैमाने का अंदाजा इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि सभी राज्य विद्युत बोर्डों के घाटे वर्ष 1997-98 में लगभग 11,000 करोड़ रुपए थे। सिंचाई के कारण होने वाले घाटे लगभग 2000 करोड़ रुपए हैं, वह भी तब यदि हम सिंचाई प्रणालियों की केवल रखरखाव की लागत को ही हिसाब में लेते हैं। यदि सिंचाई में निवेश की गई पूंजी पर ब्याज को भी शामिल किया जाए तो घाटा इससे भी कहीं अधिक होगा। राज्य सड़क परिवहन निगमों में घाटा लगभग 1000 करोड़ रुपए है।

इतने अधिक घाटे के साथ यह कोई हैरत की बात नहीं है कि राज्य अपने योजना व्यय के लक्ष्यों को पूरा नहीं कर पाते। आठवीं योजना की अवधि (1992-93 से 1996-97) में राज्यों द्वारा योजना व्यय वास्तव में निर्धारित लक्ष्य से 20% कम था। नवीं योजना में यह स्थिति पांचवें वेतन आयोग के प्रभाव के कारण और भी खराब हो गई है। इसके अलावा राज्यों के बजटों में जो योजना व्यय दर्शाया जाता है उसमें नई विकास परियोजनाओं की वास्तविक सीमा को बढ़ा-चढ़ा कर दिखाया जाता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि योजना की जो परियोजनाएं लगभग पूरी हो चुकी हैं उन्हें भी चालू परियोजनाओं के रूप में दिखाया जाता है; और ऐसा करने से सामान्यतः गैर-योजना बजट से जिस वेतन और प्रचलन लागत के लिए धन दिया जाता है, उसके लिए योजना बजट से धन देना पड़ता है। अतः वस्तुतः योजना व्यय का एक बड़ा हिस्सा नई विकास परियोजनाओं के लिए वित्त प्रबंधन में लगने के बजाए केवल पुरानी परियोजनाओं के वेतन और बढ़ती हुए लागतों को ही पूरा करने में चला जाता है। कुछ राज्यों में तो यह हालत है कि वे वेतन का भुगतान भी नहीं कर रहे हैं।

इस स्थिति को सुधार न पाने के परिणाम स्वतः स्पष्ट हैं। अधिक घाटा ब्याज की मौजूदा बढ़ी हुई दरों को स्थाई बना देगा जिससे अर्थव्यवस्था में निवेश को क्षति होगी और इसका सबसे अधिक नुकसान छोटे उत्पादकों को होगा। योजना व्यय के निम्न स्तर से महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में बहुत अपेक्षित सार्वजनिक निवेश के लिए और विकास के हमारे उद्देश्य

के लिए खतरा पैदा हो जाएगा। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि विकास केवल योजना व्यय पर ही निर्भर करता है या यह कि योजना व्यय बिलकुल सही ही है। 7 से 8 प्रतिशत विकास का हमारा निर्धारित लक्ष्य प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि अधिकांश निवेश निजी क्षेत्र से आए और ऐसे कई क्षेत्र हैं जहां योजना व्यय की जगह प्रभावी रूप से निजी निवेश ले सकता है। तथापि केंद्र और राज्यों के योजना व्यय का संयुक्त अनुपात 1991-92 में सकल घरेलू उत्पाद का 11.3 प्रतिशत था और आज यह घटकर 9 प्रतिशत से कुछ ही अधिक रह गया है। इससे उन अनेक क्षेत्रों में निवेश में कमी आई है जो 7-8 प्रतिशत तक उत्पादन बढ़ाने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

संसाधन में इस कमी का कृषि क्षेत्र में पैदावार बढ़ाने की हमारी क्षमता पर सीधा प्रभाव पड़ता है। कृषि क्षेत्र में तीव्र विकास और व्यापक रूप से ग्रामीण विकास, निर्धनता कम करने की हमारी कार्यनीति का मुख्य आधार है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए, हमें सिंचाई, भूमि विकास, मृदा और आर्द्रता संरक्षण, कृषि अनुसंधान, कृषि विपणन सुविधाओं के विकास और अंततः गांवों को एक दूसरे से बेहतर ढंग से जोड़ने के लिए गांवों और ज़िलों की सड़कों के विस्तार और रख-रखाव में निवेश बढ़ाना होगा। ग्रामीण बुनियादी ढांचे में यह मूलभूत निवेश केवल सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा ही किया जा सकता है परन्तु दुर्भाग्य से इन व्ययों में संभवतः राज्यों की कठिन वित्तीय समस्याओं के कारण वास्तविक अर्थों में कमी आई है।

स्वास्थ्य और शिक्षा में, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्र में, कहीं अधिक निवेश अपेक्षित है जिससे कि दूसरे विकासशील देशों की तुलना में हमारे सामाजिक विकास के सूचकों को उचित स्तर तक लाया जा सके। इसकी पूर्ति भी सार्वजनिक क्षेत्र से की जानी होगी। विद्युत उत्पादन और वितरण, बन्दरगाहों, विमान पत्तनों, दूरसंचार और राष्ट्रीय राजमार्गों जैसे दूसरे बुनियादी क्षेत्रों में निजी क्षेत्र पहले की तुलना में कहीं अधिक व्यापक भूमिका निभा सकता है और इस प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करना आवश्यक है। तथापि, इन क्षेत्रों में भी निकट भविष्य में सार्वजनिक निवेश की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण बनी रहेगी और हमें इसमें आए बड़े व्यवधानों को दूर करना होगा।

अतः अगले दशक के लिए वित्तीय उद्देश्य के दो आयाम होंगे। हमें निजी निवेश के लिए संसाधनों को जुटाने के लिए वित्तीय घाटे को कम करना होगा परंतु हमें साथ ही [illegible]र्ण क्षेत्रों में सार्वजनिक निवेश बढ़ाना होगा। इससे यह आशय है कि इस दिशा में [illegible]य प्रयास अपेक्षित हैं। केंद्र और राज्यों का संयुक्त वित्तीय घाटा 1998-99 में सकल [illegible]क का तकरीबन 8.5 प्रतिशत था। वित्त मंत्री पहले ही कह चुके हैं कि हमें केंद्र [illegible]घाटे (जैसा कि हाल ही में पुनर्परिभाषित किया गया है) को कम करके अगले [illegible] में तकरीबन 2 प्रतिशत के स्तर तक ले आना चाहिए। इससे यह संकेत मिलता [illegible] केंद्र और राज्यों के संयुक्त वित्तीय घाटे में तीन वर्ष की अवधि में 4.5 प्रतिशत की [illegible]मी की जानी चाहिए। साथ ही, हमें केंद्र और राज्यों का संयुक्त रूप से कुल योजना व्यय मौजूदा स्तर से सकल घरेलू उत्पाद के 1.5 प्रतिशत तक बढ़ाने का लक्ष्य रखना चाहिए।

इन दोहरे लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए अगले तीन वर्ष की अवधि में सकल घरेलू उत्पाद में तकरीबन 5.5 प्रतिशत अर्थात 1.8 प्रतिशत पाइंट्स प्रति वर्ष का सकल वित्तीय सुधार अपेक्षित है।

यह सुधार आंशिक रूप से केंद्र द्वारा और आंशिक रूप से राज्यों द्वारा लाना होगा। मैं इस मुद्दे की गहराई में नहीं जाऊंगा कि केंद्र और राज्यों के बीच इसका ठीक-ठीक संतुलन किस प्रकार होना चाहिए। ध्यान देने योग्य महत्वपूर्ण बात यह है कि अगले तीन वर्षों में सकल घरेलू उत्पाद के 5.5 प्रतिशत पाइंट्स तक वित्तीय सुधार लाना किसी भी दृष्टि से एक अत्यन्त कठिन कार्य है। इसकी प्राप्ति एक या दो मोर्चों पर कार्य करके नहीं की जा सकती। इसके लिए अनेक मोर्चों पर कार्रवाई करनी होगी। इनमें से कुछ मुद्दे निम्नलिखित हैं :

i) अधिक राजस्व के लिए कर प्रशासन में सुधार लाना

केंद्र और राज्य स्तर दोनों पर जिस किसी ने भी भारतीय कर प्रणाली का अध्ययन किया है, उसने इस तथ्य पर गौर किया होगा कि यह प्रणाली पुरानी पड़ गई है जिसमें जटिल और बोझिल प्रक्रियाएं दरों की बहुलता, अनगिनत उन्मोचन और अनेक स्थानों पर स्वनिर्णय की गुंजाइश है, जिन सबसे करदाताओं द्वारा कर की चोरी होती है और कर अधिकारियों द्वारा उत्पीड़न किया जाता है। इस प्रणाली से सभी स्तरों पर भ्रष्टाचार भी होता है, जो कि अपेक्षाकृत कम कर वसूली का एक कारण भी है। दूसरे देशों के अनुभव से पता चलता है कि कर सुधार से व्यवस्था में बदलाव आता है और इससे कर दरों को आवश्यक रूप में बढ़ाए बिना अपेक्षाकृत कम समय में सकल घरेलू उत्पाद के 3 प्रतिशत तक अतिरिक्त राजस्व इकट्ठा किया जा सकता है। अतः इस बारे में अपेक्षित वित्तीय समायोजन का आधा हिस्सा कर सुधार के प्रभावी कार्यान्वयन से आता है। ऐसा तभी किया जा सकता है यदि हम "कर प्रशासन में सुधार लाने" और "कर को व्यापक बनाने' के बारे में सामान्य विवरणों के विशिष्ट प्रस्ताव बना सकें जिससे कि कर से छूट को दूर किया जा सके और दरों की संख्या में कमी लाकर और प्रक्रियाओं को आधुनिक बनाकर भी प्रणाली को सरल बनाया जा सके। आशा की जाती है कि राष्ट्रपति के अभिभाषण में उल्लिखित नई कर सुधार समिति इस संबंध में जल्दी ही अपनी विशिष्ट सिफारिशें करेगी।

ii) आर्थिक सहायता में कमी करना

आर्थिक सहायता कम करने के बारे में सामान्य विवरणों का समर्थन लगभग हर कोई इच्छुक है, परन्तु जब इस बारे में विशिष्ट प्रस्तावों पर जाता है तो इस पर असहमति व्यक्त की जाती है। और तब भी हमारी और अप्रत्यक्ष आर्थिक सहायका की कुल राशि बढ़कर उस स्तर तक पहुंच वहन करना मुश्किल है। केंद्र सरकार में प्रमुख प्रत्यक्ष आर्थिक सहायता चीनी पर दी जाती है जिसकी राशि 1999-200 के बजट प्राक्कलनों के

रुपए बैठती है, जो हालांकि इससे अधिक भी हो सकती है। इसके अलावा काफी बड़ी राशि निहित आर्थिक सहायता की भी है जैसे कि उच्च शिक्षा और अस्पताल सेवाओं के लिए कम मूल्य, रेलवे यात्रियों के लिए कम मूल्य, डाक सेवाओं आदि के लिए कम मूल्य लेना, आदि। मिट्टी के तेल पर आर्थिक सहायता की राशि 8000 करोड़ रुपए है और एल.पी.जी. पर इस सहायता की राशि तकरीबन 4000 करोड़ रुपए है। इन आर्थिक सहायताओं का वहन तकनीकी दृष्टि से बजट द्वारा नहीं किया जाता, परन्तु इन्हें पेट्रोल और वैमानिकी टरबाइन ईंधन जैसे दूसरे पैट्रोलियम उत्पादों पर अधिप्रभार लगा कर पूरा किया जाता है। तथापि इससे साफ तौर पर सम्भाव्य संसाधनों की क्षति परिलक्षित होती है क्योंकि किसी पेट्रोलियम उत्पादों की उच्च कीमत में गठित प्रति आर्थिक सहायता घटक को अन्यथा कर राजस्व के रूप में समाप्त किया जा सकता था। ये सहायता विशिष्ट रूप से निर्धन लोगों को लक्ष्य बनाकर नहीं दी जाती बल्कि वास्तव में इनका लाभ अपेक्षाकृत उच्च आय वर्गों या अधिक से अधिक औसत उपभोक्ता को ही मिलता है। तथापि सहायता के इस भार से सरकार की उन कार्यक्रमों पर व्यय करने की क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है जिनसे व्यापक आधार वाला विकास होता, जिसका अधिक लाभदायक प्रभाव पड़ता और जिसका संभवतः बेहतर वितरण हो सकता था।

राज्य स्तर के क्षेत्र भी बड़े पैमाने पर भी दी जाने वाली आर्थिक सहायता के बोझ से दबे हुए हैं जिनमें कमी लाई जा सकती है अधिकांश राज्यों में किसानों को बिजली उनके उत्पादन की 10 से 20 प्रतिशत लागत पर और कुछ राज्यों में निःशुल्क मुहैया कराई जाती है। बिजली के घरेलू उपभोक्ताओं से भी इनकी लागत से कम मूल्य की वसूली की जाती है और उसी प्रकार सिंचाई के लिए पानी, यात्री बस सेवाओं और उच्च शिक्षा के मामले में भी यही स्थिति है।

मैं इस बात पर बल देना ज़रूरी समझता हूं कि इन सभी सहायताओं को पूर्णतया खत्म करने की ज़रूरत नहीं है, बल्कि इसमें केवल महत्वपूर्ण रूप से कमी अपेक्षित है जिसके साथ लक्ष्य की ओर बेहतर ढंग से ध्यान दिया जाए। इससे संसाधनों को जुटाने में मदद मिलेगी जिन्हें हमारे विकास उद्देश्यों की पूर्ति करने के लिए बढ़ाए जाने की ज़रूरत है।

iii) सरकार के आकार में कमी करना

यह एक अन्य क्षेत्र हैं जहां हम कुछ संसाधनों की बचत कर सकते हैं। रेलवे और डाक सहित सरकारी विभागों में लंबे अर्से से कर्मचारियों की तादाद ज़रूरत से ज्यादा है। इसके अलावा सरकारी विभाग भी आवश्यकता से अधिक हैं। एक उदारीकृत अर्थव्यवस्था के लिए एक नियंत्रित और विनियमित अर्थव्यवस्था की बजाय मंत्रालयों और विभागों की संख्या काफी कम करने की ज़रूरत है और इस दिशा में कुछ प्रयास करने होंगे। पांचवे वेतन आयोग, जो कि एक विशेषज्ञ निकाय है, ने यह अनुमान लगाया था कि आने वाले समय में सरकारी कर्मचारियों की संख्या में 30 प्रतिशत की कटौती की जानी चाहिए। सरकारी कर्मचारियों की संख्या में कमी के प्रस्तावों का कई बार प्रतिरोध हुआ है क्योंकि यह माना

गया है कि बेराज़गारी एक गंभीर समस्या है और सरकारी रोज़गार से नौकरियों के लिए मांग की पूर्ति होती है। तथापि फ़ालतू जनशक्ति को भुगतान करने में उपयोग होने वाले संसाधनों का प्रयोग बहुत अपेक्षित आर्थिक और सामजिक बुनियादी ढांचे के निर्माण की दिशा में करने से शेष अर्थव्यवस्था में अनेक और नौकरियां उत्पन्न होंगी। हमें यह बात स्वीकार करनी होगी कि सरकार का उद्देश्य रोज़गार का सृजन नहीं बल्कि अनिवार्य सेवाएं प्रभावी रूप से उपलब्ध कराना है।

iv) और अधिक निर्भीक निजीकरण

अनेक विकासशील देश सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों के बड़े पैमाने पर निजीकरण द्वारा अपनी वित्तीय स्थिति में काफी सुधार करने में सफल हुए हैं। हमारे समक्ष भी यह विकल्प है और इसका कार्यान्वयन सक्रिय रूप से न केवल केंद्र द्वारा, जिसने इस प्रक्रिया को आरंभ किया, बल्कि राज्यों द्वारा भी किया जाना चाहिए। मैं इस विषय पर और अधिक चर्चा बाद में अपने व्याख्यान में करूंगा।

v) योजना स्कीमों को नए सिरे से अग्रता देना

अंततः संदिग्ध महत्व वाली स्कीमों को खत्म करने के लिए योजना व्यय को नए सिरे से अग्रता देना आवश्यक है। योजना स्कीमों के मूल्यांकन के बाद के चरण में उनके विस्तृत अध्ययन से यह पता चलता है कि हालांकि हमारी अनेक योजना स्कीमें अच्छे उद्देश्य को लेकर बनाई गई थीं, परंतु उनसे उनके उल्लिखित उद्देश्यों की पूर्ति नहीं होती है अथवा सीमित अर्थों में होती है जिससे ये स्कीमें लागत की दृष्टि से अप्रभावी साबित हो रही हैं। इसका कारण स्कीमों की तैयार करने में कमी और अपर्याप्त प्रशासनिक क्षमता का सम्मिश्रण होता है। दुर्भाग्यवश ये स्कीमें अभी भी चल रही हैं जिनसे उन संसाधनों की खपत हो रही है जिनका उपयोग दूसरे क्षेत्रों में किया जा सकता था। इन स्कीमों के लिए उत्तरदायी प्रशासनिक एजेन्सियों के इन स्कीमों को जारी रखने के लिए अपने दृढ़ निहित स्वार्थ उत्पन्न हो जाते हैं और स्कीम की प्रभावशीलता की आलोचना से सिर्फ स्कीम को बेहतर प्रशासन और मानिटरिंग के ज़रिए 'सुदृढ़' बनाने की मांगें उठती हैं, इन मांगों का सामान्यतः अर्थ होता है और अधिक स्टाफ की भर्ती की जाए तथा और अधिक संसाधन उपलब्ध कराए जाएं। सभी योजना स्कीमों की नए सिरे से गहन जांच करने और अप्रभावी पाई गई स्कीमों में भारी कटौती करने से संसाधन उत्पन्न होंगे जिनसे अधिक महत्त्वपूर्ण और अधिक लागत-प्रभावी स्कीमों को पूर्णतया धन प्रदान किया जा सकेगा। औपचारिक शून्य आधारित बजट के ढांचे में प्रभावशीलता के इन परीक्षणों के दृढ़ अनुप्रयोग से स्कीमों को बेहतर ढंग से तैयार किया जाना स्वतः ही सुनिश्चित हो जाएगा और इन स्कीमों के चालू रहने के दौरान भी इनका समुचित रूप से पुनर्गठन किया जा सकेगा ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि उन्हें धन मिलता रहे।

उपरोक्त रूपरेखा पर सुधार लाना स्पष्टतया सरल काम नहीं है। इनमें से प्रत्येक प्रस्ताव की अलग-अलग समीक्षा करने पर विवाद ही उत्पन्न होगा। परंतु इन प्रयासों के बिना सकल घरेलू उत्पाद में 5.5 प्रतिशत का वित्तीय सुधार नहीं किया जा सकेगा। दुर्भाग्य से हमारी मौजूदा व्यवस्था में बजट को लेकर गोपनीयता बनाए रखने की परंपरा है जिससे इस बारे में चयन करना कठिन हो जाता है।

अगर कठिन निर्णयों को कुछ ही लोगों को छोड़कर सभी से गुप्त रखा जाना हो, और टी.वी. विशेषज्ञों से तुरंत विश्लेषण कराने के लिए फरवरी के आखिरी दिन अचानक जाहिर किया जाना हो तो ऐसे कठिन निर्णय नहीं लिए जा सकते। इस संबंध में यह आवश्यक होगा कि उपलब्ध विकल्पों पर सक्रिय रूप से बहस कराने के लिए आधार तैयार किया जाए, और उससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि ऐसे विकल्पों का अनुसरण न करने के प्रभावों का पता लगाया जाए।

अगर हम, आगामी वर्षों के भी पूर्वानुमानों के साथ बजट प्रस्तुत किए जाने के कुछ देशों के तरीके को अपनाएं तो ऐसे कठिन निर्णय लेने की आवश्यकता और अधिक स्पष्ट हो जाएगी। इससे, हम आगामी तीन वर्षों में जहां पहुंचना चाहते हैं वहां पहुंचने के लिए आवश्यक प्रयासों की स्पष्ट तस्वीर उभर कर हमारे सामने आ जाएगी। आज इतने अधिक प्रयासों की आवश्यकता में तभी कमी लाई जा सकती है जब हम बड़े पैमाने पर भावी प्रयास की कोई स्पष्ट योजना बना लें।

हम जो भी करें, बात तो सुनिश्चित कर ही सकते हैं। अगर ऊपर बताए गए सभी मुद्दों पर न सही, किंतु अधिकांश पर भी हम कोई कार्रवाई नहीं करते तो हम वित्तीय मामलों में महत्वपूर्ण प्रगति नहीं कर पाएंगे। बल्कि हमें महत्वपूर्ण क्षेत्रों में जनता के निवेश में लगातार ह्रास देखने को मिलेगा, निजी निवेश के लिए निधियों का प्रवाह कम हो जाएगा और ब्याज की दरें लगातार बढ़ने लगेंगी तथा अंतर्राष्ट्रीय रेटिंग भी कम हो जाएगी जो पहले से ही निवेश ग्रेड से कम बनी हुई है। ऐसी स्थिति में, हम संभवतः 7 से 8% तक वृद्धि नहीं कर केंगे।

3. प्रथम चरण के सुधार कार्य को पूरा करना

वित्तीय सुधार के अत्यधिक महत्व पर बल देने के बाद, अब मैं दूसरी महत्वपूर्ण बात पर आता हूं जो ऐसे सुधारों से संबंधित है, जो क्रमिक रूप में लगभग उसी तरीके से हुए हैं जैसा कि मूल रूप से सोचा गया था लेकिन जिन्हें इस दिशा में हुए नए परिवर्तनों को शामिल करते हुए पूरा किए जाने की ज़रूरत है अथवा कुछ मामलों में उनमें फेर-बदल किया जाना ज़रूरी है :

i) औद्योगिक नियंत्रण हटाना

औद्योगिक लाइसेंसिंग का उदारीकरण और विदेशी निवेश के लिए उद्योग क्षेत्र को खुला रखना प्रथम चरण के सुधार कार्य का महत्वपूर्ण अंग था। जहां तक केंद्रीय सरकार के नियंत्रण का संबंध है, इस दिशा में काफ़ी अच्छी प्रगति हुई है। निवेशकों को अब भी परियोजनाओं के कार्यान्वयन में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है, लेकिन ये समस्याएं अधिकांशतः राज्य स्तर पर हैं, जो द्वितीय चरण का क्षेत्र हैं। तथापि, कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जिनमें औद्योगिक नियंत्रण को हटाने के लिए आगे कार्रवाई किए जाने की ज़रूरत है।

ऐसा ही एक क्षेत्र चीनी उद्योग भी है। चीनी उद्योग अत्यधिक महत्वपूर्ण कृषि-आधारित उद्योग है और सूती वस्त्र उद्योग के बाद यह देश में दूसरा सबसे बड़ा औद्योगिक रोज़गार वाला उद्योग है। अगर उदारीकरण उद्योग के लिए लाभकारी है तो यह चीनी उद्योग के लिए भी अवश्य लाभकारी होना चाहिए। फिर भी इस उद्योग पर मौजूदा दोहरी कीमत प्रणाली के साथ-साथ ज़बरदस्त नियंत्रण भी बना हुआ है। किसानों को दी जाने वाली राज्य-निर्धारित कीमतें प्रायः बाज़ार की स्थिति से मेल नहीं खातीं, इसलिए उत्पादन के एक भाग को लेवी चीनी के रूप में अलाभप्रद कीमत पर देना पड़ता है, तथाकथित मुक्त बाज़ार चीनी पर भी नियंत्रण है, और उद्योग ऐसे आयातों के मुकाबले ठहर नहीं पा रहा है जिन पर लेवी नहीं लगती। इसलिए चीनी पर से नियंत्रण हटाए जाने और इस क्षेत्र को बज़ार प्रतिस्पर्धा के लिए खोल दिए जाने की अत्यंत आवश्यकता है। अगर चीनी को सार्वजनिक वितरण प्रणाली के तहत रखने की आवश्यकता महसूस की जा रही है तो ऐसा, बाजार कीमतों पर चीनी खरीदकर किया जाना चाहिए जिसमें बजट से अलग सब्सिडी दी जाए। तथापि, मेरा विचार है कि चीनी सब्सिड़ी को अनुपयुक्त ढंग से लक्ष्यबद्ध किया गया है और इसका फायदा मुख्यतः शहरी मध्यम आय वर्ग के उपभोक्ताओं को मिल रहा है। इसलिए चीनी को सार्वजनिक वितरण प्रणाली से अलग किए जाने की ज़बरदस्त आवश्यकता दिखाई पड़ती है।

कोयला क्षेत्र भी ऐसा क्षेत्र है जिस पर से औद्योगिक नियंत्रण हटाया जाना चाहिए। कोयला ऊर्जा का महत्वपूर्ण स्रोत है, इसलिए इस समय इस क्षेत्र में कैपटिव खनन के सिवाय निजी निवेश की अनुमति नहीं है। अगर हमने पेट्रोलियम को निजी क्षेत्र के लिए खोल दिया है तो कोयला क्षेत्र को भी निजी क्षेत्र के लिए क्यों न खोल दिया जाए। आगामी दशक में देश की ऊर्जा संबंधी मांगों को पूरा करने के लिए कोयले का इतने बड़े पैमाने पर अतिरिक्त उत्पादन किए जाने की ज़रूरत है कि इसे राष्ट्रीयकृत कोयला उद्योग से ही पूरा नहीं किया जा सकता। कोयले का उत्पादन न बढ़ा पाने की वजह से हमें तेल पर और अधिक निर्भर रहना पड़ेगा जबकि तेल के लिए तो हम पहले से ही आयातित आपूर्तियों पर बहुत अधिक निर्भर करते हैं। इसलिए इस क्षेत्र में निजी निवेश की अनुमति देना अत्यंत आवश्यक है। निजी निवेश से इस उद्योग में प्रतिस्पर्धा बढ़ेगी और साथ ही नई प्रौद्योगिकी का प्रयोग बढ़ेगा जो इस बात को ध्यान में रखते हुए महत्वपूर्ण है कि पर्यावरण की दृष्टि से कोयले पर और कोयले की गुणवत्ता पर तरह-तरह के प्रतिबंध लगाए जाने की संभावना है। चूंकि कोयला

खनन ऐसा क्षेत्र है जिसमें पर्यावरण की दृष्टि से मंजूरी लेने में समय लगता है और खान का विकास करने में भी अनेक वर्ष लग जाते हैं, इसलिए अगर हम छह-सात वर्ष के भीतर ही अतिरिक्त उत्पादन करना चाहते हैं तो हमें कार्रवाई अभी से शुरू कर देनी पड़ेगी।

औद्योगिक नीति में इसके अलावा जिस क्षेत्र की ओर ध्यान दिए जाने की ज़रूरत है वह, कुछ वस्तुओं को लघु उद्योग क्षेत्र के लिए ही आरक्षित कर देने की नीति से संबंधित है। अनेक विशेषज्ञों का मानना है कि आरक्षण लघु उद्योग की सहायता करने का सबसे अच्छा उपाय नहीं है, और उनक तर्क प्रभावपूर्ण भी है। वस्तुतः, आमतौर पर ऐसा महसूस तो नहीं किया जा रहा है कि जिन क्षेत्रों को लघु उद्योगों के लिए आरक्षित किया गया है उनका अनारक्षित लघु उद्योग क्षेत्र की तुलना में धीमा विकास हुआ है। फिर भी, मेरा विचार है कि यह एक संवेदनशील मसला है जिस पर सहमति जुटाने में समय लगेगा। तथापि, ऐसे कतिपय क्षेत्रों को तुरंत आरक्षण मुक्त किया जाना चाहिए जिनमें निर्यात की ज़बरदस्त क्षमता है, जैसे वस्त्र, खिलौने और चमड़े के जूते चप्पल। मैं अपनी इस बात को स्पष्ट करने के लिए उन दो मदों के बारे में बताना चाहूंगा जिन्हें भारत में लघु उद्योग में उत्पादन के लिए आरक्षित किया गया है। वर्ष 1997 में, जहां भारत ने 70 मिलियन अमरीकी डालर मूल्य के खिलौनों और खेल-सामानों का निर्यात किया, वहीं चीन ने 8 बिलियन अमरीकी डालर मूल्य के सामान का निर्यात किया। दूसरे शब्दों में, चीन ने भारत के मुकाबले 120 गुना अधिक का निर्यात किया। जूते-चप्पल के निर्यात की भी लगभग यही स्थिति है। हमने लगभग 350 मिलियन अमरीकी डालर मूल्य के जूते-चप्पलों का निर्यात किया जबकि चीन ने 8 बिलियन अमरीकी डालर मूल्य का अर्थात् हमसे लगभग बाईस गुना अधिक का निर्यात किया। इन क्षेत्रों में लघु उद्योग को आरक्षण दिए जाते रहने से हम गतिशील निर्यात क्षेत्र विकसित नहीं कर पा रहे हैं जिसकी हमें अत्यंत आवश्यकता है और जिससे उच्च गुणवत्ता वाले रोज़गार के अवसर मिलेंगे। हम अपने निर्यातों के लिए बाज़ार न होने की शिकायत करते हैं, जबकि सच्चाई यह है कि महत्वपूर्ण क्षेत्रों में, जिनमें हमारी स्थिति अपेक्षाकृत अच्छी है, हमारी अपनी नीतियां ही हमें विश्व बाजार में प्रवेश करने से रोके हुए हैं।

ii) अर्थव्यवस्था को व्यापार के लिए खोल देना

अर्थव्यवस्था को विदेशी व्यापार के लिए खोलना सुधार संबंधी कार्यसूची का एक अन्य महत्वपूर्ण हिस्सा था और इस क्षेत्र में सुधार कार्य तकरीबन आधे से ज़्यादा पूरा कर लिया गया है। सरकार ने घोषणा की है कि वर्ष 2003 तक समस्त क्यूआर. को हटा दिया जाएगा और इस कार्य को चरणबद्ध रूप से किया जा रहा है। इस परिवर्तन का समय स्पष्ट रूप से निर्धारित कर दिया गया है और उसे भारतीय उद्योग जगत द्वारा स्वीकार भी कर लिया गया है। तथापि, टैरिफ में कटौती करने के लिए हमने ऐसी ही कोई स्पष्ट समय सीमा नहीं तय की है। सरकार ने स्पष्ट संकेत दिया है कि टैरिफ दरों को लगभग तीन वर्षों में पूर्वी एशियाई देशों की टैरिफ दरों के समान करने के लिए उनमें कटौती की जाएगी। यह उचित होगा कि सरकार जो करना चाहती है भारतीय उद्योग जगत को उसके बारे में और

अधिक स्पष्ट जानकारी दी जाए। उद्योग जगत की भी इस बारे में चिंता ठीक ही है कि टैरिफ में कटौती करने से कहीं टैरिफ संबंधी गड़बड़ियां पैदा न हो जाएं, जिसमें निविष्टियों पर तो टैरिफ अधिक ही बना रहे और उत्पादन पर कम हो जाए।

अब समय आ गया है कि हम जो कुछ भी करना चाहते हैं उसे और अधिक स्पष्ट रूप से बताएं। उदाहरण के लिए, हम इस तरह का संकेत दे सकते हैं कि औसत टैरिफ स्तर को, जो इस समय लगभग 30% है, तीन वर्ष में कम करके 15% कर दिया जाएगा। इससे औसतन प्रतिवर्ष लगभग 5% की कमी आएगी, जिसे भारतीय उद्योग जगत आसानी से समझ सकेगा। हमें टैरिफ संबंधी बड़ी विसंगतियों का भी स्पष्ट रूप से पता लगाना होगा और उन्हें दूर करने के लिए चरणबद्ध कार्यक्रम बनाना होगा। हमें अपने मूल्य गिराने रोधी तंत्र और प्रक्रियाओं को भी सशक्त बनाना होगा ताकि उद्योग जगत को यह आश्वासन मिल सके कि उसे अनुचित प्रतिस्पर्धा का सामना नहीं करना पड़ेगा।

कुछ लोग हैं जिन्हें यह खतरा लगता है कि अगर टैरिफ को और कम किया जाता है तो भारतीय उद्योग जगत विदेशी प्रतिस्पर्धा में टिक नहीं सकेगा। मेरा व्यक्तिगत विचार है कि यह एक गलतफ़हमी है। भारतीय उद्योग जगत पिछले कुछेक वर्षों में भी बड़ी-बड़ी टैरिफ़ कटौतियों से तालमेल बनाकर चलता रहा है और ऐसा सोचने का कोई कारण नहीं है कि इस प्रक्रिया को और आगे नहीं बढ़ाया जा सकता, विशेषकर तब जबकि बाजार निर्धारित विनिमय दर यह सुनिश्चित करेगी कि अगर आयातों का कोई अतिरिक्त दबाव पड़ेगा तो उससे क्षतिपूर्ति मूल्यह्रास की स्थिति बनेगी जिससे घरेलू उद्योग का फ़ायदा तो होगा ही, साथ ही निर्यातों को भी बढ़ावा मिलेगा। निविष्टियों पर कम किए गए टैरिफ से जाहिर है कि घरेलू उद्योग को और अधिक प्रतिस्पर्धात्मक बनने में सहयोग मिलेगा।

iii) विनिवेश और निजीकरण

विनिवेश प्रथम चरण का एक और ऐसा हिस्सा है जिसमें अगले उच्चतर स्तर तक सुधार किए जाने की ज़रूरत है। सुधार 'विनिवेश' से शुरू किए गए जिससे, सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में सरकार का हिस्सा अधिकतम बना रहेगा। संयुक्त मोर्चा सरकार ने गैर-प्रमुख और गैर-कार्यनीतिपरक क्षेत्र में सरकार के हिस्से को न्यूनतम करने की इच्छा व्यक्त की थी। मौजूदा सरकार ने और आगे बढ़ते हुए, स्पष्ट घोषणा कर दी है कि हम अधिकांश मामलों में सरकार के हिस्सों को कम करके 26% तक ले आएंगे। इस समय विनिवेश प्रस्तावों में मॉडर्न फूड्स और बाल्को के संबंध में विचार चल रहा है जिसमें प्रबंधन को बदल देना भी शामिल है और आई.पी.सी.एल. में युक्तियुक्त भागीदार शामिल करने पर विचार किया जा रहा है।

फिर भी, सरकार को किस सीमा तक विनिवेश करना चाहिए इस संबंध में लोगों को मन में अनिश्चितताएं बनी हुई हैं—अनेक लोगों का मानना है कि जहां कमजोर सार्वजनिक

क्षेत्र के उपक्रमों में संबंध में प्रबंधन का विक्रय एवं हस्तांतरण स्वीकार्य है, वहीं हमें तथाकथित 'नवरत्नों' में अपना नियंत्रण नहीं छोड़ना चाहिए। कुछ अन्य लोगों का मानना है कि विनिवेश करने से जो राजस्व प्राप्त होगा उसका प्रयोग सार्वजनिक क्षेत्र के अन्य उपक्रमों को मज़बूत बनाने में किया जाना चाहिए। जहां तक बहुसंख्य स्वामित्व के मसले का संबंध हैं, सच्चाई यह है कि अगर हम अधिकांश नवरत्नों की इक्विटी में से हिस्से को कम नहीं करते हैं तो वांछित राजस्व सुधार नहीं कर सकते। इसलिए लोगों को यह बात समझाई जानी चाहिए कि ऐसा विनिवेश अथवा निजीकरण वांछनीय है और इससे सामाजिक रूप से अपेक्षाकृत अधिक उपयोगी परिसंपत्तियों का, जैसे स्कूल और अस्पताल निर्माण करने में तथा अन्य प्रकार की ग्रामीण बुनियादी सुविधाएं जुटाने में मदद मिलेगी। हमें ऐसा अनुमान नहीं लगाना चाहिए कि विनिवेश से प्राप्त राजस्व को अनिवार्य रूप से फिर से सार्वजनिक क्षेत्र के अन्य उपक्रमों में लगाया जाएगा। हमें इन संसाधनों का सर्वोत्तम उपयोग करने के विकल्प पर विचार करना होगा और अगर अस्पताल, स्कूल तथा सड़कें अधिक महत्वपूर्ण हैं तो हमें निस्संदेह इन्हीं का निर्माण करना चाहिए।

हमें जिस वित्तीय समस्या का सामना करना पड़ रहा है उससे यब बात प्रकट होती है कि यदि संभव हो तो हमें वर्ष 1999-2000 के लिए निर्धरित किए गए 10,000 करोड़ रुपयों से अधिक विनिवेश करना चाहिए। यद्यपि मैं यह स्वीकार करता हूं कि किसी भी वर्ष में इस स्तर का विनिवेश कभी नहीं किया गया है। विनिवेश के प्रति पहले से चला आ रहा आम दृष्टिकोण अपनाना कारगर नहीं होगा। हमें विनिवेश के लिए वार्षिक योजना बनाना छोड़ देना चाहिए और इस संबंध में अगले तीन वर्षों में किए जाने वाले प्रयासों के बारे में बताना चाहिए। इस आधार पर हमें उन कंपनियों को स्पष्टतः अभिनिर्धारित करना चाहिए जिनमें विनिवेश किया जाना है और साथ ही उक्त कंपनियों में विनिवेश की वह सीमा भी सुस्पष्ट तौर से निर्धारित कर देनी चाहिए जो हमारे लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए आवश्यक है। सरकार ने इस बात के संकेत दिए हैं कि वह विनिवेश के संबंध में नई प्रक्रिया बनाने व एक पृथक इकाई के गठन पर विचार कर रही है। यह अत्यंत सराहनीय कार्रवाई है। सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम को प्रशासानिक मंत्रालय के प्रशासनिक नियंत्रण से मुक्त करके उसका निजीकरण करने और उसे नई इकाई के कार्यक्षेत्र में लाने के कार्य में हमारी सहयोगशीलता ही इसकी सफलता की कुंजी होगी। मंत्रालय की राय को निस्संदेह ही ध्यान में रखा जाएगा परंतु विनिवेश व निजीकरण की गति व रीति के संबंध में महत्वपूर्ण निर्णय लेने का दायित्व नई इकाई को सौंपा जाना चाहिए।

विनिवेश की रीति अर्थात् यह तय करना कि क्या विभिन्न निवेशकों को इसकी बिक्री की जानी है या किसी एक ही खरीददार को बेचा जाना है या युक्तियुक्त भागीदार शामिल किए जाने हैं या नहीं, प्रत्येक उद्यम के अनुसार भिन्न-भिन्न होगी और जो भी रीति अपनाई जाए उसे परदर्शी बनाया जा सकता है। हमें जनता को भी बताना चाहिए कि चिंतित होने की कोई बात नहीं है क्योंकि हम सरकार की ईक्विटी को कम कर रहे हैं। हमारा उद्देश्य यह होना चाहिए कि नवरत्न, निगमित निकायों के रूप में सुदृढ़ बनें न ही वे सरकार के

905 HA./2000—2A

नियंत्रण से बाहर जाने पाएं। वास्तव में एक ठोस मामला यह बनाया जा सकता है कि यदि इन उद्यमों को प्रतिस्पर्धात्मक बाजार में अपना अस्तित्व कायम रखने के लिए अपेक्षित वाणिज्यिक स्वायत्तता व सुनम्यता दी जाती है तो इन पर सरकारी नियंत्रण समाप्त करना आवश्यक है। कोई भी यह नहीं मानता कि कंपनी का स्वामित्व सरकार के पास रहने से कंपनी को वाणिज्यिक दृष्टि से कोई महत्व प्राप्त होता है। यह बात 'मारुति' के संबंध में भी उतनी ही सही है जितनी कि 'सेल' या 'आई.ओ.सी.' के संबंध में।

iv) वित्तीय क्षेत्र में सुधार

वित्तीय क्षेत्र वह दूसरा क्षेत्र है जहां पहले चरण के सुधार किए जा रहे हैं, परंतु इस प्रक्रिया को तेज़ किए जाने की आवश्यकता है। भारतीय रिज़र्व बैंक ने बैंकिंग प्रणाली को बास्ले समिति द्वारा निर्धारित अंतर्राष्ट्रीय मानकों के अनुरूप बनाने के लिए उसके विवेकपूर्ण व नियामक मानकों में सुधार करने की दिशा में सराहनीय प्रगति की है। यह ऐसा क्षेत्र है जहां पूर्वी एशियाई संकट के परिणामस्वरूप वित्तीय क्षेत्र में आई शिथिलता के बारे में सजग रहने की वजह से सभी विकासशील देशों की गहन अंतर्राष्ट्रीय संवीक्षा होती रहेगी। सौभाग्यवश, हमारे पास अब भी कुछ उपाय हैं, अतः जो कमियां हैं, वे सरलता से दूर की जा सकती हैं।

तथापि, अगला कदम कुछ दृष्टियों से अधिक कठिन है, जैसे कि : यह कैसे सुनिश्चित किया जाए कि हमारे बैंक, विशेषकर सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक, नए विवेकपूर्ण मानकों के अनुरूप मानक बना लें और उन्हें अपनाते हुए विदेशी व निजी क्षेत्र के बैंकों के साथ प्रभावी प्रतिस्पर्धा करें। प्रौद्योगिकी में होने वाले परिवर्तनों, विशेषकर सूचना प्रौद्योगिकी की उन्नति की वजह से बैंकिंग व्यवस्था में प्रतिस्पर्धा बढ़ जाएगी। जो बैंक अधिक सक्रिय व सजग होगा वह नई प्रौद्योगिकी अपना लेगा और शाखाओं के विस्तृत नेटवर्क के बिना ही अपना बाजार बढ़ा लेगा। जो सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक अधिकांशतः अपनी शाखाओं के नेटवर्क पर आश्रित हैं, उन्हें इस चुनौती का सामना करने के लिए तैयार रहना चाहिए। उन्हें कई तरीकों से पुनर्गठन के लिए स्वायत्तता वे लचीलेपन की आवश्यकता होगी। कार्मिकी की भर्ती व पदोन्नति करने के लिए लचीलेपन की, ऐसे वेतन करार करने की योग्यता की आवश्यकता होगी जिससे अलग-अलग बैंकों में उत्पादकता व लाभ बढ़े। कर्मचारियों की पुनः तैनाती करने व स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति के माध्यम से अनावश्यक कर्मचारियों की समस्या दूर करने के लिए उन्हें लचीलेपन की आवश्यकता होगी। जो शाखाएं घाटे में चल रही हैं, उन्हें बंद करने के लिए भी सुनम्यता की आवश्यकता है।

ये ऐसे विकट मुद्दे हैं जिनके बारे में अधिकांश संबंधित व्यक्तियों और यहां तक कि आम जनता की भी पहली प्रतिक्रिया नकारात्मक होगी। तथापि, बैंकिंग प्रणाली के हित में इन परिवर्तनों की आवश्यकता बताते हुए हमें इन लोगों को समझाना होगा और उन्हें यह भी आश्वासन देना होगा कि ये परिवर्तन अधिक बाधा उत्पन्न किए बिना ही किए जा सकते

905 HA./2000—2B

हैं। वर्मा समिति द्वारा अभिनिर्धारित तीन कमजोर बैंको की कठिन समस्या का समाधान करते समय निकट भविष्य में इनमें से कुछ समस्याओं का सामना करना पड़ेगा।

वित्तीय क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण सकारात्मक परिवर्तन यह हुआ है कि अब बीमा क्षेत्र को निजी निवेश के लिए खोलना अवश्यंभावी प्रतीत हो रहा है। संसद में विधेयक प्रस्तुत कर दिया गया है और आशा है यह शीघ्र ही पारित हो जाएगा। इससे, इस क्षेत्र में वर्ष 2000 में निजी क्षेत्र का प्रवेश हो जाएगा। एक सशक्त् और प्रतिस्पर्धात्मक बीमा उद्योग से दीर्घकालिक संविदागत बचत में वृद्धि होगी, ग्राहकों को मिलने वाली सेवा में सुधार होगा और पूंजी बाजार के लिए दीर्घकालिक वित्त व्यवस्था उपलब्ध होगी जिसकी इस समय काफ़ी कमी है। निस्संदेह ही यह आधारभूत व्यवस्था के वित्तपोषण के लिए नितांत आवश्यक है। इसके बावजूद हमें यह ध्यान रखना होगा कि इस क्षेत्र में नए प्रवेश करने वालों को अपनी स्थिति सुदृढ़ बनाने में 5 से 6 वर्ष लग जाएंगे। अतः नई बीमा कंपनियों से आधारभूत व्यवस्था कर पर्याप्त वित्तपोषण किए जाने की आशा केवल इस दशक के उत्तरार्ध में ही की जा सकती है। इससे, इस प्रक्रिया को यथाशीघ्र शुरू करने की अत्यावश्यकता प्रकट होती है।

vi) आधारभूत व्यवस्था का निजी वित्तपोषण

आधारभूत व्यवस्था में निजी निवेश एक अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्र है जो पहले चरण के सुधारों का भाग था। परंतु इस क्षेत्र में सुधार जारी रखने के लिए व्यापक प्रोत्साहन की आवश्यकता है। आजकल के खुले व प्रतिस्पर्धात्मक परिवेश में तेज़ी से विकास के लिए उच्च स्तरीय अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा की आवश्यकता है। इसके लिए उच्च गुणतायुक्त आधारभूत व्यवस्था की आवश्यकता होती है। यह अत्यंत खेद की बात है कि हमारी आधारभूत व्यवस्था चाहे वह सड़क, बिजली, पत्तन या दूरसंचार के साधन हों, पूर्णतः अपर्याप्त हैं। मात्रा में कम होने के साथ-साथ इनकी गुणता भी निकृष्ट है। इन सभी क्षेत्रों में सार्वजनिक निवेश की महत्वपूर्ण भूमिका तो रहेगी ही परंतु आवश्यकता इतनी अधिक है कि निजी निवेश भी आवश्यक हो गया है। गुणता में सुधार के लिए निजी निवेश विशेषतौर से उपयोगी हैं।

प्रथम चरण के सुधारों के भाग के रूप में बिजली व दूरसंचार क्षेत्रों में निजी निवेश की अनुमति दे दी गई थी और बाद में पत्तन, हवाई अड्डों तथा सड़कों के संबंध में भी निजी निवेश की अनुमति दे दी गई। अब तक इसके मिश्रित परिणाम रहे हैं। अच्छी बात यह है कि इन क्षेत्रों में निवेश आकर्षित करना संभव हो सका है। निजी क्षेत्र में 9000 मेगावाट की क्षमता वाला विद्युत संयंत्र बन गया है या निर्माणाधीन है। सेल्युलर फोन और दूरसंचार के अन्य महत्वपूर्ण क्षेत्रों में निजी निवेश पर्याप्त मात्रा में हुआ है। पत्तनों में भी निजी निवेश पर्याप्त मात्रा हुआ है और संयुक्त क्षेत्र का पहला हवाई अड्डा अभी हाल ही में कोचीन में बनाया गया है। जो लोग यह संदेह करते हैं कि कुछ भी नहीं हुआ है, उन्हें सही जानकारी नहीं है। तथापि, अभी तक जो परिणाम प्राप्त हुए हैं, वे आशा से काफ़ी कम हैं और विभिन्न कारणों से इन सभी क्षेत्रों में कार्यान्वियन की गंभीर समस्याएं सामने आई हैं।

बिजली क्षेत्र में, राज्य बिजली बोर्डों की वित्तीय स्थिति की वजह से निजी क्षेत्र को अपेक्षित वित्त-व्यवस्था करने में कठिनाई आ रही है। यह कठिनाई तब तक रहेगी जब तक यह माना जाता रहेगा कि राज्य बिजली बोर्ड, अव्यवहारिक प्रषुल्क व पारेषण तथा वितरण में होने वाली भारी हानि की वजह से भरोसेमंद भुगतानकर्ता नहीं बन सकते। ऐसा अधिकांशतः वितरण अवस्था पर चोरी तथा भ्रष्टाचार की वजह से है। बिजली क्षेत्र में यदि सुधारों की शुरुआत टैरिफ व्यवस्था से की जाती और इस क्षेत्र की वित्तीय स्थिति में सुधार लाने के लिए वितरण प्रणाली का निजीकरण किया जाता तो बेहतर होता। दूरसंचार क्षेत्र में अन्य प्रकार की समस्याएं हैं। पहली समस्या तो लाइसेंस फीस के संबंध में अपने दायित्व को पूरा करने में नए निजी निवेशकों की असमर्थता की वजह से और दूसरी समस्या, विनियामक प्राधिकरण के अधिकार क्षेत्र व शक्तियों के बारे में चल रहे विवादों की वजह से उत्पन्न हुई है।

मैं इन मुद्दों पर विस्तार से चर्चा नहीं करना चाहता। मैं इतना ही कहना चाहता हूं कि हमें यह स्वीकार करना चाहिए कि आधारभूत व्यवस्था के नियंत्रित क्षेत्रों में निजी निवेश को आकर्षित करना उससे भी अधिक जटिल कार्य है जितनी कि हमने आशा की थी। आधारभूत व्यवस्था के क्षेत्र में आने वाले निजी निवेशकों को कीमत संबंधी विनियमों का पालन करना पड़ता है और उन्हें सार्वजनिक क्षेत्र के अन्य बड़े संगठनों से भी संपर्क करना होता है जिनका दृष्टिकोण एकाधिकार स्वरूप का होता है। यदि टैरिफ पर्याप्त रूप से लाभकर न हों या जनता उन्हें अनुचित समझे तो कीमत विनियमन से समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं। एकाधिकार स्वरूप के सार्वजनिक क्षेत्र के संगठनों से कार्य-व्यवहार करने में विशिष्ट तरह की समस्याएं आती हैं। दूरसंचार की निजी कंपनियों को इंटरकनैक्शन के लिए सार्वजनिक दूरसंचार प्रणाली का अवलंब लेना पड़ता है। निजी पत्तनों को रेल सुविधा के लिए रेलवे से संपर्क करना पड़ता है। ऐसा परिवेश बनाया जाना चाहिए जिसमें निजी निवेशकों को कार्य प्रणाली की उपयुक्त जानकारी रहे और उपभोक्ता व जनता भी उसे सही माने। इसके लिए सशक्त व विश्वसनीय विनियामक एजेंसियां होनी चाहिएं जो विनियमित टैरिफ को न्यासंगत रूप से नियत करने की सुनिश्चितता बरत सकें और निजी निवेशकों के साथ उचित व्यवहार का आश्वासन दे सकें।

हमें अपनी नीतियों की समीक्षा करनी चाहिए और उन्हें अंतर्राष्ट्रीय स्तर का बनाना चाहिए। अपनी नीतियों को सर्वोत्तम स्तर की कार्य प्रक्रियाओं के समान बनाने के लिए बहुत से क्षेत्रों में परिवर्तन लाना होगा। दूरसंचार के क्षेत्र के संबंध में सरकार ने घोषणा की है कि भारतीय दूरसंचार विनियामक प्राधिकरण को सुदृढ़ बनाने के लिए कानून में संशोधन करेगी। यह एक महत्वपूर्ण निर्णय है जिसे अन्य क्षेत्रों में प्राप्त हुए अनुभव के आधार पर शीघ्रता से लागू किया जाना चाहिए। हमें इस तंत्र के अन्य विनियामक प्राधिकरणों जैसे सी. ई.आर.सी., एस.ई.आर.सी व टी.ए.एम.पी. आदि की भी समीक्षा करनी चाहिए ताकि यह पता चल सके कि क्या उन्हें भी इसी प्रकार सुदृढ़ बनाए जाने की आवश्यकता है।

4. दूसरे चरण के सुधार

अब मैं संक्षेप में उन मुद्दों पर चर्चा करूंगा जिन्हें मैं दूसरे चरण के सुधार कहना चाहूंगा, अर्थात् यह ऐसे सुधार हैं जिन्हें सुधारों की सुनिश्चित कार्यसूची में अभी तक शामिल नहीं किया गया है परंतु उन्हें अगले दशक की कार्यसूची में सबसे ऊपर रखा जाना आवश्यक है।

i) राज्यों में सुधार कार्य आरंभ करना

सबसे पहले, राज्यों में भी सुधार प्रक्रिया आरंभ करने का मुद्दा सामने आता है। केन्द्र सरकार में सुधारों के बारे में काफी चर्चा और आम बहस चल रही है, परंतु राज्य सरकार के स्तर पर ऐसे ही सुधारों की आवश्यकता पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया है और जिन सरकारी एजेंसियों से अधिकांशतः आम आदमी का वास्ता पड़ता है, वे राज्य सरकार के क्षेत्राधिकार में आती हैं। स्वास्थ्य, शिक्षा, कृषि विस्तार और संबंधी सेवाएं, सिचाई, बिजली वितरण, ग्रामीण राज्य और जिले की सड़कें, शहरी क्षेत्रों में नगरपालिका सेवाएं ऐसे क्षेत्र हैं जहां सरकारी उत्पाद की गुणता प्रत्यक्षतः लोगों के जीवन को प्रभावित करती है। ये सभी राज्य सरकार के क्षेत्राधिकार में आते हैं। कुछ राज्य सरकारों ने कुछ विशेष क्षेत्रों जैसे विद्युत के क्षेत्र में सुधारों की आवश्यकता को स्वीकार किया है और यह निश्चित रूप से एक सराहनीय कदम है। ऐसे राज्यों की संख्या बहुत कम है, परंतु आशा है कि इनकी संख्या में वृद्धि होगी। बहुत से अन्य क्षेत्रों की तरह इस क्षेत्र में उपयुक्त प्रयोगकर्ता प्रभार लगाने की इच्छा ही सफलता की कुंजी होगी जिससे यह क्षेत्र वित्तीय रूप से व्यवहार्य बन सके। यह विद्युत और बहुत सी अन्य सेवाओं के लिए भी सही है। यदि, राज्य इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण कदम उठाएं तो इससे विकास के अगले चरण में आने वाली सर्वाधिक गंभीर बाधाएं दूर हो जाएंगी।

राज्य के क्षेत्र में बहुत सी विकास संबंधी समस्याएं, राज्य सरकारों के वित्तीय संकटों के कारण हैं और पहले उल्लिखित तरीके से, इस क्षेत्र में सुधारात्मक कार्रवाई करने से इन कठिनाइयों को दूर करने में सहायता मिलेगी। परंतु, समस्या केवल संसाधनों की ही नहीं हैं। यदि शिक्षातंत्र में ऐसे अध्यापक होंगे जो शिक्षण का अपना कार्य नहीं करते हैं या स्कूल ही नहीं आते तो अतिरिक्त संसाधनों से भी शिक्षा में सुधार नहीं आएगा। यह बहुत दुःखद तथ्य है कि हमारे सरकारी तंत्र में दक्षता का स्तर, देश के अनेक भागों में काफ़ी गिर गया है। यह आंशिक रूप से तो वित्तीय संकट के कारण हैं, क्योंकि निधियों की कमी से उत्साह और नैतिकता में कमी आती है। परंतु, इससे शासन के मानकों में आई कमजोरी झलकती है, जिसके कारण उत्तरदायित्व और कार्यनिष्पादन में कमी हुई है। निस्संदेह ही यह बात सब पर लागू नहीं होती। कुछ राज्य दूसरे राज्यों के मुकाबले काफ़ी अच्छा कार्य कर रहे हैं। अलग-अलग, व्यक्ति भी हर ज़गह काफ़ी अलग-अलग तरीके से कार्य कर सकते हैं। परंतु पूरा तंत्र ही खराब हो रहा है। यदि संसाधनों को प्रभावी विकासात्मक कार्य में लगाया जाना

है, तो कार्य निष्पादन में सुधार और उत्तरदायित्व को बढ़ाने के लिए प्रशासनिक सुधार करने आवश्यक हैं। आवश्यक विनिर्दिष्ट हल एक राज्य से दूसरे राज्य के लिए भिन्न-भिन्न होंगे। मैं बहुत से लोगों की इस राय से सहमत हूं कि आधारभूत स्तर पर, लोगों को और अधिक शामिल करने से तंत्र में उत्तरदायित्व और उसकी कार्यक्षमता को बढ़ाया जा सकता है।

राज्य सरकारों को अपने नियंत्रण और कार्याविधियों का उदारीकरण करने की भी आवश्यकता है। अधिकांश राज्यों में, एक छोटा-सा कारोबार स्थापित करने के लिए तीस से चालीस स्थानों से अलग-अलग अनुमित लेने की आवश्यकता पड़ती है और इनमें से प्रत्येक स्थान पर परेशानी और भ्रष्टाचार का सामना करना पड़ता है।

इसमें सबसे खराब बात यह है कि यह बोझ विशेषकर छोटे कारोबारों पर पड़ता है और इससे उनके कार्य की लागत अत्यधिक बढ़ जाती है। राज्य स्तर पर 'इंस्पेक्टर राज' की कठिनाइयों को कम करने के लिए किए गए गंभीर प्रयास छोटे कारोबार के लिए एक बड़ा वरदान सिद्ध होंगे और इससे इस क्षेत्र में निवेश भी बढ़ेगा। यदि राज्य बिक्री कर प्रोत्साहन देने की सामान्यतः तरीके के बजाय, निवेशकों के लिए अच्छा परिवेश बनाने और उत्तम संरचनात्मक ढांचा बनाने के लिए आपस में प्रतियोगिता करें तो उन्हें अधिक निवेश प्राप्त करने में सफलता मिलेगी।

ii) श्रम कानून

इस क्षेत्र में अभी तक कोई सुधार नहीं हुए हैं, परंतु अब शीघ्रता से श्रम बाज़ार और विशेषकर श्रम संबंधी कानूनों में सुधार करने से संबंधित कार्यों को किया जाना चाहिए। अर्थशास्त्री यह बात जानते हैं कि भारत के श्रम कानून फर्मों को वह लचीलापन प्रदान नहीं करते, जिनकी उन्हें अत्यधिक प्रतियोगी बाज़ार में सफलतापूर्वक कार्य करने के लिए आवश्यकता है। उद्यमों को अपने श्रमिकों की छंटनी करने या सरकार की पूर्वानुमति लिए बिना बाज़ार की बदलती हुई स्थिति के अनुसार, कंपनी की किसी इकाई को बंद करने की स्वतंत्रता नहीं है। श्रम कानून में 'सेवा नियमों' का भी उल्लेख होता है, जो रोज़गार पर लागू होते हैं और जिन्हें आसानी से बदला नहीं जा सकता। इससे आवश्यकता पड़ने पर कामगारों को अलग-अलग कार्यों में लगाना भी मुश्किल हो जाता है।

इन कानूनों का उद्देश्य रोज़गार को संरक्षण देना था। परंतु मौजूदा रोज़गार को बचाने के प्रयास में वे वास्तव में नए रोजगार को बढ़ाने से रोकते हैं। प्रारंभिक वर्षों में यह समस्या इतनी बढ़ी हुई नहीं थी क्योंकि तब हमारी अर्थव्यवस्था सीमित थी और घरेलू प्रतियोगिता भी सीमित थी और अतिरिक्त लागत को उच्चतर मूल्यों के रूप में, उपभोक्ताओं से आसानी से वसूल किया जा सकता था। खुली अर्थव्यवस्था में यह संभव नहीं है, विशेषकर उस स्थिति में जब प्रत्येक व्यक्ति को आयात से कड़ा मुकाबला करना पड़ रहा हो। भारतीय उद्योग को नई और अत्यधिक प्रतियोगी स्थिति से निपटने के लिए और अधिक लचीलेपन

की आवश्यकता है। उन्हें आवश्यकता पड़ने पर अपने कारोबार को कम करने और बिक्री अर्जन और विलयन द्वारा अपने कारोबार की पुनर्संरचना और पुनर्गठन की स्वतंत्रता की भी आवश्यकता है। मौजूदा श्रम कानून इस प्रक्रिया में गंभीर बाधा हैं। इसके परिणामस्वरूप जो कठोरता आती है, वह कारोबारों को स्वतंत्र रूप से बढ़ने से रोकती है और ऐसे पुनर्गठन को भी रोकती है, जिससे कार्यक्षमता बढ़ेगी और जो भविष्य में नियोजन के विस्तार का आधार बनेगी।

संविदागत श्रम से संबंधित उपबंधों को भी संशोधित करने की आवश्यकता है जिसके कारण स्थापना के परिसर में कराए जाने वाले कार्यों जैसे बागवानी, सफाई, सुरक्षा और कैफेटेरिया से संबंधित सेवाओं को संविदा आधार पर करवाना मुश्किल हो जाता है। इस क्षेत्र में और अधिक छूट देने से छोटे कारोबारों की वृद्धि होगी, जो ऐसी मौजूदा फर्मों को सेवाएं उपलब्ध करावाएंगी, जो अन्यथा अपने श्रमिकों को नहीं बढ़ाना चाहती हैं। इससे रोजगार के सृजन में सहायता मलेगी और उद्यमों का भी विकास होगा।

अब समय आ गया है कि हम अन्य देशों में अपनाए जा रहे तरीकों के अनुसार अपने श्रम-कानूनों में भी संशोधन करें। यह ध्यान रहे कि मौजूदा कानून केवल संगठित क्षेत्र के श्रमिकों पर ही लागू होता है, जो कुल श्रमिकों का केवल 8% है। 92% श्रमिकों को इन कानूनों से कोई लाभ नहीं मिलता। वास्तव में, ये कानून संगठित क्षेत्र में उच्च गुणता वाले रोजगार की वृद्धि को रोकते हैं और इस हद तक उन लोगों के हित के विरूद्ध हैं जो रोजगार की तलाश में हैं।

iii) न्याय प्रणाली का कार्य

दूसरी पीढ़ी के सुधारों के लिए अंतिम न्याय प्रणाली है। यदि हम दुनिया के साथ मिलना चाहते हैं और बड़ी मात्रा में विदेशी निवेश का लाभ उठाना चाहते हैं, तो इसके लिए, हमें अच्छी तरह से कार्य करने वाली न्याय प्रणाली की आवश्यकता है, जिसमें संविदागत अधिकारों और दायित्वों को प्रभावी रूप से लागू किया जा सके। न्याय प्रणाली ऐसी होनी चाहिए जिसमें कानून स्पष्ट और पारदर्शी हों, कार्य प्रक्रिया तेज़ी से चलने वाली हो, न्यायपालिका राजनीति से मुक्त हो और इसके निर्णयों को सही माना जाए। इसमें कोई संदेह नहीं है कि हमारी न्यायपालिका काफी स्वतंत्र और निष्पक्ष है, परंतु इसकी प्रक्रियाओं में स्पष्टता या गति नहीं है।

मैं यह मानता हूं कि मैं विधि संबंधी कमियों को बताने के लिए व्यावसायिक रूप से सक्षम नहीं हूं, परंतु मैं सामान्यतः सामने आने वाली कुछ कठिनाइयों का उल्लेख करना चाहूंगा–

* सबसे पहले, इसमें कोई संदेह नहीं है कि हमारे यहां बहुत से पुराने कानून विद्यमान हैं जिनमें से बहुत से कानूनों को निकाल दिया जाना चाहिए।

* दूसरे, जो कानून पुराने नहीं हैं, अक्सर उनका ड्राफ्ट इस प्रकार तैयार किया जाता है कि उनकी बहुत तरह से व्याख्या की जा सकती है और इसके कारण स्पष्टता में कमी आ जाती है, जिनके कारण आश्चर्यजनक रूप से अनावश्यक कानून लागू किए जाते हैं। बिबेक देबरॉय ने अभी हाल ही के अपने अध्ययन में, उत्पाद शुल्क संबंधी कानून की अस्पष्टता के कुछ विशेष बेतुके उदाहरणों के बारे में बताया है। 1959 में, उच्चतम न्यायालय को यह बताना पड़ा कि 'चारकोल' कोयला ही है। कई बार उसे यह बताना पड़ा कि क्या पान का पत्ता, मिर्च, नींबू और अदरक सब्जियां हैं या नहीं क्योंकि यदि वे सब्जियां हैं तो उन पर कर नहीं लगेगा। मेरा सबसे प्रिय उदाहरण 1985 का एक मामला है जब उच्चतम न्यायालय को इस बात पर विचार करना पड़ा कि नारियल सब्जी है या नहीं और इस पर अलग-अलग निर्णय दिया गया।
* तीसरी, हमारी कानूनी प्रक्रियाएं ऐसी हैं, जिसमें अत्यधिक समय लगता है। इसे इस प्रकार बनाया गया है कि यह उन लोगों की सहायता करती है, जो स्थगन चाहते हैं। यदि देर से न्याय मिलने का अर्थ है कि न्याय मिला ही नहीं, तो हमारी प्रणाली में काफी हद तक न्याय नहीं मिलता है।

अंततः ऐसा लगता है कि सरकार भी मुकदमेबाज़ी के लिए भूखी है और अपने विरूद्ध लिए गए सभी निर्णयों पर नियमित रूप से अपील करती रहती है, यहां तक कि वह अपने अपील-निकायों द्वारा लिए गए निर्णयों के विरूद्ध भी ऐसा ही करती है। ऐसी अपीलें इस विचार से की जाती हैं कि यदि अपील नहीं की गई तो संगत प्रशासनिक प्राधिकरण की ईमानदारी पर संदेह किया जा सकता है।

इन सबका परिणाम यह होता है कि हमारे न्यायालय मुकदमों से भरे पड़े हैं और मुकदमें में अत्यधिक समय लगता है। इसका नुकसान साधारण नागरिक और छोटे कारोबारों को सबसे ज़्यादा उठाना पड़ता है। बड़े-बड़े निगम, जिनके पास बहुत से वकील हैं, उन्हें ज़्यादा अंतर नहीं पड़ता। स्पष्टतः, इस क्षेत्र में परिवर्तन की अत्यधिक आवश्यकता है।

भाइयो और बहनो, मैं यह जानता हूं कि नीति संबंधी ऐसे बहुत से महत्वपूर्ण मुद्दे हैं, जिन पर मैंने बात ही नहीं की। कोई भी भाषण सामान्य समय सीमा को देखते हुए, इतनी अधिक बातों को शामिल नहीं कर सकता। मेरा उद्देश्य सुधार की वह व्यापक रूपरेखा बताना था, जिन्हें हमें आने वाले वर्षों में करना है। जैसा कि आप देख रहे हैं कि कार्यसूची काफी बड़ी है और इनमें से कुछ कार्य काफ़ी कठिन हैं। मैं केवल यह कहना चाहूंगा कि मैंने जिन विषयों का उल्लेख किया है, यदि उनमें से अधिकांश में पर्याप्त प्रगति कर लेते हैं, तो अगले दशक में हम 7 से 8 प्रतिशत तक विकास कर लेंगे और इससे अच्छा विकास क्या होगा जो संतुलित हो और प्रभावी ढंग से गरीबी को कम कर दे।

सदस्य, योजना आयोग, नई दिल्ली

विश्व व्यापार संगठन

—डॉ. रमाकान्त

विश्व व्यापार संगठन की स्थापना 1 जनवरी 1995 को हुई तथा 30 दिसंबर 1994 को विश्व व्यापार संगठन के समझौते को अनुप्रमाणित करके भारत इसका संस्थापक सदस्य बन गया था। इसमें संदेह नहीं कि बेमेल भागीदारों के संसार में द्विपक्षीय समझौतों की तुलना में बहुपक्षीय समझौता विकासशील देशों के लिए बेहतर होगा क्योंकि विकासशील देश एकजुट होकर ही अमरीका और यूरोपीय समुदाय के विकसित देशों से कुछ रियायतों की उम्मीद कर सकते हैं।

विश्व व्यापार में मूलभूत परिवर्तन और विश्व व्यापार संगठन का उदय

1948 में गैट (GATT) की स्थापना से लेकर पिछले चार दशकों में विश्व व्यापार में संरचनागत बदलाव आया है। जातिगत पण्य व्यापार में कृषि का हिस्सा 1950 में 46% था, जो घटकर 1987 में मात्र 13% रह गया। साथ ही विकसित देशों में रोजगार के स्वरूप तथा उनके सकल देशी उत्पाद में विभिन्न क्षेत्रों के अंशदान में भी गुणात्मक बदलाव आया। सेवा क्षेत्र ने अपना महत्वपूर्ण स्थान बना लिया। उदाहरणार्थ, अमरीका में सकल देशी उत्पादन का दो तिहाई हिस्सा तथा 70% से अधिक लोगों को रोजगार में 5% से ज्यादा हिस्सा सेवा क्षेत्र का ही है। अतः अमरीका के नेतृत्व में विकसित देशों में सेवा क्षेत्र को भी व्यापार समझौते के दायरे में लाने के लिए पहलकदमी की।

सितंबर 1986 में शुरू हुए उरुग्वे दौर के 8वें बहुपक्षीय व्यापारिक विचार-विमर्श में 15 क्षेत्रों के बारे में बातचीत होनी थी, जिनमें से भाग-I (वस्तु-व्यापार) में 14 क्षेत्र ('ट्रिप्स' तथा 'ट्रिम्स' सहित) तथा भाग-II में शेष एक क्षेत्र अर्थात् सेवा क्षेत्र शामिल था। इस प्रकार, परंपरागत गैट विषयों (जैसे टैरिफ और गैर-टैरिफ अवरोध आदि) के अलावा 'ट्रिप्स', 'ट्रिम्स' तथा सेवा क्षेत्र जैसे कुछ नए क्षेत्रों को पहली बार बातचीत के लिए शामिल किया गया।

ये विचार-विमर्श चार सालों में पूरे हो जाने थे, पर सहभागी देशों में कुछ नाजुक क्षेत्रों तथा कृषि, वस्त्र, 'ट्रिप्स' (TRIPS) और प्रतिपाटन (anti-dumping) उपाय जैसे क्षेत्रों में मतभेद होने के कारण बात आगे नहीं बढ़ पा रही थी, अतः गतिरोध को दूर करने हेतु गैट के महानिदेशक श्री आर्थर डंकेल ने ब्यौरेवार समझौता दस्तावेज तैयार किए, जो डंकेल-प्रस्तावों के नाम से विख्यात हैं। इन्हीं प्रस्तावों के आधार पर अंतिम अधिनियम तैयार हुआ—15/12/93 को, तथा 117 देशों सहित भारत ने 15/4/94 को करार पर हस्ताक्षर किए।

विश्व व्यापार संगठन और विश्व व्यापार में वृद्धि

विश्व व्यापार संगठन के अस्तित्व में आने के बाद 1995 में विश्व व्यापार में 8.5 प्रतिशत की वृद्धि हुई थी, जबकि 1996 में यह घटकर 5 प्रतिशत रह गई। तथापि डॉलर के रूप में वस्तुओं और सेवाओं का निर्यात 5,115 बिलियन डॉलर के रिकॉर्ड स्तर पर पहुंच गया। पश्चिम यूरोप के देशों की निर्यात-वृद्धि 1995 के 23 प्रतिशत की तुलना में उल्लेखनीय तौर पर कम होकर 3 प्रतिशत हो गई—विश्व व्यापार संगठन इसका कारण मुद्रा संबंधी घटबढ़ (currency fluctuation) को मानता है। एशिया को न्यूनतम निर्यात के कारण उ. अमरीका की निर्यात-वृद्धि भी 1995 के 15% की तुलना में 3 प्रतिशत ही रह गई। 1996 में एशियाई देशों की निर्यात-वृद्धि में तीव्रतम गिरावट आई और वह एक प्रतिशत पर आ गई। तथापि, विश्व बैंक आदि के अनुमानों के अनुसार सन् 2005 तक व्यापारिक माल में 745 बिलियन डॉलर की वृद्धि होगी तथा सर्वाधिक वृद्धि परिधान (60 प्रतिशत), कृषि, वानिकी, मत्स्य उत्पाद (20 प्रतिशत), संसाधित माल और पेय पदार्थ (19 प्रतिशत) जैसे क्षेत्रें में होगी। भारत इन क्षेत्रों में अपनी निर्यात प्रतिस्पर्धात्मकता बढ़ाकर विश्व निर्यात में अपनी भागीदारी 0.5 प्रतिशत से बढ़ाकर 2 प्रतिशंत तक कर सकता है।

विश्व व्यापार संगठन का भारत की अर्थव्यवस्था पर प्रभाव

प्रशुल्क और गैर-प्रशुल्क अवरोध, सब्सिडी, प्रतिपाटन उपाय जैसे गैट के परंपरागत विषयों के अलावा 'ट्रिप्स', 'ट्रिम्स' और 'सेवा क्षेत्रों में व्यापार' जैसे नए विषय पहली बार विचार-विमर्श के लिए शामिल किए गए। भारत सरकार का दावा है कि उरुग्वे दौर के समझौते के फलस्वरूप भारत के निर्यातों के प्रतिवर्ष 2 बिलियन डॉलर की दर से वृद्धि होगी। आइए देखें कि इन विभिन्न उपायों का भारत के व्यापार पर क्या असर पड़ता है।

क) मूलभूत शुल्क, निर्यात सब्सिडी आदि में कटौती और भारत

भारत ने वायदा किया है कि 6 सालों में प्रशुल्कों में 30 प्रतिशत की कटौती की जाएगी तथा इनमें कच्चे-माल, मध्यवर्ती व पूंजीगत माल (कृषि-उत्पाद, पेट्रोलियम उत्पाद, उर्वरक तथा कुछ अलौह धातुएं, जैसे जस्ता और तांबा, को छोड़कर) शामिल होंगे। चेलैया समिति ने भी भारत में आर्थिक सुधारों के पैकेज के एक अंग के रूप में इन प्रशुल्कों में कटौती की सिफारिशें की थीं।

जहां तक निर्यात सब्सिडी में कटौती का प्रश्न है, समझौते के अनुसार 1000 डॉलर से कम प्रति व्यक्ति आय वाले भारत जैसे देशों को उन उत्पादों से ऐसी सब्सिडी समाप्त करने से छूट प्रदान की गई है जिनका विश्व व्यापार में हिस्सा 3.25% से कम है। इन मानदंडों पर देखें तो सिर्फ हीरा और आभूषण में विश्व व्यापार में भारत का हिस्सा 10% के लगभग है। 1992-93 में भारत के कुल निर्यातों में रत्नाभूषणों का हिस्सा 19% था इस प्रकार 81%

निर्यात पर से निर्यात सब्सिडी हटाने की आवश्यकता नहीं है।

विश्व व्यापार संगठन द्वारा अगस्त 1999 में दिए गए निर्णयों के तहत भारत को आयात तथा लाइसेंस प्रदान करने संबंधी अपेक्षाओं से प्रतिबंध हटाने के लिए सहमत होना पड़ा। *सिएटल* में दिसंबर 1999 में हुई सार्वभौमिक व्यापार वार्ता असफल होने के एक माह बाद भारत अमरीका से आयात किए जाने वाले कृषि उत्पादों, वस्त्र तथा अन्य अनेक उत्पादों से व्यापारिक अवरोध समाप्त करने में सहमत हो गया। अमरीका के साथ जनवरी 1999 को हुए एक समझौते में भारत 1,400 विशिष्ट प्रकार के प्रतिबंध हटाने पर सहमत हो गया। इनमें से आधे प्रतिबंध तीन माह के भीतर तथा शेष 1 अप्रैल 2001 तक उठा लिए जाएंगे। अमरीका के व्यापार प्रतिनिधि चार्लीन बार्शेफस्की के अनुसार 'आयात प्रतिबंधों का युग समाप्त करने से विकास तथा प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा मिलेगा जिससे आर्थिक कल्याण का स्तर बढ़ेगा तथा भारत के निजी क्षेत्र में उद्यमों को बढ़ावा मिलेगा।'[1] भारत अपना बाजार खोलने के लिए यूरोपीय संघ, जापान और अन्य देशों के साथ इस प्रकार के समझौते पहले ही कर चुका है।

ख) 'ट्रिप्स' (बौद्धिक संपत्ति अधिकार के व्यापार-संबद्ध पहलू) और भारत

इनका दो प्रमुख क्षेत्रों में औषधि तथा कृषि पर भयंकर परिणाम हो सकता है। 'ट्रिप्स' के तहत औद्योगिक प्रौद्योगिकी के सभी क्षेत्रों में उत्पाद या प्रक्रिया किसी भी रूप में किए गए आविष्कार के लिए पेटेंट उपलब्ध होगा। इनमें संपूर्ण औद्योगिक और कृषि क्षेत्र तथा जैव प्रौद्योगिकी क्षेत्र शामिल होंगे।

सबसे बड़ी बात तो यह है कि पेटेंट संरक्षण में न सिर्फ विनिर्माण का एकाधिकार है, अपितु इसमें आयात का भी एकाधिकार है क्योंकि इसमें आयातित और स्थानीय तौर पर उत्पादित सभी उत्पाद शामिल होंगे। पेटेंट धारक पर कोई मूल्य-नियंत्रण कानून लागू नहीं होगा।

i) पेटेंट युग और दवाओं की कीमतें—पेटेंट अधिनियम, 1970 के फलस्वरूप इनकी कीमतें भारत में काफी कम हैं। 'ट्रिप्स' में 70% दवाइयां समाविष्ट हो जाएंगी और उनके दाम 5 से 10 प्रतिशत तक बढ़ सकते हैं तथा फलस्वरूप आधुनिक दवाइयों का उपभोग करने वालों की तादाद 30% से कम होकर शायद 10% ही रह जाएगी। इसका स्वास्थ्य पर भयंकर असर पड़ेगा। भारत में दवाइयों का सिर्फ प्रक्रिया पेटेंट है, उत्पाद पेटेंट नहीं। रानिटिडाइन (ग्लैक्सो) का दाम भारत में 29.03 रु. है जबकि पाकिस्तान में यह 260.40, ब्रिटेन में 481.31 तथा अमरीका में 744.65 रु. में बिक रहा है।

श्री प्रणव मुखर्जी के अनुसार भारत में उत्पाद पेटेंट लागू नहीं है, अतः दाम सिर्फ 10 से 15 प्रतिशत ही बढ़ेंगे। उत्पाद पेटेंट रहित देशों को 10 साल के संक्रमण काल की इजाजत दी गई है।

19 दिसंबर 1997 को विश्व व्यापार संगठन के अपीलीय निकाय Appelate Body) ने भारत को अंतर्राष्ट्रीय बौद्धिक संपत्ति संबंधी वायदों का उल्लंघन करने का दोषी पाया। 'ट्रिप्स' करार के अनुच्छेद 70.8 तथा 70.9 के तहत औषधीय और कृषि रसायनों के लिए नए पेटेंट प्राप्त करने हेतु 'मेलबॉक्स' स्थापित करना अधिदेशात्मक अपेक्षा है। उक्त निर्णय के अनुसार भारत को औषधि और कृषि रसायनों में उत्पाद पेटेंट का दायित्व पूरा करना होगा।

अप्रैल 1994 में हुए समझौते के अनुसार औषधीय और कृषि रसायनों के लिए 'मेलबॉक्स' की सुविधा 1-1-95 से पूर्व प्रदान कर दी जानी चाहिए थी। सन् 2005 तक भारत को उत्पाद पेटेंट जारी करना शुरू कर देना है। 'मेलबॉक्स' होने पर 2005 तक प्राप्त आवेदनों को प्राथमिकता तिथि प्रदान की जा सकेगी।

प्रक्रिया से उत्पाद पेटेंट की ओर हो रहे परिवर्तन का लाभ उठाने के लिए ही बहुराष्ट्रीय दवा कंपनियां भारत में अपनी भागीदारी बढ़ा रही हैं, जो निम्नलिखित से स्पष्ट है :

कंपनी	मूल कंपनी	भागीदारी में वृद्धि
ग्लैक्सो इंडिया	ग्लैक्सो वेलकम पीएलसी (ब्रिटेन)	40% से बढ़ाकर 51%
बरोज वेलकम	-वही-	32% से बढ़ाकर 51%
अबट लैब.	अबट (अमरीका)	40% से बढ़ाकर 51%
क्नोल फार्मा.	लुफार्मा जीएमबीएच (जर्मनी)	40% से बढ़ाकर 51%[2]

पेटेंट के मुद्दे पर इंडियन ड्रग मैन्युफैक्चरर्स असोसिएशन के अध्यक्ष श्री दिनेश एस. पटेल के अनुसार "हमें पेटेंट कानूनों में ऐसे परिवर्तन करने में अति उत्साह नहीं दिखाना चाहिए जो देश के हितों के विपरीत हो सकते हैं। हमें दूसरे देशों के कानूनों का सावधानीपूर्वक अध्ययन करना चाहिए तथा अपने हितों की रक्षा के उपाय करने चाहिए जैसा कि विकसित देशों ने किया है।"

प्रसंगवश यहां दवाओं के संदर्भ में आयुर्वेदिक दवाओं की चर्चा करना भी जरूरी है। जहां पाश्चात्य कंपनियां पेटेंटयुक्त अंग्रेजी दवाओं के जरिए अंधाधुंध लाभ कमाएंगी, वहीं कहीं ऐसा न हो कि वे हमारी विशाल आयुर्वेदिक धरोहर का भी पेटेंट प्राप्त करने में हमसे आगे निकल जाएं क्योंकि अमरीकी बहुराष्ट्रीय कंपनियां नीम, हल्दी और इमली के पेटेंट पंजीकरण का पहले भी दुरुपयोग कर चुकी हैं। "उल्लेखनीय है कि जेनका, फाइटोफर्म, प्राक्टर एंड गैम्बल जैसी दिग्गज कंपनियों पर एशिया में, खास तौर से भारत व चीन में, लंबे समय से इस्तेमाल हो रही जड़ी बूटियों का दोहन करने का आरोप लगता रहा है। इन कंपनियों ने देशी जड़ी-बूटियों को एलोपैथिक नामों से बाजार में उतारा है।...मीडिया रिपोर्टों के मुताबिक फाइटोफर्म द्वारा एक्जिमा रोग ठीक करने के लिए 'जेमाफाइट' नाम से बनाई जाने वाली दवा 'ट्राइबुलस टेरेस्ट्राइस' जड़ी बूटी से बनाई जाती है, जो भारत में बहुतायत में पैदा होती है। हिन्दी में इस जड़ी-बूटी को 'छोटा गोखरू' कहते हैं। मूत्र संबंधी विकारों

को दूर करने के लिए दशकों से इसका इस्तेमाल होता आ रहा है।...ब्रिटेन की एक अन्य कंपनी जेनका ने 'सोलानम निगरम' जड़ी बूटी से एक दवा तैयार की है, जबकि भारत में इसका इस्तेमाल 'लिव-52' ब्रांड नाम से लीवर व त्वचा संबंधी बीमारियों के निदान में हो रहा है। प्रॉक्टर एंड गैम्बल ने गैस व आंत की तकलीफों के लिए 'यूफोरिया हिरता' इस्तेमाल की है। भारत में इन्हीं बीमारियों के उपचार में इस जड़ी बूटी का सदियों से उपयोग हो रहा है।"[3]

आयुर्वेद को हमारे साहित्य में पांचवें वेद का दर्जा है तथा हमारे पास आयुर्वेदिक साहित्य का विशाल भंडार है। न जाने कितनी औषधियों की जानकारी कुछ वैद्यों, आदिवासियों को परंपरा से प्राप्त होती रहती है। वे इसका उपयोग भी करते हैं। किंतु इनका कोई उल्लेख पुस्तकों तक में नहीं मिलता। अतः जरूरत है उसे संहिताबद्ध करने और उनका पेटेंट करवाने तथा ऐसी स्थिति निर्मित करने की, ताकि उन औषधियों/नुस्खों के परंपरागत तौर पर भारत से संबद्ध होने के बारे में भ्रम की कोई गुंजाइश न रहे।

हमें नए आयुर्वेदिक अनुसंधान के प्रति भी सतर्क रहना होगा ताकि बौद्धिक संपत्ति अधिकार के इस युग में हम अपने परंपरागत ज्ञान का अधिकाधिक लाभ उठा सकें और विदेशियों द्वारा उनके पेटेंट के छीनाझपट से उन्हें बचा सकें। ये औषधियां प्रायः अपना दुष्प्रभाव (साइड इफेक्ट) नहीं छोड़तीं, इस कारण भविष्य में निश्चय ही इन औषधियों की सार्वभौमिक मांग में बहुत वृद्धि होगी। वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद् (सीएसआइआर) द्वारा नीम की जैव-कीटनाशक (बॉयो-पेस्टिसाइडल) विशिष्टताओं आदि के लिए पहले ही पेटेंट प्रदान किया जा चुका है। 'यूरोप की शीर्ष फार्मास्युटिकल कंपनियां यूरोपीय संसद के अगले सत्र में चिकित्सकीय जड़ी बूटियों पर जैव प्रौद्योगिकी पेटेंट निर्देश पारित करवाने के लिए यूरोपीय संघ के सदस्य देशों में जबरदस्त लॉबिंग कर रही हैं।"[4] अतः इस दिशा में हमें जागरूक होना होगा तथा विश्व व्यापार संगठन की अपेक्षानुसार भारत में उत्पाद पेटेंट लागू होने पर हमें इस दिशा में विशेष सतर्कता बरतनी होगी।

ii) कृषि उत्पाद और पेटेंट संरक्षण—'ट्रिप्स' के तहत यह मांग की गई है कि माइक्रो-आर्गनिज्म, नान-बायोलोजिकल और माइक्रो-बायोलोजिकल प्रक्रियाओं तथा पौधों की किस्म तक को संरक्षण प्रदान किया जाए। 'ट्रिप्स' के अनुच्छेद 27 के अनुसार भारत पेटेंट या कारगर अद्वितीय (sui-generis) प्रणाली या दोनों के जरिये पौधों की किस्मों को संरक्षण प्रदान करेगा। यह संरक्षण 10 वर्षों का संक्रमण काल समाप्त होने पर लागू होगा।

कुछ विकसित देशों में अद्वितीय (sui-generis) प्रणाली तैयार कर 1961 में उसे UPOV (International Union for the Protection of New Plant varieties of Plants) के तहत संहिताबद्ध किया। 1978 में अमरीका UPOV का सदस्य बना। अद्वितीय (Sui-generis) प्रणाली पेटेंट का ही बदला हुआ नाम है तथा इसके तहत यह अपेक्षा की गई है कि यह प्रणाली इतनी 'कारगर' हो ताकि उससे पौध प्रजनक अधिकार (Plant Breeder Right) धारकों

को वास्तविक संरक्षण मिले। बहुपक्षीय व्यापार संगठन की स्थापना संबंधी समझौते के तहत 'ट्रिप्स' की परिषद द्वारा भारत द्वारा बनाए गए कानूनों के कारगर होने की जांच की जाएगी। फरवरी 1994 में सरकार द्वारा पौध किस्म अधिनियम (Plant varieties Act, 1995) का मसौदा तैयार कर परिचालित किया गया था, जिसकी यह कहकर आलोचना की गई कि इसमें राष्ट्रीय हितों की अनदेखी करते हुए अंतर्राष्ट्रीय अपेक्षाओं को अक्षरशः उतारने की जल्दबाजी की गई थी। इस दिशा में हमें काफी सतर्क होना पड़ेगा—खास तौर से माइक्रो आर्गनिज्म को संरक्षण देने के संबंध में क्योंकि 'माइक्रो आर्गनिज्म से जुड़े प्रमुख आर्थिक क्षेत्र; जिनमें कृषि, औषधि और औद्योगिक जैव प्रौद्योगिकी महत्वपूर्ण हैं; माइक्रोआर्गनिज्म संबंधी पेटेंट स्वीकार कर लिए जाने पर अत्यधिक दुष्प्रभावित होंगे।'[5]

कृषि से संबंधित दूसरा मुद्दा सब्सिडी का है। विकासशील देशों को उत्पाद मूल्य के 10 प्रतिशत तथा विकसित देशों को 5 प्रतिशत की सीमा के तहत सब्सिडी का प्रावधान करने की अपेक्षा की गई है। चूंकि कृषि सब्सिडी का वर्तमान स्तर अपेक्षा से काफी कम है, अतः यह विवाद या चिंता का विषय कतई नहीं है।

तीसरी अपेक्षा के तहत सार्वजनिक विवरण प्रणाली के तहत सब्सिडी युक्त अनाज का लाभ 'पोषणात्मक उद्देश्यों से संबद्ध स्पष्टतः परिभाषित मानदंडों' के आधार पर सिर्फ पात्र लोगों को मिलना चाहिए। अधिकांश अर्थशास्त्री इसको भी आपत्तिजनक नहीं मानते। अंततः संपन्न वर्ग को इसका लाभ पहुंचाने का कोई औचित्य भी तो नहीं है।

एक अन्य अपेक्षा यह है कि देश 1986 और 1988 के बीच कुल खपत के कम से कम 4 प्रतिशत तक आयात का अवसर प्रदान करें। विकासशील देशों के प्रमुख आहार (जैसे भारत के मामले में चावल और गेहूं) को इसकी सीमा से बाहर रखा गया है। इससे भारत के कृषि निर्यात में वृद्धि होने तथा कृषि उत्पादों का अधिक मूल्य प्राप्त होने की ही आशा है।

कृषि उत्पादों के क्षेत्र में भारत को अपने हितों की रक्षा सावधानीपूर्वक करनी पड़गी। फरवरी 98 में अमरीकी कंपनी 'राइसटेक' को अमरीका में बासमती चावल का पेटेंट मिल गया है। जैसे नासिक में उत्पन्न अंगूर से बने शराब को शैम्पेन नाम नहीं दिया जा सकता, वैसे ही अमरीकी सुगंधित चावल को बासमती नाम देना भौगोलिक भूल होगी। "यदि राइसटेक ने वस्तुतः नए किस्म का चावल विकसित किया है तो उसे पेटेंट मिलना चाहिए, पर उसका नाम बासमती नहीं होना चाहिए। अतः भारतीय व्यापारिक और सरकारी हलकों को चाहिए कि वे पाकिस्तान के साथ मिलकर इस पेटेंट का नाम बदलवाने का प्रयास करें।"[6]

ग) 'ट्रिम्स' (व्यापार संबद्ध निवेश उपाय) का भारत पर प्रभाव

ट्रिम्स के प्रमुख प्रावधान ये हैं कि सरकार विदेशी पूंजी के खिलाफ भेदभाव नही बरतेगी। मुख्य विशिष्टताएं इस प्रकार हैं :

(1) विदेशी पूंजी/निवेशकों/कंपनियों पर से सभी प्रतिबंध हटाए जाने चाहिए, (2) विदेशी निवेशक को निवेश के मामले में राष्ट्रीय निवेशक जैसे ही अधिकार दिए जाने चाहिए, (3) निवेश के किसी भी क्षेत्र में कोई प्रतिबंध न लगाए जाएं, (4) विदेशी निवेश की कोई मात्रात्मक सीमा भी नहीं होनी चाहिए—100 प्रतिशत विदेशी इंक्विटी की भी अनुमति होनी चाहिए, (5) कच्चे माल तथा पुर्जों के मुक्त आयात की अनुमति होनी चाहिए, (6) स्थानीय उत्पादक और सामग्री का उपयोग करने की बाध्यता विदेशी निवेशक पर नहीं होगी, (7) उत्पादन के एक अंश का निर्यात करना अधिदेशात्मक नहीं होगा, (8) लाभांश, ब्याज और रायल्टी के पुनः प्रत्यावर्तन पर प्रतिबंध समाप्त किए जाएंगे, (9) चरणबद्ध विनिर्माण कार्यक्रम, जिसका आशय विनिर्माण में देशी तत्व की वृद्धि करना है, के प्रावधानों को पूर्णतः निकाल दिया जाएगा।

1991 में शुरू की गई नई औद्योगिक नीति के तहत भी भारत सरकार ने विदेशी निवेश का स्वागत किया है। पर 'ट्रिम्स' समझौतों से विदेशी निवेश के संबंध में चयनात्मक रुख अपनाने की हमारी आजादी खत्म हो जाएगी तथा स्थानीय उद्योगों और अर्थव्यवस्था को इसके खतरों से हम बचा नहीं सकेंगे। आलोचकों का मानना है कि इस मामले में विदेशी निवेश को दी गई अप्रतिबद्ध आजादी हमारी आर्थिक संप्रभुता के साथ समझौता है।

विदेशी पूंजी प्रत्यक्ष निवेश संविभागीय निवेश के रूप में आती है। संविभागीय निवेश प्राथमिक या द्वितीयक बाजार में लेनदेन योग्य प्रतिभूतियों की खरीद के रूप में आता है। भारतीय रिजर्व बैंक के भूतपूर्व गवर्नर डॉ. सी. रंगराजन के अनुसार "भारत की आर्थिक प्रगति व्यापक तौर पर देशी निवेश से हुई है। यह स्थिति बनी रहेगी। फिर भी विदेशी प्रत्यक्ष निवेश अर्थव्यवस्था के लिए जरूरी है क्योंकि इससे न सिर्फ कुछ नाजुक क्षेत्रों में निवेश संसाधनों में वृद्धि होती है, अपितु विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के साथ प्रौद्योगिकी और अन्य कुशलताओं का भी अंतरण होता है।"[7]

घ) वस्त्र और परिधान व्यापार संबंधी अपेक्षाएं और भारत

वस्त्र और परिधान भारत सहित विकासशील देशों की महत्वपूर्ण निर्यात मद हैं। परंतु विकसित देशों ने मल्टीफायबर एग्रीमेंट के तहत इस मद पर अत्यधिक व्यापक कोटा प्रतिबंध लगा रखे हैं। अब 10 वर्षों की अवधि (1993 से 2003) में चरणबद्ध तरीके से मल्टीफायबर एग्रीमेंट कोटा को पूर्णतः समाप्त किया जाना है तथा इस अवधि के बाद वस्त्र क्षेत्र में व्यापार का पूर्ण उदारीकरण हो जाएगा। 10 साल की अवधि को 3, 4 और 3 वर्षों के तीन चरणों में विभाजित किया गया है जिनमें सिर्फ 51 प्रतिशत वस्त्र बाजार (16% + 17% + 18%) मुक्त हो जाएगा तथा शेष 49% बाजार को उदारीकरण हेतु 2003 के बाद का इंतजार करना होगा।

इस संबंध में चिंता की एक बात यह भी है कि आरंभिक वर्षों में वस्त्र और परिधान

के क्षेत्र में न्यूनतम उदारीकरण का ही प्रावधान है तथा इस दिशा में उदारीकरण के लिए महत्वपूर्ण कदम अंतिम तीन वर्षों के दौरान ही उठाए जाएंगे। अतः यह भारत के लिए भी संतोष की बात नहीं है। सही मायने में उदारीकरण की प्रक्रिया को तीव्रतर किए जाने की जरूरत है।

ङ) सूचना प्रौद्योगिकी एवं वित्तीय सेवा क्षेत्र संबंधी समझौते और भारत

13 दिसंबर 1997 को अर्थव्यवस्था के तीव्रतम गति से विकसित हो रहे वित्तीय सेवा क्षेत्र के संबंध में विश्व व्यापार संगठन के सदस्य देशों के बीच समझौता संपन्न होने पर, जिसे 1999 के प्रारंभ से विश्व व्यापार संगठन के सभी 132 देशों में लागू किया जाना था, विश्व व्यापार संगठन के प्रमुख रेनाटो एगिएरो ने कहा कि यह वर्ष अंतर्राष्ट्रीय व्यापार प्रणाली का स्वर्णिम वर्ष है—इस वर्ष 12 महीनों से भी कम अवधि में विश्व व्यापार संगठन ने यह तीसरा समझौता किया है, पहले दो समझौते सूचना प्रौद्योगिकी और दूरसंचार में व्यापार से संबंधित थे।

सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में विश्व व्यापार संगठन द्वारा किए गए समझौते से तो भारत को काफी लाभ मिलने की उम्मीद है। इलेक्ट्रॉनिकी विभाग के सचिव के अनुसार 'सूचना प्रौद्योगिकी करार पर हस्ताक्षर करके भारत सूचना प्रौद्योगिकी उद्योग में चल रही सार्वभौमिक क्रांति का एक अंग बन गया है।'[8] वर्ष 2000 तक सूचना प्रौद्योगिकी से संबद्ध पूंजीगत माल पर सीमा शुल्क शून्य प्रतिशत तक आ जाएगा। भारत अमरीका और यूरोप में काम करने के इच्छुक विशेषज्ञों के लिए विज़ा आदि की अच्छी सुविधाओं की भी मांग कर सकेगा।

जहां तक 13 दिसंबर 1997 को संपन्न हुए वित्तीय सेवा क्षेत्र संबंधी समझौते का प्रश्न है,

(i) इस समझौते के तहत भारत को मौजूदा 8 शाखाओं के स्थान पर हर साल विदेशी बैंकों की 12 शाखाओं को खोलने की अनुमति देनी होगी। गत वर्ष भारतीय रिज़र्व बैंक ने 15 ऐसी शाखाएं खोलने की अनुमति दी थी—पर महत्वपूर्ण बात यह है कि इस समझौते के कारण भविष्य में भारत को 12 शाखाएं खोलने की अनुमति 'तर्कसंगत और भेदभाव रहित' आधार पर अर्थात् सर्वाधिक अनुग्रहग्रस्त राष्ट्र (most favoured nation) के आधार पर देनी होगी।

(ii) भारत ने बीमा क्षेत्र को, जो अत्यधिक राजनैतिक विवाद का विषय रहा है, मुक्त करने के लिए कोई वायादा नहीं किया है। तथापि, 1999 का वर्ष इस मायने में उल्लेखनीय है कि प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में गठित केंद्र की नयी सरकार ने प्रमुख विपक्षी दल कांग्रेस के समर्थन से बीमा विधेयक पारित करा लिया। इससे बीमा क्षेत्र में निश्चय ही प्रतिस्पर्धा बढ़ेगी, जिसका फायदा अंततः उपभोक्ताओं को ही होगा।

(iii) जेनेवा में मिश्र के राजदूत मुनीर जहरन ने विसम्मति टिप्पणी लिखी। उनके अनुसार 'वस्तुतः यह एकपक्षीय समझौता है...अधिकांश विकसित देश अपने बाजार मुक्त कर देंगे। परंतु अधिकांश विकासशील देश उनके (औद्योगिक देशों के) बजारों में प्रतिस्पर्धा नहीं झेल सकेंगे। वे हमारे बाजारों में आएंगे पर हम वहां नहीं जा सकेंगे।[9]

वस्तुतः वित्तीय सेवा के क्षेत्र में विकसित देशों का प्रमुख हित निहित है। अमरीकी राष्ट्रपति बिल क्लिंटन ने यह कहते हुए समझौते का स्वागत किया है '70 से अधिक देशों द्वारा वित्तीय सेवा में व्यापार को उदार बनाए जाने के लिए किए गए इस समझौते से हमें विश्व बैंकिंग, प्रतिभूमि और बीमा जैसे ऐसे क्षेत्रों में पहुंच मिल गई है जिनमें हम विश्व में अग्रणी हैं।'[10]

फिलहाल भारत के लिए संतोष की बात है कि उसे अधिक वचनबद्ध नहीं होना पड़ा और उसने अपने हितों की रक्षा करते हुए बहुपक्षीय समझौते में अपनी भूमिका अदा की।

(iv) वित्तीय सेवा क्षेत्र के विश्व व्यापार संगठन के नियमों के तहत आ जाने से इस बाजार को मुक्त करने की अपनी वचनबद्धताओं से पीछे हटने वाले देशों को विश्व व्यापार संगठन की विवाद निपटान प्रणाली के दायरे में लाया जा सकेगा।

च) सामाजिक खंड की अवधारणा और भारत

इसे अमरीका के कहने पर शामिल किया गया था। ऊपर से देखने पर तो ऐसा लगता है कि विकसित देशों को विकासशील देशों के श्रमिकों के रहन सहन के स्तर की बड़ी चिंता है, पर सच पूछा जाए तो इसके जरिए वे विकासशील देशों को सुलभ एकमात्र प्रतिस्पर्धात्मक लाभ को भी छीन लेना चाहते हैं। भारत जैसी विकासशील अर्थव्यवस्था पर निश्चय ही इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा।

जी-15 के देशों के सख्त विरोध के कारण अमरीका को झुकना पड़ा तथा इस मसले को स्थगित कर दिया गया। 19-23 जनवरी 1995 को दिल्ली में हुए निर्गुट देशों और अन्य विकासशील देशों के श्रम मंत्रियों के 5वें सम्मेलन में इस सामाजिक खंड को पूर्णतः अस्वीकार्य बताया गया। दिसंबर 1999 में *सिएअल* में हुए विश्व व्यापार संबंधी बैठक में भी—जो अंततः गतिरोध में ही समाप्त हुआ—भारत ने श्रमिकों का स्तर बढ़ाने संबंधी अमरीका समर्थित प्रस्तावों का विरोध किया।[11] सच पूछा जाए तो श्रमिकों के स्तर एवं पर्यावरण की चिंता यूरोपीय संघ के देशों को अमरीका से भी अधिक है, जिसका कारण यह है कि यूरोपीय संघ की अर्थव्यवस्था में, जो अमरीका एवं ब्रिटेन की तुलना में ऐतिहासिक रूप से अधिक संरक्षणवादी तथा राज्यनियंत्रित है, अब गिरावट आ रही है और यूरोप के व्यापारी प्रौद्योगिकी की दृष्टि से उन्नत अमरीका एवं कम लागत वाले एशियाई देशों की तुलना में स्वयं को खराब स्थिति

905 HA/2000—3A

में पाते हैं। 1995 के विश्व व्यापार संबंधी चार्टर का उल्लंघन किए बिना प्रशुल्कगत अवरोध नहीं लगाए जा सकते। अतः यूरोप विश्व व्यापार संगठन के मंच पर पर्यावरण तथा श्रम संबंधी मुद्दे लाना चाहता है।'[12]

इसी तरह पर्यावरण संरक्षण खंड लागू करके भी विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था को क्षति पहुंचाने का प्रयास किया जा रहा है, जबकि सच तो यह है कि पिछले दो दशकों से विकसित देश ही पर्यावरण को क्षति पहुंचाते रहे हैं।

छ) निष्कर्ष

इसमें कोई शक नहीं कि द्विपक्षीय समझौतों की तुलना में बहुपक्षीय व्यापारिक समझौता बेहतर है तथा विकासशील देश एकजुट होकर ही अमरीका और यूरोपीय समुदाय के देशों से व्यापारिक रियायतें प्राप्त कर सकते हैं। इस नए व्यापारिक समझौते की एक उल्लेखनीय विशिष्टता यह है कि इसमें एक देश, एक मत के सिद्धांत को स्वीकार किया गया है—फिर भी विकसित देश बौद्धिक संपत्ति और 'ट्रिम्स' के जरिए अपना दबाव बनाए रखते हैं। 'सामाजिक खंड' और 'पर्यावरण संरक्षण खंड' कुछ ऐसे अन्य हथियार हो सकते हैं जिनका विकसित देशों द्वारा विकासशील देशों के खिलाफ इस्तेमाल किया जा सकता है। विकसित देशों की ये रणनीतियां जारी रहेंगी। ऐसे में विकासशील देशों को चाहिए कि वे एकजुट होकर अपनी-अपनी संप्रभुता और हितों की रक्षा करते हुए बहुपक्षीय व्यापारिक संगठनों का फायदा उठाएं।

जहां विकसित देश यह चाहते हैं कि विश्व व्यापार संगठन के बहाव के तहत विकासशील देश अपने व्यापारिक अवरोधों को दूर करते हुए वस्तुओं और सेवाओं के मुक्त व्यापार का मार्ग प्रशस्त करें, वहीं वे अपने हितों की रक्षा के लिए स्वयं किसी न किसी रूप में संरक्षणात्मक नीतियों को लागू किए रखना चाहते हैं तथा उनके इरादे नेक नहीं प्रतीत होते हैं और यही वजह है कि पेटेंट कानूनों में प्रस्तावित संशोधनों पर भारतीय संसद की मुहर आज तक नहीं लग सकी है क्योंकि अधिकांश सांसद विकसित देशों के इरादों के प्रति आशंकित हैं।

प्रबंधक, बैंकिंग परिचालन और विकास विभाग, केंद्रीय कार्यालय, मुम्बई

टिप्पणियां

1. स्रोत—टाइम्स ऑफ इंडिया, 12-01-2000, पृ. 19
2. बिजनेस इंडिया 26-1-98 (स्मार्ट इन्वेस्टर पृ. 6) (हिंदी अनुवाद)
3. अमर-उजाला कारोबार, नई दिल्ली, 15.5.98, पृ. 14
4. अमर-उजाला कारोबार, नई दिल्ली, 15.5.98, पृ. 14

905 HA./2000—3B

5. सुमन सहाय 'गैट एंड पेटेंटिंग ऑफ माइक्रोआर्गनिज़्म' (इकनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 9.4.94 पृ. 841) (हिंदी अनुवाद)।
6. दि इकनॉमिक टाइम्स (मुंबई) 20/2/98 पृ.10
7. इंम्पैक्ट ऑफ लिबरलाइजेशन आन फारेन डाइरेक्ट इन्वेस्टमेंट, खंड 5. (अंडरस्टैंडिंग इंडियाज इकनॉमिक प्राब्लेम्स) पृ. 113 (हिंदी अनुवाद)
8. कंप्यूटर टुडे, मई 97, पृ. 128 (हिंदी अनुवाद)
9. फाइनेंशियल एक्सप्रेस (मुंबई), 14-12-97 (पृ. 1) (हिंदी अनुवाद)
10. —वही—
11. स्रोत—टाइम्स ऑफ इंडिया, 12-01-2000, पृ. 19।
12. दि इकनॉमिक टाइम्स, 12 नवंबर 1999, पृ. 7 (हिंदी अनुवाद)

1970 के दशक से, जब हमारे सकल घरेलू उत्पाद की वार्षिक वृद्धि दर केवल 3.5% थी, आर्थिक विकास की दर बढ़कर लभग 6.5% हो गई है। आमतौर से यह तथ्य सभी नहीं जानते कि भारतीय अर्थव्यवस्था 1990 के दशक में विश्व में तेजी से बढ़ रही दस अर्थव्यवस्थाओं में से एक है। हम अपनी उद्यमशीलता, घरेलू निजी बचतों के ऊंचे स्तर और उच्च स्तर के प्रबंधकीय तथा तकनीकी कुशलता पर गर्व कर सकते हैं। इन सभी ने आर्थिक विकास की गति को और तेज़ करने के लिए आर्थिक सुधारों को सुदृढ़ और स्थाई आधार प्रदान किया। आज हमें अपनी उपलब्धियों पर गर्व है, लेकिन इस दिन हमें ईमानदारी से आत्म विश्लेषण भी करना होगा तथा स्वयं से पूछना होगा कि बतौर नागरिक और बतौर समाज हम किस दिशा में बढ़ रहे हैं।

गणराज्य बनने के 50 वर्ष बाद भी, हम पाते हैं कि हमारे करोड़ों नागरिक सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय से अभी वंचित हैं। अभी भी आर्थिक विकास के लाभ उन तक नहीं पहुंच पाए हैं। हमारे पास विश्व में सबसे अधिक तकनीकी कार्मिक हैं और सबसे अधिक निरक्षर भी, हमारे पास विश्व का सबसे बड़ा मध्य वर्ग है और गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों तथा कुपोषण के शिकार बच्चों की संख्या भी सबसे अधिक है।

—श्री के.आर. नारायणन, भारत के राष्ट्रपति

उदारीकरण और आर्थिक विकास

डॉ. (श्रीमती) माया दे. केम

भारत ने वर्ष 1991 के मध्य से व्यापक आर्थिक सुधारों को अपनाया। भारत की अर्थव्यवस्था सुदृढ़ नहीं रही है। यह राज्य संचालित अर्थव्यवस्था रही है। अतः जहां एक ओर हमारे पास राज्य-संचालित रेलवे, बैंकिग, प्रतिरक्षा आदि जैसे क्षेत्र हैं वहां दूसरी ओर कृषि और सेवा जैसे मुक्त क्षेत्र भी हैं। उदारीकण की शुरूआत करते हुए हमने नियंत्रण व्यवस्था को चरणवार ढंग से हटाकर विकासशील तथा उन्नतशील योजनाओं को अपनाया है। उदारीकरण की प्रक्रिया के प्रारंभ से ही विदेश व्यापार के क्षेत्र में व्यापक सुधार किए गए। परिणामस्वरूप, आर्थिक सुधारों के कारण इस क्षेत्र में अत्यधिक प्रगति हुई है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से भारत आर्थिक विकास के लिए आयात नीति का अनुसरण करता रहा है। आयात करने पर लगे प्रतिबंध सहित उद्योगों पर लाइसेंस देने में अनेक नियंत्रण लागू थे और सार्वजनिक क्षेत्र को महत्वपूर्ण भूमिका सौंपी गई। फलस्वरूप, उत्पादन पद्धति अधिक खर्चीली और प्रतिस्पर्धा विहीन हो गई जो बाजार परिस्थितियों का पूर्णरूपेण सामना नहीं कर सकी। घरेलू उद्योग संरक्षित व्यवस्था के कारण विदेशी प्रतिस्पर्धा से लगभग अलग-थलग पड़ गया। परिणामस्वरूप, घरेलू मांग और पूर्ति तथा उच्च लागत और उत्पादन के बीच आंशिक असंतुलन पैदा हो गया। यह कहना उचित नहीं होगा कि यह एक सोचा समझा निर्णय नहीं था। उदाहरण के लिए जापान ने तब तक ऐसी नीति को अपनाया जब तक वह विशाल औद्योगिक देश नहीं बन गया। हमारे प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू देश में औद्योगिक विकास चाहते थे जिसे वे उद्योगों को 'आधुनिक भारत का मंदिर' कहते थे वे उपनिवेशवाद से उत्पन्न अनियंत्रित प्रतिस्पर्धा पर रोक लगाना चाहते थे क्योंकि इससे देश का अधिकांश धन बाहर चला जाता था।

नीति निर्माताओं ने 1980 में निर्यात को बढ़ावा देने की कार्यनीति पर विशेष ध्यान दिया। लाइसेंसिंग हटाकर, निजीकरण प्रक्रियाओं को आसान बनाकर विदेशी निवेश को उदार बनाकर तथा पूंजी बाजार में सुधार करके जुलाई 1991 में आर्थिक सुधारों का शुभारंभ किया गया। भारत सरकार ने अपनी आर्थिक नीति में परिवर्तन करके इसे निर्यातोन्मुख बनाया जिससे आर्थिक विकास की वृद्धि दर उच्च और गति तेज हो गई। यह एक प्रमाणित तथ्य है कि निर्यात उत्पादन का एक अतिरिक्त कारक है और इससे अर्थ-व्यवस्था की उत्पादकता बढ़ाने में सहायता मिली है। इस प्रकार, विकासशील देशों में आयात अधिकांश उद्योगों की समहत्वपूर्ण निविष्टयों के रूप में कार्य करता है।

व्यापार नीति सुधार जिस पर प्रारंभ में विशेष बल दिया गया है इसके अंतर्गत संपूर्ण नीति पैकेज आते हैं जैसे आयात और निर्यात पर मात्रात्मक और प्रशासनिक नियंत्रण,

औद्योगिक लाइसेंसिंग पर नियंत्रण कम करना, विदेशी मुद्रा पर शुल्क ढांचा और नियंत्रण।

तटस्थ शक्तियों को मुख्य धारा में लाने के लिए आर्थिक पुनर्गठन हमारी नीति की आधार शिला रही है। आठ वर्षों की अवधि के भीतर, हमने शीर्ष शुल्क दर जो 1991 में 200 प्रतिशत थी उसे 1999 में घटकर 30 प्रतिशत कर दिया है। कच्चे माल की अधिकतर श्रेणियों और अनेक पूंजीगत वस्तुओं को अब बिना किसी प्रतिबंध के आयात किया जा रहा है। सीमाशुल्क में भारी कटौती के साथ-साथ सीमाशुल्क प्रक्रिया का सरलीकरण करते हुए उत्पाद और सीमाशुल्क में संतुलन कायम करके कागजी कार्रवाई को कम कर दिया है। अप्रैल, 97 को हमने 5 वर्षों की अवधि के लिए निर्यात-आयात नीति की घोषणा कर दी है जिसमें हमने प्रतिबंधित श्रेणी से 542 मदों को हटा दिया है और उन्हें मुक्त रूप से आयात योग्य बना दिया है। इस नीति में हमने उदारीकरण, पारदर्शिता और व्यापार को विश्वव्यापी बनाने के प्रति हमारी बचनबद्धता के अनुरूप मात्रात्मक प्रतिबन्धों को पर्याप्त रूप से चरणबद्ध ढंग से हटा दिया है। आधार भूत ढांचे, पूंजीगत परियोजनाओं और रोजगार की संभावना वाले क्षेत्रों की परियोजनाओं को शीघ्र मंजूर करने के लिए हमने जनवरी 1997 में प्रत्यक्ष विदेशी-निवेश हेतु मार्गदर्शी सिद्धांतों की घोषणा की है। उक्त परियोजनाओं को पहले स्वत: अनुमोदन प्रक्रिया के तहत नहीं रखा गया था। हम महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में निजी क्षेत्रों के निवेश का स्वागत करते हैं और इस संबंध में हमने आकर्षक वित्तीय रियायतें घोषित की हैं।

अर्थव्यवस्था के महत्वपूर्ण क्षेत्रों के पुनर्गठन के अनुरूप हमने प्रक्रियाओं को सरल बनाने की सतत् प्रणाली आरंभ की है जिसके तहत हमारा प्रयास न केवल कार्य प्रणाली में पारदर्शिता और खुलापन लाने का रहा है बल्कि कागजी कार्यवाही को कम करना भी रहा है। राष्ट्र संघ के ई.डी.आई. परियोजना में भारत की सक्रिय भागीदारी रही है ताकि हमारे व्यापारिक भागीदारों के साथ घनिष्ठ और शीघ्र विचार-विमर्श करने के लिए इलैक्ट्रॉनिक व्यापार सुविधाओं को बढ़ाया जा सके। विश्व व्यापार के साथ अपनी अर्थव्यवस्था एकीकृत करने के लिए सरकार वचनबद्ध है। नीति निर्माताओं का विचार है कि सरकार को व्यापार और वाणिज्य पर नियंत्रण रखने वाले निकाय के रूप में ही कार्य नहीं करना चाहिए बल्कि विश्व व्यापार की प्रक्रियाओं को सुगम बनाने की भूमिका अदा करनी चाहिए।

उदारीकरण और विश्व व्यापार जो काफ़ी आगे बढ़ चुके है, के प्रति वचनबद्धता के संबंध में, वर्षों से किए गए प्रयासों से आर्थिक विकास के अनेक क्षेत्रों में भारी सफलता मिली है। सकल घरेलू उत्पादक में 6 प्रतिशत की वृद्धि दर प्राप्त हुई है जो संभवत: विश्व की किसी भी शीर्ष स्तर की अर्थव्यवस्था के समतुल्य है। मुद्रा स्फीति की दर को नियंत्रण में रखा गया है और यह इस समय 6 प्रतिशत से भी कम है। विनिर्माण क्षेत्र में 16.3 प्रतिशत की वृद्धि हुई है जबकि निर्यात के क्षेत्र में वृद्धि दर 16 प्रतिशत है। कृषि और संबद्ध क्षेत्रों ने भी काफी विकास किया है। सकल घरेलू उत्पाद की प्रतिशतता के रूप में वित्तीय घाटे में कमी आई है। डॉलर की तुलना में रुपए के मूल्य में भी स्थिरता आई है और हमारे विदेशी मुद्रा भंडार में भी वृद्धि हुई है। आज भारत ने कई क्षेत्रों में भारी सफलता प्राप्त कर ली

है। उदाहरण के लिए, हमारे साफ्टवेयर और सेवा संबंधी उद्योगों की क्षमता को अमेरिका और यूरोप ने भी सराहा है। हमने इन देशों को एक विलियन से भी अधिक डालर मूल्य के साफ्टवेयर का निर्यात किया है। हमने आई.एम.ओ. 2000 मानक को अपना लिया है और हमारी लागत भी कम आती है। हमारे पास विनिर्मित माल के लिए लघु और मध्य स्तर के उद्योगों का एक मजबूत ढांचा है। इस क्षेत्र में 50 प्रतिशत से भी अधिक का निर्यात होता है। हम, दूरसंचार और रेलवे के क्षेत्र में भी अपना सहयोग देना आरंभ कर चुके हैं। हम भेषज, विशेषतया थोक औषधों के क्षेत्र में लागत की दृष्टि से प्रतिस्पर्धा कर सकते हैं। संक्षेप में आज भारत के पास माल और सेवाओं की एक विस्तृत रेंज है, जिसका विश्व बाजार में एक विशेष स्थान हो सकता है। दूसरी ओर, भारत, विश्व उद्योग जगत के लिए अत्यधिक अवसरों की पेशकश करता है। हाल ही में प्रकाशित एक रिपोर्ट से पता चला है कि आगामी वर्षों में आधारभूत ढ़ांचे के विकास के लिए हमें 300 बिलियन अमरीकी डालर से भी अधिक धनराशि के निवेश की आवश्यकता होगी।

भारत में आधारभूत ढ़ांचे के क्षेत्र में अब तक सार्वजनिक क्षेत्र की ही भूमिका रही है। अब भारत ने आधाभूत ढ़ांचा विशेषतया पत्तन, रोड़वेज, विद्युत, दूरसंचार, खनन और कोयला के क्षेत्रों में निजी भागीदारी का स्वागत किया है।

संक्षेप में, हमने अपनी नीतियों को उदार बना दिया है ताकि विदेशी कंपनियां आसानी से यहां अपना उद्योग लगा सके। मुझे विश्वास है कि भारत में निवेश करने की इच्छुक कंपनियां इससे प्रेरित होंगी।

संयुक्त निदेशक, विदेश व्यापार, डी-II/154 किदवई नगर (वेस्ट), नई दिल्ली

हमें यह देखना चाहिए कि अन्य देशों में सामाजिक व्यवस्था किस तरह कार्य कर रही है और अन्य देशों के साथ विचारों का बेहिचक आदान–प्रदान करते रहना चाहिए...इसलिए अपने संकीर्ण दायरे से बाहर निकलो और बाहरी दुनिया के बारे में जानो। देखो कि दूसरे देश कैसे प्रगति के पथ पर अग्रसर हैं।

–स्वामी विवेकानंद

भारत में आर्थिक पुनर्रचना

—पी.वी. राजीव

आजादी हासिल करते ही भारत ने योजनाबद्ध आर्थिक विकास का रास्ता अपनाया। उस समय देश के नेता, सोवियत संघ में आर्थिक आयोजना की सफलता से प्रभावित एवं प्रेरित थे। आज हम उस मुकाम पर आ पहुंचे हैं जहां आयोजना अपनी विश्वसनीयता खो चुकी है और स्वयं सोवियत संघ विखंडित हो चुका है। आज हम नए विचारों और मॉडलों की तलाश में हैं। आज की जादुई तरकीब बाजार अर्थव्यवस्था है जिसके सिद्धांतों का पालन एक फैशन बन गया है। दुनिया के देश जिनमें अब चीन भी शामिल हो चुका है, अपने यहां आर्थिक विकास की प्रक्रिया को तेज करने के लिए बाजार की शक्तियों की विपुल संभावनाओं का दोहन करने में जुटे हैं।

भारत में आयोजना विफल रही है ऐसा मानना उचित नहीं है। भारत में आर्थिक आयोजना के अनेक सकारात्मक पक्ष रहे हैं। आयोजना के जरिए ही देश एक मजबूत औद्योगिक आधार प्राप्त कर सका है। हरित क्रांति देश में आर्थिक आयोजना के जमाने में ही पल्लवित एवं पुष्पित हुई। हरित क्रांति के सामयिक आगमन से देश ने उन तमाम लोगों को झूठा साबित कर दिखाया जिन्होंने देश में अन्नाभाव, अकाल और भुखमरी होने की भविष्यवाणी की थी। हरित क्रांति की ही बदौलत देश, आजादी के बाद, खाद्य उत्पादन में वृद्धि की दर को जनसंख्या वृद्धि की दर से अधिक बनाए रखने में कामयाब रहा।

आर्थिक आयोजना के दौर में ही हमारा देश विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में प्रशिक्षित जनशक्ति के मामले में दुनिया के तीसरे सबसे बड़े पूल के रूप में उभर सका। यद्यपि परिमाण और संख्या की दृष्टि से हमारी उपलब्धियां सराहनीय रहीं, तथापि इस प्रशिक्षित जनशक्ति की गुणवत्ता में सुधार की गुंजाइश है, हालांकि यह भी सच है कि इसी जनशक्ति के बीच दुनिया की सर्वश्रेष्ठ प्रतिभा भी देखी जा सकती है। हमारी सबसे बड़ी विफलता यह रही कि हम अपने इस विपुल विभव का दोहन राष्ट्र निर्माण के कार्यों के लिए नहीं कर पाए। वैज्ञानिक तथा तकनीकी जनशक्ति का उपयोग जिस स्तर पर हो रहा है वह उसके विभव के स्तर से काफी कम है।

आर्थिक आयोजना ने लगभग चालीस वर्ष तक इस देश के विकास को गतिशीलता प्रदान की। लेकिन यह भी सच है कि इसने नौकरशाही, अकर्मण्यता, लाल फीताशाही की बुराइयां तथा अति नियंत्रित एवं अति-विनियमित अर्थव्यवस्था के हालात भी पैदा किए। समाजवादी सामाजिक ढ़ांचे की स्थापना के नाम पर देश के ऊपर नियंत्रण एवं विनियमन के तंत्र को थोप दिया गया। कालांतर में इन नियंत्रणों एंव विनियमनों ने जंजीरों का रूप धारण करके आर्थिक व्यवस्था का गला घोंट दिया और उसकी समस्त गतिशीलता एवं

सृजनात्मकता को अवरुद्ध कर दिया।

आर्थिक क्षेत्र में कुछ भी करने के लिए, चाहे वह नए सिरे से उत्पादन शुरू करना हो या विद्यमान एककों की उत्पादन क्षमता में वृद्धि करना हो, सभी मामलों में नौकरशाही की स्वीकृति लेनी पड़ती थी। हर स्टेज पर स्वीकृति लेने की विवशता से उत्पादन वृद्धि की रफ्तार धीमी होती चली गई और भ्रष्टाचार के रास्ते खुलते चले गए। नौकरशाही की बाधाओं को प्रायः रिश्वत के जरिए ही दूर किया जाता था। इस प्रकार अति-नियंत्रण तथा अति विनियमन ने आर्थिक विस्तार की गति को सीमित कर दिया और हमारी अर्थव्यवस्था की सारी शक्ति को लामबंद करने की बजाय लगामबद्ध कर दिया।

इस व्यवस्था में सुधार किया जाना अत्यंत आवश्यक था। हाल में हमारी अर्थव्यवस्था का उदारीकरण करके इसे अति-विनियमन से मुक्त किया गया और एक दूरदर्शी एवं दूरगामी शुरूआत की गई। देश की अर्थव्यवस्था को अनिवासी भारतीयों तथा बहुराष्ट्रिक कंपनियों द्वारा निवेश के लिए खोला जा रहा है। यद्यपि आधुनिकतम प्रौद्योगिकी और विदेशी मुद्रा को देश में लाने के लिए विदेशी निवेश की भूमिका को कम नहीं आंका जा सकता, तथापि अपने विशाल देश के विकास के लिए संसाधनों को अंदरूनी तौर पर ही उत्पन्न किया जाना चाहिए।

भारत में आरंभ किए गए ढांचागत सुधार कार्यक्रम को अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक का पूर्ण समर्थन प्राप्त है किंतु इसका मतलब यह नहीं है कि हमने अपनी आर्थिक संप्रभुता को बहुपक्षीय वित्तीय संस्थाओं के पास गिरवी रख दिया है। अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्थाओं को विनियमित करना तथा उनकी निगरानी रखना अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एवं विश्व बैंक की भूमिका के अंतर्गत आता है। भारत उन देशों में से है जो बहुपक्षीय वित्तीय संस्थाओं के वित्तीय संसाधनों में वृद्धि के निरंतर हामी रहे हैं। अतः जब हमारे देश को भुगतान संतुलन की समस्या से जूझना पड़ रहा था तो अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से सहायता मांगना हमारे लिए स्वाभाविक ही था।

अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से उधार लेने का महत्वपूर्ण पहलू है, उससे जुड़ी शर्तें। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष ने जो शर्तों लगाई हैं वे वस्तुतः ऐसी हैं जिनकी आज इस देश को भी अत्यधिक आवश्यकता थी। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष का आग्रह न भी होता, तो भी कोई भी विवेकवान सरकार ऐसी शर्तों अपने ऊपर लगाना उचित समझती। अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा आरोपित बाध्यताएं हमारे हित में हैं। इसका कारण यह है कि यदि बाध्यता का तत्व नहीं होता तो अपने यहां की राजनीतिक स्थिति, निहित स्वार्थ तथा दबाव ग्रुपों की प्रवृत्तियों के चलते इन शर्तों के तोड़े जाने की बहुत अधिक संभावना थी। कड़ी निगरानी और वित्तीय अनुशासन के लाभ अब खुद ही हमारे सामने आ रहे हैं। मुद्रा-स्फीति की दर एक अंकीय स्तर तक नीचे आ चुकी है और इसके और नीचे आने के पूरे संकेत हैं।

यद्यपि हमारी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में कृषि का हिस्सा अब पहले से कम हो गया है, तथापि कृषि अभी भी भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्डी है। हाल में इस प्रकार की आशंकाएं व्यक्त की गई थीं कि मानूसन की विफलता तथा उसके परिणामस्वरूप देश में कृषि उत्पादन में बाधा आने से देश में आरंभ किए गए ढ़ांचागत सुधारों की समस्त प्रक्रिया अस्त-व्यस्त हो जाएगी। इससे भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि क्षेत्र के महत्व का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

हाल में भारत में कृषि क्षेत्र में कुछ महत्वपूर्ण प्रवृत्तियां उभरती नज़र आ रही हैं। प्रथमतः हमारे देश में कृषि वस्तुओं के निर्यात की बेहतर संभावनएं नज़र आती हैं। देश के प्रदत्त संसाधनों के संदर्भ में इस प्रवृत्ति का स्वागत किया जाना चाहिए। दूसरे, देश में खाद्य प्रसंस्करण उद्योग के विकास की काफी संभावनाएं हैं जिनका हमारे कृषि उत्पादन के ढ़ांचे पर सकारात्मक प्रभाव हो सकता है। तीसरे, किसानों का रुझान खाद्य फसलों की पैदावार की बजाय अधिक मूल्य देने वाली फसलों की पैदावार की ओर बढ़ रहा है। इसका भारत की खाद्य सुरक्षा पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ सकता है। अंत में, किसानों में अपनी उपज को खाद्यान्न वसूली करने वाले अभिकरणों को बेचने की बजाय खुले बाजार में बेचने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। ये चारों प्रवृत्तियां भारत में कृषि क्षेत्र के बढ़ते हुए वाणिज्यिकरण की ओर संकेत करती हैं।

इन प्रवृत्तियों के, भारत की लोक वितरण प्रणाली की वाणिज्यिक सार्थकता के लिए महत्वपूर्ण निहितार्थ हो सकते हैं। लोक वितरण प्रणाली भले ही कितनी भी वांछनीय हो, इसे जारी रखना आने वाले समय में कठिन हो जाएगा। इसे यदि इसके वर्तमान स्तर पर भी बना कर रखा जाए तो भी इसके अंतर्गत उपभोक्ताओं को दी जाने वाली रियायतों को कम करना पड़ सकता है क्योंकि किसान अब अपनी उपज को खुले बाजार में बेचना चाहेंगे। तथापि, यह देखना होगा कि यह एक सार्वकालिक प्रवृत्ति है या मात्र एक आवधिक घटना है।

भारत में उर्वरकों पर दी जाने वाली राजसहायता को पहले ही सारवान रूप से कम किया जा चुका है। भविष्य में, इसमें और अधिक कटौती की आशा की जा सकती है। यह एक शुभ संकेत है क्योंकि इस योजना के लाभभोगी मुख्य रूप से धनी वर्ग के किसान रहे हैं। उर्वरक राजसहायता के कम किए जाने से प्राप्त संसाधनों को अब कृषि क्षेत्र में ही अधिक उत्पादक ढंग से निवेशित किया जा सकता है। इस प्रकार का पुनर्विवेश नितांत रूप से अपेक्षित हैं।

विगत वर्षों में, भारतीय अर्थव्यवस्था को हरित क्रांति से काफी लाभ हुआ है। किंतु हरित क्रांति की सफलता देश के कुछ विशेष भागों तक ही केंद्रित एवं सीमित होकर रह गई है। देश के इन भागों में अब खाद्य फसलों की पैदावार की बजाय अधिक मूल्य देने वाली फसलों की पैदावार के प्रति अधिक लगाव दिखाई देता है। इस प्रकार देश में खाद्यान्न उत्पादन की भावी वृद्धि, हरित क्रांति के दायरे को नए क्षेत्रों तक—विशेष रूप से देश के

पूर्वी भागों तक फैलाने पर निर्भर करेगी। आने वाले समय में भारत की कृषि आधारित अर्थव्यवस्था के लिए यह एक प्रमुख चुनौती होगी।

भारत में कृषि क्षेत्र पर टैक्स लगाने का सवाल आरंभ से ही विवादास्पद रहा है। कृषि क्षेत्र पर आय कर लगाने में बड़ी-बड़ी प्रशासनिक बाधाओं का सामना करना पड़ेगा। यह सवाल किया जा सकता है कि इतनी बढ़ी प्रशासनिक बाधाओं के चलते एक ऐसे क्षेत्र पर जो पहले ही अधोमुखी है और जिससे आमदनी विशेषतः घटनी-बढ़ती नहीं है, आयकर लगाना कहां की समझदारी है। इसके अलावा, अभी हाल में इस क्षेत्र से उर्वरक राज सहायता वापस ले ली गई है, इस प्रकार इस क्षेत्र पर तो अप्रत्यक्ष रूप से पहले ही आयकर लग चुका है। अतः कृषिक्षेत्र पर पूरे तौर पर आयकरं लगाने का अभी समय नहीं आया है। कृषिक्षेत्र पर आयकर लगाने पर ध्यान केंद्रित करने की बजाय इस क्षेत्र से कतिपय रियायतों जैसे सस्ती दर पर बिजली सप्लाई, आसान दरों पर ऋण सुविधा इत्यादि को वापस लेकर इस क्षेत्र में से अतिरिक्त संसाधन जुटाने का अब उपयुक्त अवसर है। अब जबकि कृषि क्षेत्र से, अप्रत्यक्ष रूप से संसाधन जुटाने हेतु इस प्रकार के उपायों पर विचार किया जा रहा है, कृषि क्षेत्र पर आयकर के जरिए किसानों पर अतिरिक्त भार लादना एक जल्दबाजी का कदम होगा।

भूमि सुधार एक ऐसा विषय है जिस पर चर्चा तो काफी हुई है किंतु कार्यवाही के नाम पर कुछ नहीं हुआ है। जैसे-जैसे समय बीतता जा रहा है भूमि सुधार लागू करने से होने वाले लाभ तेजी से घटते नज़र आते हैं। इसका कारण यह है कि जनसंख्या में तेज गति से वृद्धि होने से जोतों का आकार इस कदर घटता जा रहा है कि पुनर्वितरण के लिए उपलब्ध संभावित अतिरिक्त भूमि निरंतर घटती जा रही है। भारत में केरल ऐसा राज्य है जहां सभी के लिए संतोषजनक रूप में भूमि सुधारों को लागू किया गया है। किंतु जब से वहां भूमि सुधारों को लागू किया गया है, तभी से केरल में कृषि उत्पादन में वस्तुतः ठहराव (यहां तक कि गिरावट की स्थिति) आया है। साल दर साल यह ऐसे राज्यों पर निर्भर होता गया है जहां खाद्य उत्पादन जरूरत से अधिक होता है। अतः देश के अन्य भागों में भूमि सुधार की सिफारिश करने से पहले केरल के अनुभव की सावधानीपूर्वक जांच-परख कर लेना बेहतर होगा।

प्रायः एक सवाल पूछा जाता है कि भारत को कृषि विकास को अग्रता देनी चाहिए या औद्योगिक विकास को। इसका सही जवाब है—दोनों के बीच एक उचित संतुलन कायम करना। आधुनिक अर्थव्यवस्था में कृषि एक अधोमुखी क्षेत्र है जबकि उद्योग एक ऊर्ध्वमुखी क्षेत्र है। अतः औद्योगिक उत्पादन की दीर्घकालीन वृद्धि दर कृषि उत्पादन की दीर्घकालीन वृद्धि दर से ज्यादा रहेगी। इन दो क्षेत्रों के लिए संसाधनों का आवंटन करते समय हमें उनकी जरूरतों के साथ-साथ उनके विकास की संभावनाओं को भी देखना होगा। कृषि विकास और औद्योगिक विकास को एक दूसरे के हितविरूद्ध रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। इन दोनों क्षेत्रों में विकास को एक दूसरे का संपूरक समझना चाहिए। कृषि उत्पादन में वृद्धि से औद्योगिक श्रमिकों के लिए रोजमर्रा के अति आवश्यक सामान की सप्लाई सुनिश्चित हो जाती

है और किसानों को भी औद्योगिक सामान खरीदने के लिए आमदनी का साधन उपलब्ध हो जाता है। दूसरी ओर, उद्योग, कृषिक्षेत्र में काम आने वाली महत्वपूर्ण वस्तुएं जैसे—उर्वरक, ट्रैक्टर इत्यादि उपलब्ध कराता है और ग्रामीण जनसंख्या की मांग के अनुसार उपभोक्ता सामान उपलब्ध कराता है।

हमारे आर्थिक पुनर्रचना कार्यक्रम का आरंभिक जोर प्रमुखतः औद्योगिक क्षेत्र पर रहा है। दरअसल इस क्षेत्र को ही सुधारों की सर्वाधिक जरूरत भी थी। देश में औद्योगिक क्षेत्र का गला विनियमनों तथा नियंत्रणों की जंजीरों से बुरी तरह घोट दिया गया था, जो न केवल तीव्र गति से वृद्धि और आधुनिकीकरण के मार्ग में बाधा बन गए थे बल्कि बेरोकटोक भ्रष्टाचार के भी स्रोत बन गए थे। अनेक मामलों में एकाधिकार को रोकने के नाम पर नियंत्रण लगाए गए थें किंतु वास्तव में नियंत्रण उद्योगपतियों की शक्ति तथा एकाधिकार को जारी रखने में उनके सहायक बन गए थे। अनेक प्रकार के नियंत्रणों का मकसद नए उद्योगों को स्थापित होने से रोकना तथा विद्यमान उद्योगों की उत्पादन क्षमता में वृद्धि को रोकना था। उद्योगपतियों ने इन नियंत्रण तंत्रों का दुरुपयोग उत्पादन के क्षेत्र में प्रतिद्वंद्वी फर्मों के प्रवेश को रोकने के लिए किया। इस प्रकार, नियंत्रण जिनको एकाधिकार की वृद्धि को रोकने के लिए लगाया गया था, वस्तुतः एकाधिकार की वृद्धि में ही सहायक हुए। इसके अतिरिक्त नियंत्रण तंत्रों ने भारतीय उद्योगों को इतना संरक्षण दिया कि इसका परिणाम अकुशलता, उत्पादन की ज्यादा लागत, उत्पादों की गुणवत्ता में कमी और उत्पादन का निम्न स्तर हुआ। घाटे में एकाधिकारी पूंजीवादी नहीं रहे, जैसी कि उम्मीद थी बल्कि वे उपभोक्ता रहे जिनके ऊपर ऊंची कीमतों तथा घटिया क्वालिटी का भार लाद दिया गया था। सुविधा एवं सरंक्षण प्राप्त वातावरण में उद्योगपति फलताफूलता तो रहा किंतु उसमें कुछ नया कर दिखाने तथा प्रतिस्पर्धा करने वाली गतिशीलता समाप्त हो गई। वह अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा तथा निर्यात के मामले में पिछड़ गया क्योंकि वह एक विशाल संरक्षित घरेलू बाजार में अकुशल तथा उच्च लागत वाली उत्पादन संरचना में भी अपना काम चला सकता था।

उदारीकरण और खुली नीति का उद्देश्य भारतीय औद्योगिक क्षेत्र में गतिशीलता तथा प्रतिस्पर्धा को फिर से बहाल करना है। इसके अंतर्गत उद्योगों को लाइसेंस मुक्त करना तथा नियंत्रण हटाना शामिल है ताकि एक प्रतिस्पर्धा माहौल में औद्योगिक गतिशीलता को खुली छूट देते हुए बेहतर वातावरण उपलब्ध कराया जा सके। घरेलू उद्योगपतियों को प्रतिस्पर्धा न केवल बहुराष्ट्रिक कंपनियों से बल्कि अनिवासी भारतीयों से भी करनी होगी। भारतीय अर्थव्यवस्था में पूंजी और प्रौद्योगिकी का और अधिक अंतर्वाह होने की आशा है। आशा है कि इससे अधिक स्पर्धा, अधिक उत्पादन, बेहतर क्वालिटी, कम कीमत तथा अधिक निर्यात को सुनिश्चित किया जा सकेगा जिनका प्रमुख लाभ उपभोक्ताओं को ही प्राप्त होगा। इसके अलावा, उद्योगपति अपनी रचनात्मक ऊर्जाओं को साकार रूप दे सकेंगे।

आर्थिक सुधार कार्यक्रम का असर निजी औद्योगिक क्षेत्र पर ही नहीं सरकारी क्षेत्र पर भी पड़ेगा। कुछ लोग आर्थिक पुनर्रचना कार्यक्रम का संबंध निजीकरण से जोड़ते हैं किंतु

यह ऐसा मसला है जिस पर भारत ने बहुत फूंक-फूंक कर कदम रखने का फैसला किया है। सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों में विनिवेश का सिलसिला शुरू करके निजीकरण की प्रक्रिया को शुरू कर दिया गया है। भारत में सरकारी क्षेत्र के उद्योग कार्यकुशलता के अभाव, आवश्यकता से अधिक कर्मचारी-संख्या तथा उत्पादन की लागत अधिक होने जैसी नकारात्मक बातों से ग्रस्त रहे हैं। सरकारी क्षेत्र के अनेक उपक्रम लंबे समय से घाटे में चल रहे हैं जबकि उन्हीं क्षेत्रों में निजी क्षेत्र के उद्योग लाभ अर्जित कर रहे हैं। अतः सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों की पुनर्रचना किए बिना भारत में आर्थिक सुधार कार्यक्रम अधूरा रहेगा। निजीकरण का एक लाभ यह है कि इससे सरकारी खज़ाने में धन की उपलब्धता बढ़ेगी और उसका उपयोग बजट घाटे को पाटने के लिए किया जा सकेगा। इस समय भारत सरकार के सामने सरकारी क्षेत्र में विनिवेश करने का एक सशक्त कारण बजट घाटे को समाप्त करना है। लेकिन यदि विनिवेश के लिए चुने गए उपक्रमों की कार्यकुशलता एवं उत्पादकता को बढ़ाना है तो इस मामले में बहुत विवेक से काम लेना होगा।

आर्थिक सुधार का एक अन्य पहलू जो गरमागरम बहस का मुद्दा बना है वह है छंटनी नीति तैयार करने का प्रयास। इस बात का कोई औचित्य नहीं है कि एक औद्योगिक इकाई जो घाटे में चल रही है और जो तकनीक तथा उत्पादन प्रक्रियाओं के मामले में अपनी उपयोगिता और अपने अस्तित्व का तर्काधार गंवा चुकी है फिर भी वह केवल कर्मचारियों का रोजगार बचाने के उद्देश्य से अस्तित्व में बनी रही। उद्योग के क्षेत्र में छंटनी नीति के महत्व को इसी परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए। किंतु भारत में छंटनी नीति को लागू करने के मार्ग में अनेक कठिनाइयां हैं। दरअसल भारत में मजदूर एक रोजगार को छोड़कर दूसरे रोजगार में प्रायः जाता नहीं है। ऐसी स्थिति में किसी छंटनी किए गए मजदूर के लिए कोई वैकल्पिक रोजगार ढूंढना बहुत मुश्किल काम है। यह भी बहुत संभव है कि वह युवावस्था में हो और उसके ऊपर एक बड़े परिवार का पालन पोषण करने तथा उनके लिए आजीविका कमाने की जिम्मेदारी हो। ऐसे में उसकी मदद के लिए सामाजिक सुरक्षा की कोई व्यवस्था या कोई बेरोजगारी बीमा योजना भी नहीं है। इन हालात में छंटनी नीति तैयार करते समय बहुत अधिक सावधानी बरतने की जरूरत है। न केवल फालतू या छंटनी किए गए कर्मचारियों को पुनः प्रशिक्षित करने की योजना बनाई जानी चाहिए बल्कि उन लोगों को जिन्हें युवावस्था में ही अपनी नौकरी से हाथ धोना पड़ा है, नई भर्ती योजनाओं में प्राथमिकता दी जानी चाहिए। तब तक इस प्रकार से मजदूरों के हितों की रक्षा नहीं की जाएगी तब तक इसे मजदूर वर्ग का समर्थन प्राप्त नहीं हो सकेगा।

एक विकल्प के रूप में एक बेरोजगारी बीमा योजना तैयार की जा सकती है जिसके तहत संगठित क्षेत्र के सब कर्मचारियों को लाया जा सके। यह योजना स्ववित्तपोषी हो सकती है अर्थात् इसका वित्तपोषण पूरी तरह से संगठित क्षेत्र के कर्मचारियों द्वारा अंशदान से किया जा सकता है। संगठित क्षेत्र के सभी कर्मचारियों को इसमें अपने वेतन का एक हिस्सा अंशदान करने के लिए कहा जा सकता है जिससे एक बेरोजगार बीमा निधि की स्थापना की जा सकती है। इस निधि का उपयोग नौकरी से निकाले गए लोगों को बेरोजगारी बीमा

राशि का भुगतान करने के लिए किया जा सकता है। इस बात को सुनिश्चित करने के लिए कि बहुत बेरोजगारी के समय यह योजना भंग न हो, यह तय किया जा सकता है कि बीमा भुगतान की दर उस समय चल रही बेरोजगारी की दर के विलोम अनुपात में होगी।

आर्थिक सुधार कार्यक्रम के अनेक पहलू ऐसे हैं जिनसे एक आदमी उलझन में पड़ सकता है। देश में पहले ही बेरोजगारी काफी है। उस पर सरकार पब्लिक सेक्टर मे निवेश कम करती जा रही है। सरकारी नौकरियों में भर्ती कम कर दी गई है। ऊपर से ये छंटनी नीति और गोल्डन हैंड्शेक जैसी स्कीमें। सब मिलाकर क्या इससे बेरोजगारी तथा गरीबी और ज्यादा नहीं बढ़ेगी ? इसका जवाब यह है कि इस कार्यक्रम के तहत यह मानकर चला गया है कि आने वाले समय में आर्थिक वृद्धि की दर बढ़ेगी और निजी क्षेत्र में रोजगार भी बढ़ेगा। इसके परिणामस्वरूप देश में बेरोजगारी में समग्र रूप से कमी आएगी। पब्लिक सेक्टर में जितने लोग नौकरियां गवाएंगे, उससे कहीं अधिक नौकरियों का सृजन निजी क्षेत्र में होने की आशा है। परिणाम अंततः मजदूरों के पक्ष में ही रहेगा तथा बेरोजगारी कम होगी। जैसे-जैसे नई-नई फर्में, उद्योग के क्षेत्र में दाखिल होंगी, विदेशी निवेश की मात्रा बढ़ेगी, निर्यात बाजार के लिए अधिक उत्पादन होगा वैसे-वैसे मजदूरों के लिए रोजगार के नए-नए स्रोत उत्पन्न होंगे। वृहत उद्योगों में उत्पादन और रोजगार में वृद्धि के गुणनकारी प्रभाव के द्वारा लघु उद्योगों में उत्पादन और रोजगार में वृद्धि को बढ़ावा मिलेगा। इसके साथ ही सहायक उद्योगों का भी उद्भव होगा।

औद्योगिक क्षेत्र में सुधारों के साथ-साथ वित्तीय क्षेत्र में भी सुधार किए जाने की आवश्यकता है। देश में बैंकिंग सेक्टर की वित्तीय स्थिति गए वर्षों में बहुत बिगड़ गई थी। अंशतः इसका कारण यह था कि देश में बैंकिंग सेक्टर को भारी सामाजिक जिम्मेदारियां वहन करने के लिए दे दी गई जो उसकी शक्ति और क्षमता के मुकाबले कहीं गुरुतर थीं। वित्तीय सुधारों के संबंध में नरसिम्हन समिति ने देश में बैंकिंग व्यवस्था को फिर से स्वस्थ बनाने के लिए दूरगामी महत्व की सिफारिशें कीं। उन सिफारिशों में से एक में, विगत में बैंकिंग व्यवस्था पर थोप दी गई सामाजिक ज़िम्मेदारियों में से कुछ को वापस लेने या कम करने के उपाय सुझाए गए हैं। इन सिफारिशों का लक्ष्य देश में बैंकों को फिर से वाणिज्यिक रूप से लाभप्रद संस्था बनाना है।

नरसिम्हन समिति की सिफारिशों का बैंक के कर्मचारियों ने कड़ा विरोध किया है। किंतु बैंक कर्मचारियों को यह समझना चाहिए कि बैंक उद्योग की वित्तीय लाभक्षमता उनके अपने ही हित में है। बैंक राष्ट्रीयकरण के तुरंत पश्चात् देशभर में बैंकिंग सुविधाओं का तेजी से विस्तार हुआ। किंतु अब शाखा विस्तार की गति में काफी कमी आने की संभावना है। इससे बैंकिंग सेक्टर में रोजगार वृद्धि उतनी नहीं हो पाएगी और उससे पदोन्नति की संभावनाएं भी काफी कम हो जाएंगी। पदोन्नति की संभावनाएं कम होंगी तो बैंकिंग व्यवस्था की वित्तीय सुदृढता में समग्र सुधार के फलस्वरूप बैंक कर्मचारियों की सेवा शर्तों में सुधार होगा। शाखा विस्तार की धीमी गति का मतलब बैंकों में जमा की रफ़्तार का धीमा होना

नहीं है। आर्थिक सुधार कार्यक्रम के परिणामस्वरूप प्रति व्यक्ति आय में सुधार के माध्यम से बैंकिंग सेक्टर में न केवल जमा की गति बल्कि आर्थिक विकास की गति भी तेज़ ही रहेगी।

जमा राशियों के तेज़ी से जुटाये जाने और बैंक व्यवस्था की वित्तीय लाभक्षमता में सुधार होना भविष्य में बैंक कर्मचारियों की सेवा-शर्तों में सुधार होने की सर्वोत्तम गारंटी है।

बैंकिंग व्यवस्था में कानूनी नकदीकरण अनुपात (एस.एल.आर.) में कमी जैसे उपायों से उसके वित्तीय स्वास्थ्य में तो सुधार होगा ही साथ ही उसके कुछ अन्य परिणाम भी होंगे। कानूनी नकदीकरण अनुपात में कमी किए जाने से देश के औद्योगिक क्षेत्र में निवेश के लिए भारी मात्रा में संसाधन उपलब्ध हो सकेंगे। इससे भविष्य में जनता से लिए गए उधार पर दिए जाने वाले ब्याज की राशि भी घटेगी और इस प्रकार केंद्रीय सरकार की वित्तीय स्थिति मजबूत होगी। देश को सबसे बड़ा लाभ दीर्घकालीन मुद्रास्फीति दर को नीचे लाने से होगा। देश में मुद्रास्फीति की दर पहले ही काफी नीचे आ चुकी है। यदि भारत सरकार अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष की सिफारिशों के अनुसार वित्तीय अनुशासन को बना कर रखेगी तो दीर्घकालीन मुद्रास्फीति दर लगभग 3-4 प्रतिशत के स्तर तक नीचे लाई जा सकती है। मुद्रास्फीति की कम दर और उसके साथ बड़े पैमाने पर आर्थिक मापदंडों में स्थिरता लाने से सबसे ज्यादा सहायता और राहत समाज के कमजोर वर्गों को मिलेगी जिन्हें कीमतों में लगातार वृद्धि के फलस्वरूप सबसे अधिक नुकसान उठाना पड़ता है।

प्रतिभूति घोटाले ने भारतीय पूंजी बाजार में स्वदेशी निवेशकों तथा अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के विश्वास को बुरी तरह से हिला दिया है। हो सकता है कि देश के लिए यह अस्थाई आघात हो किंतु इसके दीर्घकालीन निहितार्थ इस बात पर निर्भर करेंगे कि हम इस स्थिति से किस प्रकार निपटते हैं। सबसे ज्यादा जरूरत इस बात की है कि इस मुद्दे को राजनीतिक रंग न दिया जाए। इसकी जांच वस्तुनिष्ठ ढंग से की जानी चाहिए और इससे राजनीतिक लाभ लेने की कोशिश नहीं की जानी चाहिए। सभी राजनीतिक दलों को यह समझ लेना चाहिए कि इस समूचे प्रकारण की एक वस्तुनिष्ठ ढंग से जांच तथा इसे अन्तिम रूप से निपटाया जाना देश के दीर्घकालीन हित में है।

देश में उद्योगों की स्थापना की जिम्मेदारी से हाथ खींचना सरकार के लिए जरूरी हो गया है। अब यह महसूस किया जाने लगा है कि देश के औद्योगिकरण का काम बाजार अनुकूल वातावरण में प्राइवेट सेक्टर के हाथ में सौंप देना सबसे अच्छा है। मूलभूत आवश्यकता इस बात की है कि औद्योगिक क्षेत्र में एक प्रतिस्पर्द्धात्मक वातावरण तैयार किया जाए और इस बात को सुनिश्चित किया जाए कि एकाधिकारवादी प्रवृत्तियां हावी न हों। सरकार औद्योगिक क्षेत्र में अपनी भूमिका कम कर देगी तो उन क्षेत्रों में निवेश के लिए भारी मात्रा में संसाधन उपलब्ध हो सकेंगे जिन्हें अधिक प्राथमिकता दिया जाना अपेक्षित है। ये क्षेत्र हैं—शिक्षा, जन स्वास्थ्य, सामाजिक सुरक्षा, परिवार कल्याण, महिला एवं बाल विकास,

आवास, साक्षरता, पानी की सप्लाई इत्यादि। ये ऐसे क्षेत्र हैं जिनमें प्राइवेट सेक्टर निवेश करने से कतराता है क्योंकि ये उनके लिए मुनाफे वाले प्रस्ताव नहीं हैं। इन क्षेत्रों में सरकार को बड़े पैमाने पर हस्तक्षेप करना चाहिए। सही मायने में ये ही सरकार के कार्यक्षेत्र हैं और इन क्षेत्रों में केवल सरकारी हस्तक्षेप ही कारगर सिद्ध हो सकता है। जिन क्षेत्रों में प्राइवेट सेक्टर अधिक कारगर सिद्ध हो सकता है उन क्षेत्रों से सरकार का पीछे हटना जरूरी है ताकि सरकार के पास उन क्षेत्रों में निवेश के लिए और अधिक संसाधन उपलब्ध हो सकें जिन्हें अधिक प्राथमिकता दी जानी अपेक्षित है।

शिक्षा और जनस्वास्थ्य ऐसे क्षेत्र हैं जिनमें सरकारी तथा गैर-सरकारी दोनों क्षेत्रों द्वारा निवेश को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। इन दोनों क्षेत्रों में प्राइवेट सेक्टर द्वारा किया गया निवेश मोटे तौर पर समाज के अभिजात्य वर्ग के हितों की ही चिंता करेगा। अतः समाज के कमजोर व आरक्षित वर्गों के हितों की रक्षा के लिए सरकार को आगे आना चाहिए। शिक्षा एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें प्राइवेट संसाधनों के निवेश को बहुत शंका की दृष्टि से देखा जाता है। किंतु शिक्षा के क्षेत्र में प्राइवेट संसाधनों के निवेश को बढ़ावा देने का फायदा यह है कि इससे सरकार के दुर्लभ संसाधनों का उपयोग अधिक उत्पादक ढंग से तथा अनन्य रूप से कमजोर वर्गों के हित के लिए किया जा सकेगा। स्कूली शिक्षा के क्षेत्र में प्राइवेट संसाधनों का निवेश पहले ही निर्बाध रूप से हो रहा है। यह व्यवस्था ठीक ढंग से कार्य कर रही है। विवाद है तो सिर्फ उच्च शिक्षा के लिए प्राइवेट संसाधनों के निवेश के बारे में है। वास्तविक समस्या अज्ञात के भय तथा सुस्थापित समीकरणों व प्रथाओं के साथ छेड़छाड़ करने से उत्पन्न होती है। यदि उच्च शिक्षा के क्षेत्र में प्राइवेट पूंजी के विनियमित निवेश को प्रोत्साहन दिया जाएगा तो यह समग्र रूप से देश में उच्च शिक्षा के हित में होगा।

जन परिवहन एक और क्षेत्र है जिसमें सरकारी तथा प्राइवेट संसाधनों को विवेकपूर्ण ढंग से मिला जुला कर निवेश जाना चाहिए। शहरों में बस परिवहन की जरूरतों को प्राइवेट सेक्टर द्वारा पूरा किया जा सकता है। विगत में इस सेक्टर में सरकार द्वारा इतने बड़े पैमाने पर हस्तक्षेप करना एक भूल थी। किंतु रेलवे पर सरकारी क्षेत्र का एकाधिकार बना रहने देना चाहिए। चुनींदा रेलवे सेवाओं के निजीकरण के मामले में भी सरकार को बहुत सावधानी बरतनी चाहिए। रेलवे द्वारा दी जाने वाली सेवाएं लगभग एकाधिकारी स्वरूप की हैं। इस प्रकार के एकाधिकारपरक क्षेत्रों में जहां प्रतिस्पर्धा नाम मात्र के लिए भी नहीं है, प्राइवेट उद्यम का प्रयोग करना खतरनाक सिद्ध होगा। रेलवे से संबंधित बहुत सी सेवाओं के निजीकरण के प्रयास हानिकारक हो सकते हैं। अतः ऐसा करने से पहले उनका सावधानीपूर्वक मूल्यांकन कर लिया जाना चाहिए।

आजकल शहरों में आमतौर से ट्रैफिक जाम हो जाते हैं और अत्यधिक ट्रैफिक के कारण सड़कों पर चलना दूभर हो जाता है। देश में प्राइवेट वाहनों की संख्या बहुत तेजी से बढ़ती जा रही है। देश में प्राइवेट कारों और दुपहिया वाहनों के इस्तेमाल को हतोत्साहित किए जाने की आवश्यकता है। इस उद्देश्य की पूर्ति तीन प्रकार से की जा सकती है। प्रथमतः

प्राइवेट वाहनों पर ऊंची दरों पर अप्रत्यक्ष कर लगाए जाने चाहिए। दूसरे पेट्रोल की कीमत खासी ऊंची रखी जानी चाहिए। तीसरे, शहरों में जन परिवहन सुविधाओं में पर्याप्त सुधार किया जाना चाहिए। इस तरह से बहुत बड़ी मात्रा में निजी परिवहन को जन परिवहन में परिवर्तित किया जा सकता है। इसके दो फायदे हैं। एक तो इससे शहर की सड़कों पर ट्रैफिक की भीड़भाड़ कम होगी। दूसरे इससे पेट्रोल की खपत कम होगी। देश के मूल्यवान तेल संसाधनों को बचाया जा सकेगा और देश के लिए बहुत बड़ी मात्रा में विदेशी मुद्रा को बचाया जा सकेगा।

एक अन्य क्षेत्र जिसमें सुधार किए जाना प्रस्तावित है, कराधान का क्षेत्र है। भारत में कर कानूनों की समूची व्यवस्था को सरल बनाए जाने की आवश्यकता है ताकि उन्हें ज्यादा पारदर्शी बनाया जा सके। भारत की प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष कर संरचनाओं में बड़ी संख्या में जो छूटें और रियायतें प्रदान की गई हैं, उन्हें वापस लेकर करों से प्राप्त आय को बढ़ाया जा सकता है। राजा चेलैया समिति कर सुधार और कर प्रशासन के क्षेत्र में पहले ही दूरगामी महत्व की सिफारिशें कर चुकी है। समिति ने निगम कर दरों को, विशेषरूप से उन दरों को जो विदेशी कंपनियों पर लागू होती हैं, कम करने की सिफारिश की है।

एक सुझाव, जिसकी भारत में जोर-जोर से वकालत की जा रही है वह है देश के कुल कर राजस्व में प्रत्यक्ष करों के अंश में वृद्धि किया जाना। साम्या और निष्पक्षता के मापदंड के आधार पर प्रत्यक्ष करों को अप्रत्यक्ष करों से बेहतर समझा जाता है। किंतु सरकार अपने अप्रत्यक्ष करों के ढांचे में भी प्रगतिशीलता के तत्वों का समावेश कर सकती है। ऐसा करने में उसके सामने कोई रूकावट नहीं है। इसके अलावा, प्रत्यक्ष कर को बेहतर बनने की बजाय अप्रत्यक्ष कर की अच्छाइयों की चर्चा करना उचित होगा क्योंकि एक ओर इसका उपयोग हानिकारक, विलासतापूर्ण तथा पर्यावरणीय रूप से असुरक्षित वस्तुओं के उपभोग, उत्पादन एवं आयात पर अंकुश लगाने के लिए और दूसरी ओर, ऐसे क्षेत्रों में निवेश के लिए किया जा सकता है जो रोजगारोन्मुख हैं और अन्य सामाजिक दृष्टिकोणों से लाभदायक है। इसका बचत की प्रक्रिया पर कोई अवांछनीय प्रभाव भी नहीं होता है। ऐसी परिस्थितियों में क्या वास्तव में कुल राजस्व में प्रत्यक्ष करों का अंश बढ़ाने हेतु कोई सचेत प्रयास किए जाने की आवश्यकता है?

अनेक देशों पर किए गए अंतर्राष्ट्रीय अध्ययनों से यह निष्कर्ष निकलता है कि सकल राष्ट्रीय उत्पादन के एक अनुपात के रूप में प्रत्यक्ष कर का अंश प्रति व्यक्ति आय से सकारात्मक रूप से जुड़ा हुआ है। इन अध्ययनों से यह भी पता चलता है कि आर्थिक विकास के प्रारम्भिक चरणों में कृषि पर कर लगाया जाना महत्वपूर्ण प्रतीत होता है, किंतु बाद में जैसे-जैसे देश आर्थिक रूप से विकसित होता है, विदेशी व्यापार, घरेलू खपत और वित्तीय आमदनी, कराधान के लिए महत्वपूर्ण आधार बन जाते हैं। इस समय भारत आर्थिक विकास के उस चरण में है जहां विदेशी व्यापार और घरेलू उपभोग कर राजस्व के प्राथमिक स्रोत हैं। जैसे-जैसे भारतीय अर्थव्यवस्था अधिक परिपक्व होती जाएगी, आय, कराधान का अधिक

महत्वपूर्ण आधार बनती जाएगी। अब यदि सरकार कर राजस्व में प्रत्यक्ष करों का अंश बढ़ाने के सचेत प्रयास करती है तो उसमें उतनी अधिक सफलता नहीं मिल पाएगी।

भारतीय लोक वित्त व्यवस्था का एक क्षेत्र, जिसमें अतीत की परंपराओं को तोड़े जाने की आवश्यकता है, घाटे की वित्त व्यवस्था है। भारत में घाटे की वित्त व्यवस्था ईष्टतम सीमा से अधिक हो गई है जिसके कारण अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीतिकारी दबाव बढ़ रहा है। धन की सप्लाई के बढ़ने से मुद्रास्फीतिकारी दबाव उस हालत में नहीं बनते है जब धन की सप्लाई अर्थव्यवस्था में उत्पादन में वृद्धि की दर के अनुरूप होती है। यदि धन की सप्लाई में वृद्धि की दर, एक ऐसे स्तर पर रखी जाती है जहां इसका वृद्धि प्रतिशत, अर्थव्यवस्था की विकास दर से 3-4 प्रतिशत अधिक रहे, तो यह भारत के लिए उचित होगा। यदि अर्थव्यवस्था की विकास दर, 6-7 प्रतिशत प्रतिवर्ष होने की आशा है तो देश, अत्यधिक मुद्रास्फीतिकारी दबावों के खतरे से बचने के लिए धन की सप्लाई को 10 प्रतिशत प्रति वर्ष तक बढ़ाने की योजना सुरक्षित रूप से बना सकता है। देश में घाटे की वित्त व्यवस्था का स्तर ऐसा रखना चाहिए जिससे धन की सप्लाई में वृद्धि को 10 प्रतिशत रखा जा सके। इसी संदर्भ में कभी-कभी सरकार द्वारा जनता से उधार तथा घाटे की वित्त व्यवस्था पर कानूनी सीमा लागू करने की आवश्यकता महसूस होती है। सीमा को निरपेक्ष मौद्रिक रूप में नहीं बल्कि केंद्रीय सरकार के खर्च के एक नियत अनुपात के रूप में सम्यकतः निर्धारित किया जा सकता है।

वर्षानुवर्ष भारत में सरकारी क्षेत्र के आकार में तेजी से विस्तार हुआ है। अतः जिन संसाधनों को या तो प्राइवेट सेक्टर में या सरकार द्वारा ही अधिक उत्पादक क्षेत्रों में निवेश करके बेहतर ढंग से उपयोग में लाया जा सकता था उन्हें एक अकुशल अनुत्पादक तथा आवश्यकता से अधिक कर्मचारियों वाली जन प्रशासन व्यवस्था को बनाए रखने में लगा दिया गया है। अब समय आ गया है जब भारत में जन प्रशासन व्यवस्था के विस्तार एवं वृद्धि को कम किया जाना चाहिए। जब हम सरकारी तंत्र के आकार को छोटा करने की बात सोचते हैं, तो एक महत्वपूर्ण समस्या पैदा होती है, कर्मचारियों की छंटनी की। स्टाफ की छंटनी करने के भय के कारण छटनी न करने का सुझाव दिया जाता है किंतु अब भर्ती को रोका जा सकता है और पदों को जब भी वे खाली पड़े हों समाप्त किया जा सकता है। यहां भी मैक्रो स्तर पर सुझाव देना तो आसान है किंतु जब किसी विशेष इकाई या अनुभाग से कोई पद सचमुच समाप्त करना होता है तो समस्या आती है। अनुभाग या इकाई को अच्छी तरह से मालूम होता है कि पद को समाप्त करना बहुत आसान है, लेकिन बाद में बढ़े हुए काम या अन्य किसी कारण के आधार पर उस पद को फिर से बहाल करना लगभग असंभव है। इन्हीं कारणों से सरकार में हरेक इकाई या अनुभाग, यह घोषणा करने से कतराता है कि उसका कोई पद फालतू है। यद्यपि संबद्ध व्यक्ति जानते हैं कि स्थिति वास्तव में वैसी ही है।

अब सरकारी कर्मचारियों को महसूस करना चाहिए कि सरकारी क्षेत्र में आकार को

905 HA /2000—4A

इतनी तेजी से न बढ़ने दिया जाए। इससे पहले कर्मचारियों में यह धारणा बनी हुई थी कि जितनी तेजी से सरकार का आकार बढ़ेगा, उतने ही उनकी पदोन्नति के अवसर भी बढ़ेंगे। दरअसल यह उन दिनों में सच भी था जब सरकारी क्षेत्र का आकार छोटा था। किंतु आज के हालात में उस तरीके से सोचना आत्मघाती होगा। आज सरकारी तंत्र का आकार इतना बढ़ गया है कि सरकार के लिए चाहने पर भी व्यय की संभावनाओं के कारण अपने कर्मचारियों की सेवा शर्तों में सुधार करना कठिन है। भविष्य में सरकारी तंत्र के आकार को बहुत तेजी से न बढ़ने देने या इससे भी बेहतर रूप में इसका आकार छोटा कर देने से सरकारी कर्मचारियों की सेवा शर्तों में तेजी से सुधार आने की ज्यादा संभावनाएं हैं।

भारत में आर्थिक सुधारों की शुरूआत एक गंभीर किस्म के विदेशी मुद्रा संकट की वजह से हुई। संकट इतना विकट था कि देश को अपनी भुगतान शेष संबंधी बाध्याताओं को पूरा करने के लिए अपने स्वर्ण भंडार को देश से बाहर भेजना पड़ा। ठीक समय पर सही उपाय शुरू करने से देश एक बड़े आर्थिक संकट से बच गया। उस समय देश आंतरिक और बाहरी दोनों प्रकार के ऋण जाल की ओर बढ़ता जा रहा था। राजकोषीय तथा भुगतान शेष के मोर्चो पर जो सुधारोपाय आरंभ किए गए उनसे देश दिवालिया होने से बच गया।

आज देश की भुगतान शेष की स्थिति कमोवेश सुविधाजनक है। किंतु जो सुधार हुए हैं वे मुख्यतः आयातों पर लगाए गए प्रतिबंधों के परिणामस्वरूप हुए हैं। इस स्थिति को तभी स्थिर कहा जा सकता है जब आयातों पर लगे प्रतिबंध हटा दिए जाएं और देश अपनी विदेशी मुद्रा की आवश्यकताओं की पूर्ति अपने निर्यात की कमाई के दम पर कर सके। अपने निर्यात प्रयासों को हमें अत्यधिक प्रोत्साहन देना होगा। अंतर्राष्ट्रीय माहौल निर्यातों को बढ़ावा देने के लिए पूरी तरह अनुकूल नहीं है।

रुपए को आंशिक रूप से परिवर्तनीय बनाकर देश में एक प्रमुख पहल की गई है। यह घोषणा भी कर दी गई है कि इसका अंतिम लक्ष्य रुपए को पूर्ण रूप से परिवर्तनीय बनाना है। ये देश के आर्थिक रूप से परिपक्व होने की निशानियां हैं। अब भारत अपनी सुरक्षामूलक अंतर्बाधाओं को छोड़ने के लिए तैयार हो चुका है। यह विदेशी पूंजी का स्वागत करने के लिए तैयार है। यह आयात शुल्कों को उस पैमाने तक घटाने को तैयार है जिसका पालन इस समय अन्य विकासशील देशों द्वारा किया जाता है। ये सभी उपाय इस बात के लक्षण हैं कि देश अब परिपक्व है और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्धा करने तथा दुनिया की अर्थव्यवस्था के साथ सफलतापूर्वक एकीकरण करने के लिए तेयार है। देश अपनी विचाराधारात्मक अंतर्बाधाओं को त्यागने तथा अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक माहौल का एक व्यावहारिक स्तर पर मूल्यांकन करने के लिए सक्षम है।

सोवियत संघ के विखंडल से भारत सबक सीख चुका है। ऐसा लगता है कि उदारीकरण और आदर्शवाद के स्थान पर व्यवहारवाद को अपनाने के मामले में चीन काफी आगे बढ़ चुका है। अब भारत को महसूस होता है कि अन्य एशियाई देश जिनकी

आगे बढ़ चुका है। अब भारत को महसूस होता है कि अन्य एशियाई देश जिनकी अर्थव्यवस्थाएं कभी इसके जैसी ही पिछड़ी हुई थीं, आज आर्थिक मोर्चे पर उससे कहीं ज्यादा तरक्की कर गए हैं। आज उनको 'एशियाई टाइगर' कहा जाने लगा है। भारत भी ऐसा ही एक शेर है जो जागने की प्रक्रिया में है। आशा है यह शेर अन्य सब शेरों से बली होगा। देश अपने विचाराधारात्मक बोझ, राजनैतिक अंतर्बाधाओं तथा यथास्थितिवादियों और निहित स्वार्थों द्वारा पेश की गई अड़चनों की वजह से पहले ही विकास का एक अवसर गंवा चुका है। आज देश परिवर्तन के लिए कटिबद्ध है और सफलता के लिए दृढ़संकल्प है। अगला अवसर हाथ से न निकल जाए इसके लिए देश कमर कस कर तैयार खड़ा है। ये है कहानी नींद से जागते हुए शेर की।

निदेशक, योजना आयोग, नई दिल्ली

निष्पक्षता, प्रभुत्व--समानता, हर प्रकार के आर्थिक और सामाजिक व्यवस्था वाले राष्ट्रों के बीच आपसी हितों और सहयोग पर आधारित नई अंतरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था, जो असमानता और वर्तमान अन्याय को समाप्त करे की स्थापना के लिए तेज़ी से कार्रवाई करते हुए विकसित और विकासशील देशों के बीच बढ़ती हुई दूरी को कम करना और आर्थिक और सामाजिक विकास करना जिससे वर्तमान और आने वाली पीढ़ियों के लिए शांति और न्याय की सतत गति को बनाए रखना संभव हो।

—संयुक्त राष्ट्र महासभा का संकल्प-1974

व्यापार में उदारीकरण के पहलू

—अरुण गोयल

सियाटल, अमेरिका में डब्लु.टी.ओ. मंत्रिपरिषदीय वार्ता के विफल हो जाने से उदारीकरण की चल रही प्रक्रिया को बेशक काफी नुकसान पहुंचा है, पर ऐसा नहीं है कि यह विफलता आगे की प्रगति के लिए बाधक होगी। व्यापार तो आर्थिक विकास कार्यक्रम का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन चुका है, यह तो बढ़ेगा ही। हां, बिना डब्लु.टी.ओ. के व्यापार की गति कैसी होगी, यह कह पाना थोड़ा मुश्किल होगा क्योंकि एक निष्पक्ष अम्पायर के अभाव में खेल के नियमों का अनुपालन सुनिश्चित कराना कोई आसान काम नहीं होगा। डब्लु.टी.ओ. अविकसित व आर्थिक दृष्टि से कमजोर देशों के व्यापार हितों की रक्षा करने की क्षमता रखता है तथा ताकतवर देशों को अनुचित तरीके अपनाने से रोकता है। अभी तक के अनुभव यही बताते हैं कि एक मजबूत व निष्पक्ष बहुपक्षीय व्यापार संस्था गरीब, छोटे व आर्थिक दृष्टि से निर्बल देशों के हितों की रक्षा के लिहाज से अपरिहार्य है। शायद यही कारण है कि विकसित देशों में डब्लु. टी.ओ. विरोधी स्वर ज्यादा मुखर हैं।

आर्थिक क्षेत्र में आत्म-निर्भरता प्राप्ति, उदारीकरण पूर्व काल में बेहद लोकप्रिय विचार हुआ करता था। आंतरिक अर्थ नीति के साथ-साथ विदेश-व्यापार भी तमाम तरह के अविवेकपूर्ण प्रतिबंधों में जकड़ा हुआ था। आत्म-निर्भरता को आर्थिक प्रतिमान समझने वाली सरकारें आयात को रोकने के लिए तरह-तरह की शुल्क व गैर-शुल्क बाधाएं खड़ी करती थीं। व्यापार की दृष्टि से महत्वपूर्ण अधिकांश वस्तुओं पर आयात प्रतिबंध लगे होते थे या फिर शुल्क दरें इतनी ऊंची हुआ करती थीं कि आयात करना लगभग असंभव हुआ करता था। यह व्यवस्था कीन्स के तुलनात्मक लाभ सिद्धांत के ठीक उलट थी।

दो देशों के बीच व्यापार से दोनों को ही फायदा हो सकता है। तुलनात्मक लाभ के सिद्धांत के अनुसार यदि कोई देश दो वस्तुएं किसी अन्य देश की तुलना में कम लागत पर बना सकता है तो भी उसे एक ही वस्तु के उत्पादन और दूसरे के आयात की स्थिति में ही अधिकतम लाभ होगा। इसका कारण यह है कि उक्त देश जब अपने संसाधनों को अपेक्षाकृत अधिक लागत वाले उत्पादन से हटाकर कम लागत वाले उत्पादन में लगाएगा तो उत्पादकता में वास्तविक वृद्धि होगी। तुलनात्मक लाभ का यह सिद्धांत अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का मेरुदंड समझा जाता है।

उदारीकरण का दौर शुरू होने से पूर्व देश अपने निर्यात को बढ़ावा देने का हर संभव उपाय करते थे परंतु आयात को नियंत्रित रखने के लिए तरह-तरह के प्रतिबंध लगाकर रखते थे। इसके पीछे सबसे बड़ा तर्क था घरेलू उद्योग को समुचित सुरक्षा की आवश्यकता। परंतु यह सोच अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के विकास में बड़ी बाधा साबित हो रही थी। लिहाजा व्यापार

को बढ़ावा देने के उद्देश्य से मानव-निर्मित अवास्तविक रुकावटें हटाने के पक्ष में विश्व व्यापार समुदाय का मत बनने लगा। पहले 'गैट' (जनरल एग्रीमेंट ऑन टैरिफ एंड ट्रेड) तथा बाद में विश्वव्यापार संगठन (डब्लु.टी.ओ.) का उदय इसी मत का परिणाम था।

1 जनवरी 1995 को डब्लु.टी.ओ. के प्रभावी होने के साथ ही उदारीकरण की प्रक्रिया में एकाएक तेजी आ गई। उरुग्वे दौर के परिणामों पर आधारित डब्लु.टी.ओ. ने भेदभाव मुक्त अंतर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए एक मजबूत आधार प्रदान किया जिससे व्यापार की गति में अभूतपूर्व बढ़ोत्तरी हुई। 1995-1997 के बीच व्यापार वृद्धि दर उत्पादन-वृद्धि दर से अधिक थी। परिणामस्वरूप एशिया तथा लातीन अमरीका के कई देशों में आर्थिक विकास दर में काफी बढ़ोत्तरी हुई तथा बेरोजगारी व गरीबी उन्मूलन के विश्वस्तरीय प्रयासों को बल मिला।

डब्लु.टी.ओ. के तहत उदारीकरण के प्रति विश्व व्यापार समुदाय की प्रतिबद्धता भी दृढ़ हुई है। 1997 के मध्य में जब दक्षिण-पूर्व एशिया में आर्थिक संकट पैदा हुआ और सस्ते माल अमेरिका तथा यूरोपीय देशों के बाजारों में पहुंचने लगे तो भारी घरेलू दबाव के बावजूद, इन देशों ने संरक्षणवाद की नीति को नकारा। उदारीकरण के प्रति इस दृढ़ प्रतिबद्धता के चलते न सिर्फ संकट ज्यादा गहराने से बचा बल्कि सामान्य स्थिति बहाल होने में भी कम समय लगा। विश्लेषकों का मत है कि यदि ऐसे संकट के समय में डब्लु.टी.ओ. सदस्य देशों ने सस्ते आयात से निजात पाने के लिए संरक्षणवाद का सहारा लिया होता तो 1929-30 की विश्व आर्थिक मंदी जैसी स्थिति पुनः पैदा हो सकती थी।

डब्लु.टी.ओ. व्यवस्था कई मायनों में 'गैट' से बेहतर है। सेवा क्षेत्र व बौद्धिक संपदा अधिकार जैसे विषय पहली बार बहुपक्षीय व्यापार व्यवस्था के दायरे में लाए गए। गैट में सिर्फ वस्तुओं का व्यापार ही शामिल था। गैट व्यवस्था में कृषि व्यापार को भी कोई विशेष महत्व नहीं दिया गया था जिससे यह क्षेत्र तमाम तरह के व्यापार प्रतिबंधों से ग्रस्त था। कृषि ही ऐसा क्षेत्र था जिसमें निर्यात सब्सिडी देने की छूट थी। उदारीकरण की प्रक्रिया से बाहर होने के कारण कृषि उत्पादन व व्यापार का कुशलतम संचालन संभव नहीं था।

डब्लु.टी.ओ. व्यवस्था के तहत पहली बार कृषि क्षेत्र को कायदे-कानून के अधीन लाया गया। डब्लु.टी.ओ. समझौते के तहत विकसित देशों को नियमित रूप से निर्यात सब्सिडी घटाना है। इसके अलावा सभी आयात प्रतिबंधों का 'टैरीफिकेशन' भी डब्लु.टी.ओ. के तहत संभव हुआ।

निर्यात सब्सिडी व घरेलू समर्थन के चलते विश्व कृषि उत्पादन व व्यापार का स्वरूप विकृत हो चुका है। इसे अन्य क्षेत्रों के बराबर लाने पर गंभीरतापूर्वक विचार चल रहा है। यूरोपीय यूनियन, जापान तथा कुछ अन्य विकसित देश अपने कृषि क्षेत्र को भारी सब्सिडी देते हैं। सब्सिडी देने वालों में यूरोपीय यूनियन अग्रणी है। विश्व की कुल निर्यात सब्सिडी का पचास प्रतिशत यूरोपीय यूनियन ही देता है।

निर्यात सब्सिडी व घरेलू समर्थन के अलावा भोजन सुरक्षा तथा पर्यावरण के लिए कृषि की अपरिहार्यता जैसे मुद्दे भी डब्लु.टी.ओ. की सियाटल में गत 3 दिसंबर 1999 को संपन्न मंत्रिपरिषदीय बैठक के एजेंडा पर थे।

श्रमिक व डब्लु.टी.ओ.

विकसित देशों की अपेक्षा विकासशील देशों में श्रमिकों को पारिश्रमिक काफी कम मिलता है। पारिश्रमिक में इस अंतर के कारण ही श्रम-आधारित उत्पादों की लागत विकासशील देशों में कम पड़ती है तथा ऐसे उद्योग दिन-प्रतिदिन फैलते जा रहे है। चूंकि उदारीकरण के दौर में आयातों को रोक पाना मुश्किल हो गया है सो विकसित देशों के श्रम-आधारित उद्योग प्रभावित हो रहे हैं। फलस्वरूप, इनका उत्पादन-स्तर घट रहा है तथा श्रमिकों की बड़े पैमाने पर छंटनी भी हो रही है।

श्रम आधारित उद्योग जैसे इस्पात व टेक्सटाइल में मजदूरों की बड़े पैमाने पर हुई छटनी, एक सामाजिक राजनीतिक समस्या का स्वरूप धारण करती जा रही है। इससे निपटने का उपाय सरकार को सूझता नहीं दिख रहा है। इसी वजह से इन देशों में डब्लु.टी.ओ. विरोधी स्वर मुखर होने लगे हैं।

सियाटल में संपन्न डब्लु.टी.ओ. मंत्री स्तरीय बैठक में श्रमिकों का सवाल शुरू से आखिर तक हावी रहा, जिसके चलते अंततः बैठक बिना किसी नतीजे के ही खत्म हो गई। यूरोपीय यूनियन तथा अमेरिका श्रम मानदंडों को डब्लु.टी.ओ. एजेंडा पर लाना चाहते थे। इनका तर्क था कि श्रमिकों का सवाल व्यापार से गहरे रूप से जुड़ा हुआ है, सो इसे बाहर छोड़ना उचित नहीं होगा। विकासशील देशों ने इस प्रस्ताव को सिरे से ही नकार दिया।

एग्रीमेंट आन टेक्सटाइल एंड क्लोंदिंग के तहत कोटा पालिसी, 2004 के अंत तक खत्म होनी है। कोटा पालिसी चलाने वाले यूरोपीय यूनियन व अमेरिका इस बात से भयभीत हैं। भला यह है कि कोटा पालिसी खत्म होने पर सस्ते आयात इनके घरेलू उद्योग को नष्ट कर देंगे। विकासशील देशों में श्रम सस्ता है। टेक्सटाइल क्षेत्र जो कि श्रम-आधारित है विकासशील देशों में फल-फूल रहा है। समझा जाता है कि कोटा पालिसी खत्म होने पर विकासशील देशों का टेक्सटाइल निर्यात काफी बढ़ जाएगा।

इस अनुमानित खतरे से अपने घरेलू उद्योग को बचाने के लिए ये देश श्रम मानदंडों को डब्लु.टी.ओ. एजेंडा पर लाना चाहते हैं। इस तरह से व्यापार को श्रम के साथ जोड़कर विकासशील देशों के सस्ते श्रम के लाभ को निष्प्रभावी बनाने की रणनीति है। जाहिर है विकासशील देश उक्त प्रस्ताव को स्वीकार करने को कतई तैयार नहीं होंगे।

एंटी-डम्पिंग

जापान, कोरिया, रूस तथा भारत के इस्पात निर्यातों के साथ-साथ विकासशील देशों के टेक्सटाइल निर्यात भी एंटी-डम्पिंग जांच से प्रभावित रहे हैं। अमेरिका तथा यूरोपीय यूनियन के देशों में भारत तथा कई दूसरे विकासशील देशों के निर्यात पर बार-बार एंटी-डम्पिंग जांच बिठाए गए। इसे बैक-टू-बैक एंटी-डम्पिंग जांच कहा जाता है। इसके तहत किसी निर्यात उत्पाद पर जांच समाप्त होने के कुछ दिनों बाद ही नए सिर से जांच बिठाई जाती है। नतीजतन, निर्यात बुरी तरह प्रभावित होता है।

अमेरिका में जापान के इस्पात निर्यातों पर सबसे ज्यादा एंटी-डम्पिंग जांच बिठाई गई है। अपने इस्पात निर्यातों को अमेरिकी बाजार में रोके जाने से पीड़ित जापान ऐसे प्रावधानों की समीक्षा की मांग करता रहा है। सियाटल में भी जापान अपनी इस मांग पर अड़ा रहा। अपने टेक्सटाइल निर्यातों पर बार-बार जांच बिठाए जाने से त्रस्त विकासशील देशों ने जापान की इस मांग का खुलकर समर्थन किया।

पर्यावरण-सुरक्षा

सियाटल में श्रमिकों के साथ-साथ पर्यावरणविद भी डब्लु.टी.ओ. विरोधी मुहिम में सक्रिय रहे। इनका तर्क था कि मुक्त व्यापार पर्यावरण के लिए खतरा बन गया है। अगले दौर के लिए प्रस्तावित वन्य उत्पादों पर आयात शुल्क कम करने संबंधी वार्ता इन प्रदर्शनकारियों का खास निशाना थी। इनका कहना था कि आयात शुल्क घटने से वन्य उत्पादों की मांग बढ़ जाएगी। नतीजतन वनों के उजड़ने की प्रक्रिया और तेज हो जाएगी। चूंकि वनों को पर्यावरण सुरक्षा योजना का महत्वपूर्ण अंग समझा जाता है सो इन पर्यावरणविदों का आक्रोश मुक्त व्यापार तथा डब्लु.टी.ओ. पर फूटा।

व्यापार व निवेश

किसी देश के आर्थिक विकास में विदेशी पूंजी निवेश की भूमिका काफी महत्वपूर्ण होती है। आर्थिक विकास में अपनी अति महत्वपूर्ण भूमिका के चलते निवेश, व्यापार को बहुत पीछे छोड़ चुका है। आजकल तो स्थिति यह है कि पूंजी निवेश को आकर्षित करने के उद्देश्य से सभी देश निवेश संबंधी नियम – कानूनों को सरल बनाने में लगे हैं। सच्चाई तो यह है कि विदेशी पूंजी के लिए देशों के बीच एक होड़-सी मची हुई है।

फिलहाल तो निवेश को डब्लु.टी.ओ. में 'ट्रिम्स' (व्यापार संबंधी पूंजी निवेश कानून) समझौते के अनुसार सुरक्षा प्रदान की गई है जो कि ज्यादा व्यापक नहीं है। वास्तविकता तो यह है कि पूंजी निवेश के लिए मची होड़ को देखते हुए इस समझौते की व्यावहारिक अहमियत नगण्य है।

'ट्रिम्स' के तहत डब्लु.टी.ओ. सदस्य देशों को अनिवार्य निर्यात तथा स्थानीय तौर पर कच्चा माल खरीदने जैसी शर्तें लादने से रोका गया है। चूंकि विकासशील देश पूंजी-निवेश को प्रभावी ढंग से नियंत्रित रखना चाहते हैं इसलिए निवेश को डब्लु.टी.ओ. एजेंडा पर लाने के प्रयासों का विरोध करते रहे हैं। विकसित देशों की यह मुहिम रहती है कि किसी भी तरह से निवेश को डब्लु.टी.ओ. एजेंडा पर लाया जाए। वैसे अभी तक इस दिशा में कोई खास प्रगति नहीं हो सकी है। ओ.ई.सी.डी. (आर्गेनाइजेशन फॉर इकॉनिमक कोआपरेशन एंड डेवलपमेंट) द्वारा तैयार एम.ए.आई. (बहुपक्षीय पूंजी निवेश समझौता) प्रारूप पहले ही समर्थन के अभाव में धूल चाट रहा है। डब्लु.टी.ओ. में एम.ए.आई. पर जिस प्रस्ताव को लाने की कोशिश चलती रही है उसका स्वरूप ओ.ई.सी.डी. द्वारा तैयार एम.ए.आई. से काफी मिलता-जुलता है।

ओ.ई.सी.डी. द्वारा तैयार प्रारूप यदि डब्लु.टी.ओ. में स्वीकार कर लिया जाता है तो इसके दूरगामी परिणाम होंगे। विदित हो कि अभी तक सभी देशों के पूंजी निवेश संबंधी अपने-अपने कानून हैं तथा हर देश अपनी प्राथमिकता के मुताबिक पूंजी निवेश की अनुमति देता है। यदि एक बार निवेश को डब्लु.टी.ओ. में स्थान मिल गया तो बहुत से विकासशील देशों को अपने घरेलू निवेश कानून में भारी बदलाव करना होगा। मसलन, भारत में उद्योग स्थापित होने के बाद तो सरकार घरेलू व विदेशी उद्यमियों में कोई भेदभाव नहीं करती, परंतु स्थापना से पूर्व की स्थिति में विदेशी पूंजी निवेश को नकारने या स्वीकारने का पूरा अधिकार रखती है। उक्त एम.ए.आई सरकारों को इस तरह के विवेक-आधारित फैसले लेने के अधिकार से वंचित करने पर केंद्रित है।

प्रतियोगिता नीति

प्रतियोगिता नीति को डब्लु.टी.ओ. के अधिकार क्षेत्र में लाने के प्रयास चल रहे हैं। विकसित देश जैसे अमेरिका, यूरोपीय यूनियन तथा जापान प्रतियोगिता संबंधी एक व्यापक नीति को अपनाने पर बल देते रहे हैं। इस संबंध में डब्लु.टी.ओ. को प्राप्त प्रस्तावों में विदेशी फर्मों को घरेलू फर्मों के समान दर्जा देने पर जोर दिया गया है। इसके अलावा, अंतर्राष्ट्रीय कार्टेल से निपटने के लिए अमेरिका जैसे एंटी-ट्रस्ट कानून की रूपरेखा तैयार करने की जरूरत बताई गई है। एंटी-डम्पिंग प्रावधानों की समीक्षा की मुहिम चलाने वाले जापान का तर्क है कि डम्पिंग के निर्धारण में अभी तक जो मापदंड अपनाए जाते रहे हैं, वे सही नहीं हैं। जापान अंतर्राष्ट्रीय कार्टेल की वकालत भी करता है। उसका कहना है कि इससे लगातों को कम रखने में बड़ी मदद मिलती है।

ई-कामर्स

ई-कामर्स की बढ़ती अहमियत को डब्लु.टी.ओ. में भी स्वीकारा गया है। इस क्षेत्र की अपार संभावनाओं को देखते हुए इलेक्ट्रॉनिक कामर्स को आगे भी कस्टम ड्यूटी से मुक्त रखने

पर एक व्यापक सहमति बन गई है। ई-कामर्स के विकास की संभावनाएं उदारीकरण पर निर्भर है।

ट्रेड फेसिलिटेशन

व्यापार को बढ़ावा देने की गरज से कस्टम संबंधी कायदे-कानूनों को सरल और सहज बनाने की प्रक्रिया भी जोर शोर से चल रही है। आशा है कि डब्लु.टी.ओ. की आगामी दौर की वार्ता में यह विषय काफी महत्वपूर्ण होगा। डब्लु.सी.ओ. (विश्व कस्टम संगठन) पहले ही क्योटो 2000 नामक दस्तावेज तैयार कर चुका है जिसे क्रियान्वयन के लिए जरूरी समर्थन मिलने की पूरी-पूरी संभावना है।

'ट्रेड फेसिलिटेशन' की लोकप्रियता को देखते हुए ऐसा लगता है कि निकट भविष्य में यह पूरी तरह से डब्लु.टी.ओ. कानून बन जाएगा। इस कानून की खास बात यह होगी कि कस्टम को 24 घंटे के भीतर ही माल उठाना होगा। ऐसा न करने की स्थिति में उसे संतोषजनक स्पष्टीकरण देना होगा। ऐसा करना डब्लु.टी.ओ. के तहत क़ानूनी बाध्यता होगी।

इसके अलावा इस कानून के प्रभावी होने के बाद कागजी काम भी काफी घट जाएगा। अभी तक लंबी व पेचीदा प्रक्रिया के चलते कस्टम के लिए माल क्लीयर करने में हीला-हवाली करने की काफी गुंजाइश रही है जिसका दुरुपयोग भी होता रहा है। जब एक बार सारे नियम सरल व संक्षिप्त हो जाएंगे तो न सिर्फ सरकार व व्यापारियों का खर्च घटेगा बल्कि माल क्लयिरेंस भी निर्बाध रूप से संभव हो सकेगा। कुल मिलाकर, अंतर्राष्ट्रीय व्यापार को नई गति मिलेगी।

एकेडमी ऑफ बिजनेस सटडीज, 24/3866, शीलतारा हाऊस, अंसारी रोड, नई दिल्ली

जो अर्थशास्त्र शक्तिशाली व्यक्तियों को गरीबों का शोषण सिखाता है, वह असत्य है। सच्चा अर्थशास्त्र सबके हित के लिए होता है।

—महात्मा गांधी

देश आर्थिक प्रगति की ओर

—नवीन पन्त

देश मंदी के दौर से उबर रहा है। औद्योगिक उत्पादन बढ़ रहा है। निर्यात में वृद्धि हुई है। मुद्रा स्फीति की स्थिति नियंत्रण में है। देश के विदेशी मुद्रा भंडार में 32 अरब डॉलर से अधिक है। यद्यपि कुछ स्थानों पर बेमौसम की बरसात और उड़ीसा में भयंकर समुद्री तूफान के कारण फसलों को कुछ नुकसान पहुंचा है। मोटे अनाज और तिलहनों के उत्पादन में आंशिक कमी हुई है। इसके बावजूद खाद्यान्न उत्पादन की स्थिति संतोषजनक है और देश के खाद्यान्न गोदामों में पर्याप्त अनाज है।

आज देश में साहस, संकल्प और विश्वास का वातावरण है। राजनीतिक अस्थिरता का माहौल समाप्त हो गया है। विश्व के सभी विकसित देश भारत में पूंजी निवेश करने के लिए आगे आ रहे हैं। निराशा का स्थान आशा, शंका-संदेह का स्थान विश्वास एवं अविश्वास का स्थान पक्के भरोसे ने ले लिया है।

भारतीय उद्योग परिसंघ के संघों की परिषद के अनुसार वर्तमान वित्त वर्ष के पहले आठ महीनों, (अप्रैल से नवंबर 1999) के दौरान उद्योग के 42 क्षेत्रों में 1998 की इसी अवधि की तुलना में अधिक उत्पादन हुआ, दो क्षेत्रों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ और 16 क्षेत्रों के उत्पादन में किंचित गिरावट आई। जिन क्षेत्रों में उत्पादन बढ़ा उनमें शामिल हैं—इस्पात, सीमेंट, कागज-गत्ता, तेल शोधन और मोटरगाड़ी उद्योग। तैयार इस्पात के उत्पादन में 11. 5 प्रतिशत, सीमेंट के उत्पादन में 18 प्रतिशत, कागज गत्ते के उत्पादन में 10 प्रतिशत, तेल शोधक कारखानों के उत्पादन 15 प्रतिशत, भारी एवं मझौले ट्रकों, बसों आदि के उत्पादन में 69 प्रतिशत और मोटर कारों के उत्पादन में 44 प्रतिशत की वृद्धि हुई है।

केंद्रीय सांख्यिकी संगठन के अनुमानों के अनुसार अप्रैल-अक्तूबर, 1999 के दौरान भारतीय उद्योग ने 6.9 प्रतिशत की विकास दर दर्ज की। विनिर्माण और बिजली उत्पादन के क्षेत्र में निरंतर उत्फुल्लता बनी रही। अक्तूबर 1999 के दौरान औद्योगिक उत्पादन की विकास दर 8.7 प्रतिशत तक पहुंच गई जबकि पिछले वित्त वर्ष की इसी अवधि में यह मात्र 3.4 प्रतिशत थी।

इसी संदर्भ में सबसे उल्लेखनीय उपलब्धि निर्यात क्षेत्र में हुई वृद्धि है। नवम्बर 1999 में निर्यात में 30.59 प्रतिशत की वृद्धि हुई जो 3.33 अरब डॉलर तक पहुंच गए, जबकि पिछले वित्त वर्ष, 1998-99 की इसी अवधि में केवल 2.55 अरब डॉलर का निर्यात हुआ था। अप्रैल-नवंबर 1999 के दौरान 24.20 अरब डॉलर का निर्यात किया गया जबकि पिछले वित्त वर्ष की इसी अवधि के दौरान 21.47 अबर डॉलर का निर्यात किया गया। वर्तमान वित्त वर्ष

पहले आठ महीनों के दौरान पिछले वित्त वर्ष की तुलना में 12.72 प्रतिशत अधिक निर्यात किया गया। धागा कपड़े इस्पात, पेट्रो रसायन आदि अनेक वस्तुओं का निर्यात बढ़ा। सबसे उल्लेखनीय वृद्धि सॉफ्टवेयर के निर्यात में निरंतर वृद्धि थी।

सॉफ्टवेयर और सर्विस कंपनियों के राष्ट्रीय संघ ने सन 20001 के लिए सॉफ्टवेयर निर्यात का लक्ष्य 27,000 करोड़ रु. रखा है। यह वर्तमान वर्ष के निर्यात से 60 प्रतिशत अधिक है। इस वर्ष पिछले वर्ष की तुलना में सॉफ्टवेयर के निर्यात में 50 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। भारतीय सॉफ्टवेयर कंपनियों ने फारचून की 500 कंपनियों में से 104 के साथ संबंध स्थापित कर लिए हैं।

खनिज तेल के दामों में वृद्धि के कारण आयात में 7.23 प्रतिशत की वृद्धि हुई, जो पिछले वर्ष के 28.20 अरब डॉलर से बढ़कर 30.24 अरब डॉलर हो गए। इसके बावजूद व्यापार घाटा पिछले वर्ष के 6.73 अरब डॉलर से घटकर 6.04 अरब डॉलर रह गया। आर्थिक गतिविधियों में वृद्धि और विनिर्मित (तैयार) माल के उत्पादन और विक्री में वृद्धि से वित्तीय वर्ष 1999-2000 में सरकारी राजस्व में वृद्धि होने की उम्मीद है। अप्रैल-दिसंबर 1999 की अवधि में कर वसूली में 17 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। अकेले दिसंबर महीने में कर वूसली में 28. 71 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। तथापि यह वृद्धि वित्त मंत्री के बजट अनुमानों से कम है। संभव है वर्तमान वित्त वर्ष के शेष ढाई महीनों के दौरान कर वसूली में अपेक्षित वृद्धि हो।

आर्थिक क्षेत्र में इन सुधारों का शेयर बाजार पर भी अनुकूल असर पड़ा है और मुंबई स्टॉक एक्सचेंज का सूचकांक 5500 के आस-पास चल रहा है। शेयर बाजार में इस उछाल का लाभ सरकार के विनिवेश कार्यक्रम को मिलेगा क्योंकि उसे सरकारी कंपनियों के शेयरों के अच्छे दाम मिलेंगे। सरकार ने विनिवेश के जरिए काफी धन जुटाने की योजना बनाई थी। किंतु अनेक कारणों से सरकारी कंपनियों के निजीकरण की दिशा में विशेष प्रगति नहीं हुई है। इस में तेजी करना सभी के हित में है।

अर्थव्यवस्था विकास की ओर अग्रसर है। अनुमान है कि वित्त वर्ष का अंत विकास दर में 6 या 6.5 प्रतिशत की वृद्धि से होगा। यद्यपि पूर्ववर्ती वर्षों की विकास दर को देखते हुए 6 या 6.5 प्रतिशत की विकास दर काफी अचछी है, तथापि गरीबी की समस्या का जल्दी समाधान करने के लिए यह पर्याप्त नहीं है। गरीबी को जल्दी समाप्त करने और देश की 40 प्रतिशत जनसंख्या को बेहतर जीवन प्रदान करने के लिए हमें विकास दर को 8 और 9 प्रतिशत तक लाना होगा। इसके लिए कृषि, उद्योग सेवाओं और व्यापार क्षेत्रों में विकास दर में उल्लेखनीय वृद्धि करनी होगी।

विकास दर में अपेक्षित तेजी लाने के लिए देश को आधारभूत ढांचे यानी सड़कों रेल मार्ग, बंदरगाहों, हवाई अड्डों दूर संसार, संचार सेवाओं, शिक्षा स्वास्थ्य, चिकित्सा में निवेश बढ़ाना होगा।

सरकार का खर्च उसके राजस्व या आमदनी से अधिक है। सरकार ऋण लेकर, नोट छापकर अपना खर्च चलाती है। जब सरकार बाजर से अंधाधुंध ऋण लेकर उससे अपना खर्च चलाती है तो उसके दो खराब नतीजे निकलते हैं। पहला वह धन जो उद्योग व्यापार में लगता सरकार के पास चला जाता है, जिसे गैर उत्पादक कार्यों में व्यय किया जाता है। दूसरा, जब सरकार बाजार से ऋण लेती है तो ब्याज की दरें ऊंची हो जाती हैं। देश में निवेश की कमी (पूंजी की अनुपलब्धता) और ब्याज की ऊंची दरों के कारण उद्योगों का समुचित विकास नहीं हो पाता है।

इस समय सरकारी राजस्व का 84 प्रतिशत भाग सरकारी कर्मचारियों के वेतन, अल्प सरकारी खर्चों और सब्सिडी में समाप्त हो जाता है। जब तक सरकार अपने खर्च में जर्बरदस्त कटौती नहीं करती तक तक उसे साधनों की कमी और बजट घाटे की समस्या से जूझना पड़ेगा। सरकार खाद्यान्नों, उर्बरकों सहित अनेक मदों पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष सब्सिडी दे रही है। यह सब्सिडी हजारों करोड़ रु. में पहुंचती है और सरकार के बजट पर एक जबरदस्त और अनावश्यक बोझ पड़ता है। अधिकांश लोगों का यह भी मानना है कि इस सब्सिडी का लाभ उन लोगों को नहीं मिलता जिनके लिए यह अपेक्षित है।

इसी प्रकार अतिरिक्त संसाधन जुटाने का सवाल है। यह जरूरी नहीं है कि अतिरिक्त संसाधन जनता पर अतिरिक्त कर लगाकर जुटाए जाएं। सुयोग्य वित्त मंत्री वह समझा जाता है, जो न्यूनतम दरों पर कर लगाकर सरकारी राजस्व बढ़ाए। वर्तमान करों को युक्तिसंगत बनाकर, कर वसूली में सुधार लाकर, करों की चोरी रोक कर और अधिकाधिक लोगों को कर ढांचे के अंतर्गत लाकर करों की वसूली बढ़ाई जा सकती है।

हरित क्रांति, श्वेत क्रांति और खाद्यान्नों के समर्थन मूल्यों में निरंतर वृद्धि के बाद देश के ग्रामीण क्षेत्रों का नक्शा बदल गया है। संपन्न किसानों के पास सभी आधुनिक सुख-सुविधाएं हैं। उनकी आय भी लाखों में है। लेकिन कृषि क्षेत्र अभी भी आय कर से मुक्त है। किसी समय कृषि क्षेत्र को आय कर से मुक्त रखने का औचित्य रहा होगा। लेकिन अब इस क्षेत्र को कर-मुक्त रखने का कोई औचित्य नहीं है। अगर सरकार द्वारा दी जा रही तरह-तरह की सब्सिडी में उल्लेखनीय कमी कर दी जाए और कृषि क्षेत्र पर आय कर लगा दिया जाए तो बजट घाटे की समस्या से निपटा जा सकता है। लेकिन राजनीतिक दबाव और दृढ़ इच्छा शक्ति के अभाव में सरकार इस विषय में कुछ नहीं करना चाहती।

कृषि क्षेत्र पर आय कर लागू करने का विरोध किसी आधार पर तर्क संगत नहीं है। वास्तव में अधिकांश लोग इसका विरोध बिना सोचे समझे कर रहे हैं। आय कर छोटे और मझोले किसानों पर नहीं लगेगा। अधिकांश बड़े किसान भी इससे मुक्त रहेंगे। यह केवल उन किसानों पर लगेगा जो इसके दायरे में आते हैं। इस समय अनेक लोग अपनी आय का कुछ हिस्सा कृषि आय के अंतर्गत दिखाकर आय कर से बच जाते हैं। इससे देश में कालाधन बनता है।

इधर सरकार ने सार्वजनिक भविष्य निधि, राष्ट्रीय बचत पत्रों, किसान विकास पत्रों, डाक घर सावधि ज़मा और डाकघर आवर्ती योज़नाओं की ब्याज दर में एक प्रतिशत की कमी की घोषणा की है। इससे केन्द्र और राज्य सरकारों की ब्याज की देनदारी में कमी होगी। उद्योग-व्यापार क्षेत्र भी निवेश को बढ़ावा देने के लिए ब्याज की ऊंची दरों में कमी की मांग कर रहे थे। संभव है अब कुछ समय बाद बैंकों की ब्याज दरों में भी कमी की जाए। उद्योग जगत का कहना है कि देश में ब्याज की दरें बहुत अधिक हैं। इससे नए उद्योगों के लिए वित्त जुटाने में दिक्कत पड़ती है और परियोजना की लागत बढ़ जाती है।

इधर सरकार ने आर्थिक सुधारों को तेजी से लागू करने के लिए अनेक उपायों की घोषणा की है। सरकार ने देश के चारों कोनों को सड़क मार्ग से जोड़ने के लिए कुछ समय पूर्व एक महत्वाकांक्षी योजना शुरू की थी। इस योजना के अंतर्गत कश्मीर को कन्या कुमारी से और असम में सिलचर को गुजरात में सौराष्ट्र से जोड़ा जा रहा है। इस परियोजना के अंतर्गत कुल 5950 किलोमीटर सड़क का निर्माण किया जाएगा, जिसमें से 500 किलो मीटर लंबी सड़क का निर्माण किया जा चुका है और एक हजार किलोमीटर लंबी सड़क के निर्माण कार्य के ठेके दिए जा रहे हैं। इस कार्य को सन् 2004 तक पूरा करने का लक्ष्य था। प्रधानमंत्री ने आदेश दिया है कि इसे निर्धारित समय से एक वर्ष पहले पूरा किया जाए।

सरकार ने देश के बड़े बंदरगाहों को निगमों में बदलने का फैसला किया है। इससे उनकी उत्पादकता और कुशलता में उल्लेखनीय सुधार होने की उम्मीद है। इसी के साथ सरकार ने देश के चार बड़े हवाई अड्डों को अंतर्राष्ट्रीय स्तर का बनाने के लिए उन्हें लंबी अवधि की लीज पर देने का फैसला किया है।

इस समय सरकार के सामने सबसे कठिन चुनौती राजकोषीय घाटे को कम करना है। राजकोषीय घाटे के कारण केंद्र सरकार की वित्तीय स्थिति अच्छी नहीं है। केंद्र सरकार से भी अधिक अधिकांश राज्यों की वित्तीय स्थिति चिंतनीय है। राज्य सरकारों के पास अपने कर्मचारियों का वेतन देने के बाद विकास कार्यों के लिए कुछ नहीं बचता। अब स्थिति इतनी शोचनीय हो गई है कि वे अपने कर्मचारियों की मांगे पूरी करने में भी असमर्थ है। राजस्थान, कश्मीर में राज्य सरकार के कर्मचारी महंगाई भत्ते की किश्तों के भुगतान के लिए काफी समय से हड़ताल पर हैं। शेष अन्य राज्यों की स्थिति भी विशेष अच्छी नहीं है। अधिकांश राज्य सरकारें घाटे का बजट प्रस्तुत करती हैं और ऋण लेकर अपना खर्च चलाती हैं। पंजाब जैसा संपन्न राज्य गलत नीतियों का अनुसरण करने के कारण दीवालिएपन के कगार पर हैं।

बिजली, पानी सहित सभी प्रकार की सब्सिडियों को समाप्त करके, कर्मचारियों की संख्या में कमी करके करों की वसूली बढ़ाकर और अतिरिक्त साधन जुटाकर राज्य सरकारें इस समस्या को हल कर सकती हैं। लेकिन वर्तमान राजनीतिक माहौल में कोई कठोर, अलोक प्रिय फैसले नहीं करना चाहता।

---

22 मैत्री अपार्टमेंट्स ए/3 पश्चिम विहार, नई दिल्ली-110062

भारत में उदारीकरण की नीति - एक आकलन

डॉ. जयन्ती प्रसाद नौटियाल

भारत में उदारीकरण का दौर शुरू होते ही विभिन्न अर्थशास्त्रियों, आर्थिक चिंतकों एवं राजनैतिक दलों के नेताओं द्वारा परस्पर विरोधी विचार समाचार पत्रों की सुर्खियां बनते रहे परंतु एक आम आदमी, जो इन आर्थिक विश्लेषणों, राजनैतिक दाव पेचों से अनभिज्ञ था वह आज भी उतना ही भ्रमित है। वास्तव में इसका मूल कारण यह है कि उदारीकरण के 'सच' को हमेशा ही विभिन्न रंगों में रंग कर प्रस्तुत किया जाता रहा है।

अतः इस लेख में हम उदारीकरण का निष्पक्ष आकलन प्रस्तुत कर रहे हैं। उदारीकरण का एक दशक पूर्ण हो रहा है। अतः यह और भी अधिक प्रांसगिक हो जाता है कि हम इन आर्थिक सुधारों से हुए आर्थिक परिवर्तनों का बेबाक विश्लेषण करें।

भारत में उदारीकरण की नीति बहुआयामी आर्थिक सुधारों से आरंभ हुई। आर्थिक उदारीकरण के परिप्रेक्ष्य में सर्वप्रथम यह जान लेना जरूरी हो जाता है कि उदारीकरण किन-किन क्षेत्रें में हुआ व इन क्षेत्रों को उदारीकृत किए जाने के पीछे सरकार का उद्देश्य क्या था।

उदारीकरण का शुभारंभ हम 1991 में घोषित औद्योगिक नीति से मान सकते हैं। इससे पूर्व जो औद्योगिक नीति अपनाई गई थी उससे औद्योगिक विकास को एक दिशा मिली थी। साथ ही भारत औद्योगिक दृष्टि से आत्मनिर्भर भी हो गया था। परंतु इस नीति के परिणाम स्वरूप अपेक्षित रोजगारों का सृजन नहीं हो पाया। साथ ही क्षेत्रीय असंतुलन बढ़ता ही चला गया। अतः इन कमियों को दूर करने व औद्योगिक स्तर को बढ़ाने तथा उसे अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पहुंचाने के लिए यह जरूरी हो गया था कि औद्योगिक नीति में उदारीकरण लाया जाए। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु तथा गरीबी उन्मूलन के लिए एवं रोजगार के अवसर बढ़ाने के लिए एवं क्षेत्रीय व आर्थिक असंतुलन को दूर करने के लिए औद्योगिक नीति में अपेक्षित सुधार किए गए। बाद में यही सुधार उदारीकरण के आधार बने। उदारीकरण के तहत मूल रूप से दो प्रमुख क्षेत्रों में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। ये दो क्षेत्र थे—(1) औद्योगिक लाइसेंसिंग में आमूलचूल परिवर्तन (2) विदेशी व्यापार नीति में अत्यधिक खुलापन तथा एकाधिकार एवं प्रतिबंधित व्यापार के क्षेत्र में नवोन्मेषी दृष्टिकोण।

इन औद्योगिक नीतिगत परिवर्तनों के परिणामस्वरूप विदेशी निवेश भारत की ओर उन्मुख हुआ है। उदारीकरण से पूर्व अर्थात 1991-92 में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश जो मात्र 129 मिलयन अमेरिकी डॉलर था वह 1995-96 तक बढ़ कर 2133 मिलियन अमेरिकी डॉलर तक पहुंच गया। इस निवेश में भले ही उच्चावचन हो परंतु प्रगति स्पष्ट रूप से लक्षित होती है।

आज भी यह उपर्युक्त स्तर पर बना हुआ है।

विदेशी व्यापार में किए गए उदारीकरण के प्रयासों के परिणामस्वरूप बहुराष्ट्रीय कंपनियों का आगमन भारत में तेजी से होने लगा है। आज तक दर्जनों विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियां भारत में अपना व्यापार स्थापित कर चुकी हैं। यहां तक कि हाल ही में दूर संचार एवं बीमा क्षेत्र में निजीकरण को अनुमत कर देने से अब बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए भारत एक बहुत बड़ा बाजार बन गया है। ऊर्जा के क्षेत्र में एनरान व कोजेंट्रिक्स जैसे महारथी भारत में आंख गड़ाए बैठे हैं। राजनैतिक उठा-पटक के बीच जूझते हुए भले ही कोजेंट्रिक्स ने स्वयं प्रतियोगिता से बाहर होने का निर्णय लिया है, परंतु वह अब भी आस लगाए बैठा है कि वह भारत में अपना पांव जमा लेगा। वस्तुतः उदारीकरण के परिणामस्वरूप ही यह संभव हो पाया है कि भारत उद्योग एवं व्यापार के मामले में सीधे ही विश्व से जुड़ गया है। आज हम सामान्य टेंडर नहीं बल्कि ग्लोबल टेंडर के युग में पहुंच गए हैं। विश्व एक छोटा गांव-सा बन गया है।

यह उदारीकरण का ही सुपरिणाम है कि भारतीय कंपनियां, ए.डी.आर. और जी.डी. आर. जारी कर रही हैं। हमारी भारतीय कंपनियों के शेयर विश्व के स्टॉक एक्सचेंजों में कोट हो रहे हैं। डाउ जोंस और नस्दक हमारे राष्ट्रीय स्टाक एक्सचेंज की भांति की आसानी से पहुंचने योग्य हो गए हैं। औद्योगीकरण ने आर्थिक क्षेत्र में प्रतियोगिता को जन्म दिया है जिसके परिणामस्वरूप हमारी भारतीय कंपनियों को भी गुणवत्ता में सुधार करके उसे विश्व स्तर के मानकों तक पहुंचाने को बाध्य होना पड़ा है। इससे प्रत्यक्ष रूप से भारतीय जनता ही लाभान्वित हुई है। उदाहरण के लिए बाजार में कम कीमत की अनेक छोटी कारों के आ जाने से मारुति कारों की कीमतें कंपनी को कम करनी पड़ी। अर्थात जनता को कारें बेहतर गुणवत्त की होने पर भी सस्ती मिलने लगीं। अतः प्रतियोगिता से अंतिम लाभ ग्राहक को ही होता है। यह अर्थ शास्त्र का सामान्य सिद्धांत है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उदारीकरण ने हमारे औद्योगिक जगत को अधिक चुस्त-दुरूस्त किया है व प्रत्यक्ष विदेशी निवेश में बढ़ोत्तरी हुई है।

अब उदारीकरण के उद्देश्यों को दृष्टि में रख कर कुछ मुद्दों पर चर्चा करना भी समीचीन प्रतीत होता है ताकि उदारीकरण की नीति का उचित आकलन हो सके।

उदारीकरण के मुख्य उद्देश्य थे—उच्च राष्ट्रीय विकास दर प्राप्त करना, प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि करना, रोजगार के अवसरों को बढ़ाना एवं क्षेत्रीय असंतुलन को कम करना। इन उद्देश्यों की प्रप्ति में उदारीकरण कहां तक सफल रहा यह एक ज्वलंत प्रश्न है। हम इन सभी बिंदुओं पर क्रमिक चर्चा करेंगे। जहां तक उच्च विकास दर प्राप्त करने का प्रश्न है उस दृष्टि से तो उदारीकरण को सफल माना जाना चाहिए क्योंकि उदारीकरण से पूर्व 1991-92 में सकल घरेलू उत्पाद की विकास दर जो 1% से भी कम थी (यह 0.9% थी) वह निरंतर बढ़ते हुए 95-96 तक 6% को पार कर गई व आज भी अपने लक्षित स्तर के आस

पास बनी हुई है।

मुद्रा स्फीति की दर निरंतर घटते हुए जनवरी 2000 में 2.70% पर पहुंच गई यह 1991-92 में 13.7% थी। ये आंकड़े पुष्ट प्रमाण हैं कि मुद्रा स्फीति नियंत्रण में भी उदारीकरण के अच्छे परिणाम सामने आए हैं।

उदारीकरण की इस प्रक्रिया में सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में सुधार व रुग्ण इकाइयों के पुनर्वास के क्षेत्र में काफी सुधार हुए हैं। सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों व बैंकों आदि से सरकारी नियंत्रण को शिथिल करने के उद्देश्य से विनिवेश प्रक्रिया आरंभ हुई तथा इन संगठनों के स्वामित्व में जनता का प्रतिनिधित्व बढाए जाने के परिणाम स्वरूप इन संगठनों की कार्यशैली में सकारात्मक परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगे हैं।

उदारीकरण की एक प्रमुख कमी यह रही है कि रुपए के विनिमय मूल्य को स्थिर न किया जा सका। इसका मूल्य अंतर राष्ट्रीय बाजार में निरंतर घटता ही चला गया। उदारीकरण से पूर्व रुपए का मूल्य (1990-91) में 17.96 रुपए प्रति अमेरिकी डॉलर था। आज यह 14 जनवरी 2000 को रु. 43.52 रुपए प्रति अमेरिकी डॉलर हो गया है। इसका अर्थ यह है कि हमारे रुपए का मूल्य लगभग एक तिहाई रह गया है। परंतु इसे पूर्णतः उदारीकरण से जोड़ना तर्क संगत नहीं होगा क्योंकि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विनिमय दर के निर्धारण में कई घटक उत्तरदायी होते हैं। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर रुपए के घटते मूल्य को यदि हम स्वर्ण की दृष्टि या आर्थिक मंदी की दृष्टि से देखें तो अधिक तर्क संगत होगा।

हमें यह स्मरण रखना होगा कि वर्ष 1991 में हमारा विदेशी विनिमय रिजर्व केवल एक बिलियन डॉलर मात्र था। वही आज बढ़कर पर्याप्त मात्रा में हैं।

उदारीकरण के परिणामों से उत्साहित होकर ही राष्ट्रीय गठबंधन सरकार दूसरे चरण के सुधारों को लागू करने के लिए प्रतिबद्ध जान पड़ती है।

कृषि क्षेत्र में विकास दर उदारीकरण से पूर्व 1991-92 में (–) 2.3% थी वह अब बढ़कर 1998-99 में 7.6% तक पहुंच गई है। अतः कृषि क्षेत्र में भी पर्याप्त वृद्धि हुई।

जहां तक वित्तीय क्षेत्र का सवाल है, तो यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि वित्तीय क्षेत्र ही वह सबसे प्रमुख क्षेत्र है जहां उदारीकरण ने समस्त वित्तीय तंत्र को हिला कर रख दिया। भारतीय वित्तीय प्रणाली के प्रत्येक अंग पर उदारीकरण के झोंके ने ऐसा प्रभाव डाला कि वित्तीय क्षेत्र में अकल्पनीय परिवर्तनों का दौर-सा चल पड़ा। बैंकिंग तंत्र, मुद्रा बजार, पूंजी बाजार, विकास की शीर्ष संस्थाएं सभी अपने पुराने ढर्रे को छोड़कर 'स्मार्ट' हो गए। निजी एवं विदेशी बैंकों का बेरोक-टोक आगमन, भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा परिचालन के क्षेत्रों में स्वायत्तता दिए जाने तथा प्रत्येक बैंक को उत्पादकता, लाभप्रदता व गुणवत्ता के आधार पर

आगे बढ़ने की होड़ ने बैंकों को जहां स्वतंत्र व्यवसाय करने की छूट दी तो वहीं दूसरी ओर अंतर्राष्ट्रीय मानक निर्धारित होने से बैंक एक ऐसी स्थिति में पहुंच गए जिसकी उन्होंने कल्पना भी नहीं की थी। गैर निष्पादक आस्तियों में कमी, विवेक पूर्ण मानदंडों को अपनाना व पारदर्शिता जैसी व्यवस्थाओं ने बैंकों की ढकी हुई इज्जत को सार्वजनिक कर दिया। बैकों को तब लगने लगा कि उदारीकरण हो गया है। इस उदारीकरण और पारदर्शिता ने बैंकों को उनकी असलियत बता दी। इससे बैंकों को सुधरने का मौका मिला व बैंक सुधार की ओर अग्रसर होने लगे किंतु कमजोर बैंक इस मार को न झेल पाए। इसलिए मजबूर होकर वर्मा समिति को कहना पड़ा कि कमजोर बैंकों को बंद कर दिया जाए। परंतु माननीय केंद्रीय वित्त मंत्री जी ने 16 जनवरी 2000 को आश्वासन दिया कि वे इन बैंकों को बंद करने के बजाए इनके पुनर्वास हेतु कदम उठाएंगे।

उक्त चर्चा का आशय यह है कि उदारीकरण ने पूरे अर्थतंत्र को भले ही हिला कर रख दिया है परंतु इसके परिणाम अच्छे ही निकले हैं।

अब थोड़ा सा पूंजी बाजार व अन्य वित्तीय क्षेत्रों की ओर मुड़ें। यद्यपि इस उदारीकरण के दौरान ही प्रतिभूमि घोटाला, एम.एस. शूज घोटाला, सी.आर.बी. घोटाला जैसे प्रकरण भी सामने आए। तथापि इन घोटालों ने हमारी नियंत्रण व्यवस्था की कमियों को ठीक करने में हमारी सहायता की है। उदाहरण के लिए प्रतिभूति घोटाले के बाद 'सेबी' इतना सजग हो गया है कि जरा-सा भी शेयर बाजार तेजी से आगे बढ़ा तो सेबी का शिकंजा उसे दबोच लेता है। सी.आर.बी. घोटाले के बाद गैर बैंकिंग वित्तीय कंपनियों के पंजीकरण का कार्य शुरू हुआ।

इस विवेचन का सार यह है कि यह जो कुछ भी हुआ इससे हमें एक सीख मिली है। हमें अपनी कमजोरियों का पता लगा है। **उदारीकरण तो एक आइना है जो हमारी असली शक्ल हमें दिखा देता है।**

उदारीकरण के बाद वित्तीय क्षेत्र में अनेक सुधार हुए हैं। ब्याजदरों में गिरावट आई है। सांविधिक तरलता अनुपात व नकदी प्रारक्षित अनुपातों को शिथिल किया गया ताकि संसाधनों का अभाव न रहे। पूंजी की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विनिवेश, बैंक ऋणों की वसूली के लिए अलग ट्रिब्यूनल, ग्राहक सेवा के लिए कई उपाय व साथ ही लोकपाल व्यवस्था लागू करना, कंप्यूटरीकरण व प्रौद्योगिकी उन्नयन, स्वस्थ प्रतियोगिता का विकास जैसे उपायों से बैंकिंग व्यवसाय को भी अंतर्राष्ट्रीय स्तर की गुणवत्ता युक्त संगठन बनाने में सहायता मिली है। यही कारण है कि आज कई बैंक आई.एस.ओ. 9000 जैसे प्रमाणन प्राप्त करने में जुटे हुए हैं।

उदारीकरण ने राजकोषीय क्षेत्र में भी अपना प्रभाव दिखाया है। कराधान भी उदारीकरण से अछूता नहीं रहा है। कर संबंधी अनेक सुधारों का श्रेय उदारीकरण को ही

है। यद्यपि यह स्वयं में ही अति विस्तृत संकल्पना है। अतः इसकी चर्चा यहां न करके मात्र हम यह कहना चाहेंगे कि उदारीकरण ने इस दिश में भी अत्यधिक उल्लेखनीय प्रभाव डाला है।

उदारीकरण के जहां हमें अनेक लाभ हुए हैं वहीं उदारकीरण से हमें कुछ क्षेत्रों में असफलताओं का मुंह भी देखना पड़ा है। उदारीकरण की प्रमुख असफलता तो यही रही है कि रोजगार के अवसरों के सृजन में उदारीकरण ने कुछ उल्लेखनीय प्रभाव नहीं डाला है। रोजगार के अवसर दिलाने में उदारीकरण लगभग पिछड़ गया है, इसी प्रकार ग्रामीण कृषि ऋण और कुटीर उद्योगों को दी जाने वाली सहायता में कोई उल्लेखनीय प्रगति नहीं हो पाई है। बल्कि बहुराष्ट्रीय कंपनियों के बड़े-बड़े संयंत्रों व स्थापनाओं ने स्थानीय लोगों को बेघर कर दिया है साथ ही कहीं-कहीं उच्च प्रौद्योगिकी की स्थापना से श्रमिकों की संख्या भी कम होती चली गई है। विदेशी कंपिनयां सामाजिक दायित्व बोध से स्वयं को मुक्त समझती हैं। इसलिए श्रमिकों को स्थाई नहीं किया जाता है। काम खत्म हो जाने पर संबंध भी खत्म हो जाते हैं। हमारे छोटे-छोटे कुटीर उद्योग ग्राम-शिल्प; बड़े-बड़े उद्योगों की चकाचौंध में मृत प्रायः होते जा रहे हैं।

अतः हमें सिर्फ लाभ ही नहीं अपने सामाजिक व पर्यावरणीय दायित्वबोध को भी समझना होगा। उदारीकरण की यह हवा सभी में प्राण वायु का संचार करने वाली हो, हमें यह प्रयास करना चाहिए।

उक्त तथ्यों को और अधिक स्पष्ट रूप से कहें तो हमें कहना होगा कि उदारीकरण की दिशा इस मुद्दे को ध्यान में रखकर निर्धारित की जानी चाहिए कि इसकी कीमत गरीब और मध्यम वर्ग को न चुकानी पड़े। उदारीकरण का लाभ इस प्रकार से संवितरित होना चाहिए कि जो सबसे गरीब हो उसे सबसे अधिक लाभ मिले व लाभ का सबसे कम भाग अमीरों को मिले। अर्थात पूरी व्यवस्था में बदलाव लाना ही लोक हितकारी होगा।

नीति चाहे कैसी भी हो उसका अनुपालन उसे सफल या असफल बनाता है। अतः उदारीकरण की नीति को यदि हम लोक कल्याणकारी दृष्टि रख कर ऐसे क्षेत्रों में लागू करें, जहां सह अस्तित्व की संभावना हो तो ऐसे अनुपालन से हम संतुलित रूप से आर्थिक विकास कर पाएंगे। अतः उदारीकरण की आज तक की स्थिति का आकलन करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत के लिए उदारीकरण ल"भप्रद सिद्ध हुआ है। अतः यह प्रक्रिया जारी रहनी चाहिए ताकि हम अपनी आगे आने वाली पीढ़ी को एक सुदृढ़ आत्मनिर्भर व स्वाभिमानी राष्ट्र दे सकें। हमें सिर्फ सावधानी यह बरतनी होगी कि उदारीकरण हमारी संस्कृति, संस्कार और सभ्यता का अंग न बन जाए। यह हमारे गांवों को और ग्राम्य शिल्प को हमसे न छीन ले...। यह हमारे 'सत्तू' को और 'शरबत' को जीवित रहने दे कोका कोला व फास्ट फूड की जिंदगी में कहीं हम सिर्फ सिक्के की चमक ही न देखें बल्कि अपनी भारतीयता को भी बचाए रख सकें। भूमंडलीकरण, उदारीकरण के नाम पर अपनी भाषा और अपने स्वाभिमान को

बचाकर रख सकें...बस इतना यदि हम कर पाए तो उदारीकरण हमारे लिए मंगलकारी ही होगा। प्रगति सदैव अच्छी होती है; यदि यह अंधी दौड़ बन जाए तो बुरा है।

अतः उदारीकरण सबके लिए लाभकारी होगा ही हमें यह मान कर चलना होगा।

वरिष्ठ प्रबंधक, कार्पोरेशन बैंक प्र.का. मंगलूर-57500।

मैं राष्ट्रपति के विचारों से पूरी तरह सहमत हूं। विचारशून्य भूमंडलीकरण, उदारीकरण तथा निजीकरण समाज के ऊंचे तबके (क्रीमी लेयर) की ही सहायता कर सकता है। गरीब जनता के हितों की सुरक्षा के लिए अर्थव्यवस्था को नई दिशा की ज़रूरत है। हमारे सामने बड़े पैमाने पर बेरोजगारी तथा उसके परिणामस्वरूप गरीबी, विषमता, पूंजी अपर्याप्तता तथा तकनीकी पिछड़ेपन जैसी बाधाएं मौजूद हैं। इनका सामना करने के लिए तथा पूंजी के एकत्रीकरण के लिए हमें सार्वजनिक क्षेत्र, भ्रष्टाचार–रहित व कुशल सहकारी क्षेत्र तथा भारतीय निजी क्षेत्र के मध्य समरसतापूर्ण सह–अस्तित्व की ज़रूरत है। तकनीकी आयात तथा विदेशी निवेश उन्हीं क्षेत्रों तक सीमित होने चाहिए जहां तकनीकी पिछड़ापन काफ़ी ज्यादा हो। अर्थव्यवस्था में ऐसी संतुलित धारणा ही गरीबों को लाभ पहुंचाने में सक्षम हो सकेगी।

–मधु दण्डवते, पूर्व वित्त मंत्री

भारत में उदारीकरण की नीति–लघु उद्योगों के संदर्भ में आकलन

–श्री श्रीनिवास कृष्णन

हमारा अपना भारत एक विकासशील देश है और इस को ध्यान में रखते हुए हमारे नीति-निर्माताओं ने आर्थिक विकास के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए नियोजन मिश्रित आर्थिक प्रणाली को अपनाया, किंतु पंचवर्षीय योजनाओं में तेजी से हुए औद्योगिकीकरण के फलस्वरूप हमें पश्चिमी विकसित राष्ट्रों से बड़ी मात्रा में पूंजीगत उपकरणों, मशीनों आदि का आयात करना पड़ा जिसके परिणामस्वरूप स्वदेशी लघु उद्योग बुरी तरह हतोत्साहित हुए तथा हमारे स्वेदशी उत्पादन में कमी आई। इस प्रकार अपने आयातों के मुकाबले निर्यातों में, हम वांछित वृद्धि नहीं कर पाए जिससे नियोजन काल 1990-91 में हमारी देशीय अर्थव्यवस्था में भुगतान संतुलन व विदेशी विनिमय की स्थिति अत्यंत ही गंभीर हो गई जिससे निपटने के लिए हमारी भारतीय अर्थव्यवस्था में अधिक खुलापन लाने तथा उसे आर्थिक उदारीकरण की दिशा में मोड़ने के प्रयास शुरू हो गए।

मूलतः उदारीकरण के इस दौर में देश में वृहत उद्योगों तथा कृषि व लघु उद्योगों के संतुलित विकास की आवश्यकता को महसूस किया गया। चूंकि नियोजन काल के प्रारंभिक चरण में वृहत उद्योगों ने सार्वजनिक उपक्रमों के रूप में बड़े व प्रमुख शहरों में स्थापित होकर, शहरों व देश के विकास में अपनी अहम् भूमिका अदा की थी, इसलिए, सरकार द्वारा घोषित नई उदारीकरण की नीति में छोटे शहरों तथा विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में लघु व कुटीर उद्योगों को स्थापित कर, ग्राम्य जीवन-स्तर को सुधाने का निश्चय किया गया।

सरकार की उदारीकरण नीति के अंतर्गत अब उन सभी औद्योगिक संस्थानों को लघु उद्योगों की श्रेणी में रखा जा सकता है जिन्होंने प्लांट व मशीनरी में 3.00 करोड़ रुपए अथवा उससे कम राशि का निवेश किया हो। यही नहीं इस उदारीकरण की नीति में यह भी कहा गया है कि यदि कोई संस्थान अपने उत्पादन का काफी भाग निर्यात करता है तो उसे पूंजी निवेश की सीमा में थोड़ी छूट भी प्रदान की जा सकती है और ऐसी संस्थानों को लघु उद्योगों के अंतर्गत रखकर, उसे लघु उद्योगों को मिलने वाली सभी सुविधाएं प्रदान की जा सकती है। इसके अलावा सरकार ने यह भी माना है कि अगर किसी लघु उद्योग संस्थान की कार्यशील पूंजी 5.00 लाख रुपए से अधिक किंतु 10.00 लाख रुपए से कम हो तो उसे अति लघु उद्योग की श्रेणी में रखा जाए और उनके ऋण आदि के मामलों को प्राथमिकता के साथ निपटाकर, उन्हें रियायती सुविधाएं प्रदान की जाएं।

वित्त का अभाव :

बड़े उद्योगों में जहां बड़ी मात्रा में पूंजी व श्रम का उपयोग होता है वहीं लघु उद्योगों में कम पूंजी व श्रम का उपयोग होता है, इसलिए ये उद्योग प्रायः मध्यम व छोटे स्तर के लोगों द्वारा ही स्थापित होते हैं जिसकी वजह से इन संस्थाओं के पास हमेशा ही पूंजी का अभाव बना रहता है जिसके कारण से वे महंगे व आधुनिक तकनीकी से निर्मित नए औजार खरीदने में स्वयं को असमर्थ पाते हैं तथा ये समय पर कच्चा माल भी नहीं खरीद पाते हैं। इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखते हुए नई उदारीकरण नीति में इसे हल करने का विशेष प्रयास किया गया।

इस हेतु लघु उद्योग के क्षेत्र में स्थापित विभिन्न वित्तीय संस्थाओं को इन्हें आसान शर्तों पर ऋण उपलब्ध कराने का निर्देश दिया गया और लघु उद्योग को वित्तीय सुविधाएं प्रदान करने हेतु देश मे राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम व भारतीय दस्तकारी विकास निगम की स्थापना की गई। वर्तमान में लघु उद्योगों को वित्तीय सुविधा प्रदान करने वाली प्रमुख संस्था के रूप में विकसित भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक को भी इस बारे में भारतीय रिजर्व बैंक व भारतीय लघु उद्योग निगम से पर्याप्त आर्थिक व तकनीकी सहायता दिलाने का आश्वासन दिया गया।

उदारीकरण के अंतर्गत व्यावसायिक बैंकों व अन्य वित्तीय संस्थाओं से मिलने वाली सुविधाओं का लाभ शहर में स्थापित बड़े व वृहत उद्योग न उठा लें तथा इसका लाभ देश के लघु उद्योगों को ही बराबर मिलें, इस हेतु सरकार द्वारा उचित दिशा-निर्देश भी जारी किए गए। यही नहीं सरकार ने सन् 1991 में घोषित नई औद्योगिक नीति में बहुत सी वस्तुओं के उत्पादन को एम.आर.टी.पी. एक्ट के अंतर्गत केवल लघु उद्योगों के लिए ही आरक्षित कर दिया। इससे अब इन वस्तुओं का उत्पादन केवल लघु उद्योग के अंतर्गत ही हो सकता है।

तकनीकी पिछड़ापन :

इन उद्योगों को शुरू करने वाले लोग प्रायः मध्यम व निम्न आर्थिक स्तर के लोग ही होते हैं जिनमें उच्च शिक्षा का पूर्णतः अभाव रहता है जिसकी वजह से इनके कारीगर भी प्रायः अशिक्षित ही होते हैं तथा उन्हें इस बारे में खोजी गई नई-नई तकनीकों तथा मशीनों का कोई ज्ञान नहीं हो पाता है। इन सबके फलस्वरूप लघु उद्योग से निर्मित वस्तुएं जहां गुणवत्ता में श्रेष्ठ साबित नहीं हो पाती वहीं इनके द्वारा निर्मित वस्तुओंकी लागत भी अपेक्षकृत ऊंची होती है तथा इनके कारीगरों द्वारा नई मशीनों का उपयोग न करने की वजह से इनका उत्पादन भी अपेक्षित मात्रा में बढ़ नहीं पाता।

इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए सरकार द्वारा घोषित नई औद्योगिक नीति में इन उद्योगों के मालिकों तथा इनके कारीगरों को नई वैज्ञानिक तकनीकों से परिचित कराने

का निश्चय किया गया। इसके साथ ही इन उद्योगों को तकनीकी सहायता प्रदन करने के लिए 'केंद्रीय लघु उद्योग संस्थान' की स्थापना की गई और इसे अपने सेवा संस्थानों (सर्विस इंस्टीट्यूट) तथा प्रसार केंद्रों (एक्सटेंशन सेंटर्स) में प्रशिक्षित व्यक्तियों को नियुक्त करने का निर्देश दिया गया, जो उन उद्यमियों को तकनीकी सलाह तथा इनके कारीगरों को अपने यहां नामित कर, उन्हें तकनीकी प्रशिक्षण प्रदान करेंगे। इसी प्रकार उदारीकरण के अंतर्गत विभिन्न राज्यों में इस कार्य के लिए 'लघु उद्योग सेवा संस्थानों' तथा 'क्षेत्रीय तकनीकी संस्थानों' को स्थापित कर, राज्य के लघु उद्यमियों तथा उनके कारीगरों को प्रशिक्षण की विशेष सुविधा भी उपलब्ध कराई जाएगी।

इसी क्रम में दिनांक 17 जुलाई 1996 को नई दिल्ली में नौवें अंतर्राष्ट्रीय लघु व मझौले उद्यमियों का सम्मेलन आयोजित किया गया, जिसका उद्घाटन दिल्ली के तत्कालीन उपराज्यपाल श्री पी.के. दवे ने किया। सम्मेलन में नई औद्योगिक नीति के अंतर्गत जहां नई तकनीकों के विकास के संदर्भ में लघु उद्योगों की स्थिति के बारे में व्यापक चर्चा हुई वहीं अंतर्राष्ट्रीय बाजार प्रतिस्पर्धा के मुकाबले लघु उद्योग में उच्च गुणवत्ता वाली वस्तुओं को उत्पादित करने का निश्चय किया गया।

कच्चे माल का अभाव :

सभी प्रकार के उद्योग-धंधे निर्बाध रूप से उन्हें प्राप्त कच्चे माल की आपूर्ति पर ही आधारित होते हैं जिसकी वजह से सभी प्रकार के उद्योग-धंधे प्रायः ऐसे स्थानों में स्थापित होते हैं जहां से उन्हें आवश्यक कच्चे माल की आपूर्ति बराबर जारी रहे। लघु उद्योग भी इस मामले में अपवाद नहीं है। इसलिए, उदारीकरण के अंतर्गत जारी की गई योजनाओं में लघु उद्योगों के परिपूर्ण विकास को सुनिश्ति करने के लिए, उन्हें पर्याप्त मात्रा में कच्चा माल बिना किसी कठिनाई के उपलब्ध कराने का निश्चय किया गया।

इसके लिए सरकार ने सबसे पहले लघु उद्योग की सहायता के लिए स्थापित विभिन्न बोर्डों जैसे नारियल जटा बोर्ड, हस्तकला बोर्ड, हथकरघा व सिल्क बोर्डों को आवश्यक निर्देश जारी किए। उनसे यह अनुरोध किया गया कि वे अपने-अपने क्षेत्रों की समीक्षा करें तथा इस बारे में अपने सुझाव दें। इसके पश्चात् यह महसूस किया गया कि देश में स्थापित कुछ लघु उद्योग ऐसे है जो वृहत कारखानों के उप-उत्पादनों को कच्चे माल की तरह इस्तेमाल करते है। इसलिए, ऐसे उद्योगों को विभिन्न प्रकार की रियायती सुविधाएं प्रदान कर, उन्हें विकसित कराने का निश्चय किया गया। इस तरह इनसे संबंधित लघु उद्योगों को भी पर्याप्त मात्रा में कच्चा माल उपलब्ध कराया गया।

इसके अलावा नई उदारीकरण नीति में यह भी महसूस किया गया कि देश के अधिकांश लघु उद्योग गांवों में व छोटे शहरों में स्थापित हैं तथा इन छोटे कस्बों व शहरों में यातायात की व्यवस्था सुगम न होने की वजह से, इन्हें समय पर कच्चे माल की आपूर्ति

संभव नहीं हो पाती है। अतः देश की यातायात व्यवस्था को सुचारू बनाने का निश्चय किया गया। इस हेतु देश के सभी गांवों व छोटे शहरों विशेष रूप से लघु उद्योग स्थापित गांवों तथा शहरों को राष्ट्रीय राजमार्ग से जोड़ने का निश्चय किया गया, वहीं इन राजमार्गों के रख-रखाव की उचित व्यवस्था हेतु नए दिशा-निर्देश भी निश्चित करने की बात कही गई। इसके लिए देश के कुछ राष्ट्रीय राजमार्गों के निर्माण कार्य व उनके रख-रखाव को निजी क्षेत्रों को देने का विचार किया गया जिसके बदले मे उन्हें इन मार्गों में लगे सभी होर्डिंग्स (विज्ञापन बोर्ड) के अधिकार देने की बात कही गई है। इस तरह देश की यातायात व्यवस्था व परिवहन को अधिक सुचारू ढंग से विकसित कर, गांवों में स्थापित लघु व कुटीर उद्योगों को अधिक सहायता प्रदान की गई।

उदारीकरण से लघु उद्योगों को प्राप्त लाभ :

उदारीकरण की अवधारणा को लागू करने के समय अनेक लोगों द्वारा इससे देश के बड़े व वृहत उद्योगों के ही लाभान्वित होने की आशा व्यक्त की गई थी। चूंकि हमारे देश की अर्थव्यवस्था में वृहत उद्योगों के साथ ही लघु उद्योगों का भी अपना खासा महत्व है, इसलिए, इसमें दोनों के हितों का पूरा ध्यान रखा गया और यह कोशिश की गई कि वृहत उद्योगों के अपने संरक्षण व सुरक्षा में देश के सभी लघु उद्योग पनपें व विकसित हों। दूसरे शब्दों में वृहत व लघु उद्योगों के बीच प्रतिस्पर्धा के स्थान पर सहयोग व सामंजस्य की भावना विकसित करने का निश्चय किया गया। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए उदारीकरण के अंतर्गत घोषित नई औद्योगिक नीति में वृहत उद्योगों की विभिन्न समस्याओं के निदान हेतु आवश्यक प्रबंध किए जाने के साथ ही, लघु उद्योगों की अपनी प्रमुख समस्याओं के निदान हेतु भी आवश्यक प्रबंध किए गए और इस तरह इससे हमारे लघु उद्योग निम्न प्रकार से लाभान्वित हुए।

उत्पादन क्षेत्र का आरक्षण :

उदारीकरण की व्यवस्था के अंतर्गत बहुत से व्यवसायों को सिर्फ लघु उद्योग क्षेत्र के लिए आरक्षित कर दिया गया क्योंकि सरकार द्वारा घोषित सन् 1991 की नई औद्योगिक नीति में लघु उद्योग की अपनी समस्याओं को समझा गया और यह महसूस किया गया कि देश के लघु उद्योग कम पूंजी व कम श्रम शक्ति की वजह से वृहत उद्योगों द्वारा निर्मित वस्तुओं का मुकाबला नहीं कर पाते हैं। इसलिए, चुनिंदा उद्योगों को वृहत उद्योगों के लिए प्रतिबंधित करने तथा उन्हें सिर्फ लघुउद्योगों हेतु आरक्षित करने की आवश्यकता महसूस की गई।

इसके लिए देश में स्थापित एम.आर.टी.पी. अधिनियम का सहारा लिया गया। एम. आर.टी.पी. अधिनियम का पूरा हिन्दी नाम 'एकाधिकार व प्रतिबंधित व्यापार कानून' है। उदारीकरण की व्यवस्था के अंतर्गत घोषित वर्तमान औद्योगिक नीति में 18 औद्योगिक इकाइयों को छोड़कर शेष सभी उत्पादों को लघु उद्योगों के लिए आरक्षित कर दिया गया है। दूसरे

शब्दों में अब देश के इन 18 उत्पादों को छोड़कर कही भी अगर कोई दूसरे उत्पाद की इकाई स्थापित होती है तो वह सिर्फ लघु उद्योग के अंतर्गत स्थापित इकाई ही हो सकती है।

उदारीकरण के अंतर्गत प्राप्त इस सुविधा का लाभ लघु उद्योग धंधों को यह हुआ कि अब इनके द्वारा निर्मित वस्तुओं की प्रतिस्पर्धा अधिक पूंजी व उच्च तकनीकी सुविधाओं से संपन्न वृहत उद्योगों से न होकर उनके अपने ही समान के लघु उद्योगों से होने लगी जिससे बाजार में इनके मजबूती के साथ स्थापित होने में सहायता मिली। इसके अलावा 18 वस्तुओं के उत्पादन को वृहत औद्योगिक इकाइयों के लिए खुला छोड़ने की वजह से अब प्रायः सभी वस्तुओं के उत्पादन लघु उद्योग की श्रेणी में आ गए जिससे देश में लघु उद्योगों के परिपूर्ण रूप से विकसित होने में भी मदद मिली।

इन प्राप्त सुविधाओं की वजह से देश में लघु उद्योगों द्वारा किए जा रहे उत्पादन में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। वर्तमान में कुछ उत्पादों के निर्यात में लघु उद्योगों का अपना वर्चस्व पूर्ण रूपेण क़ायम हो गया है जैसे आज खेलकूद के सामानों के निर्यात में लघु उद्योगों का हिस्सा आज पूर्णतः 100% है तथा ऊनी वस्त्रों के निर्यात में 80% तथा चमड़े के सामानों के निर्यात में 75% है। इस प्रकार आज हम कह सकते हैं कि उदारीकरण से देश के लघु उद्योगों को काफी लाभ पहुंचा है।

वित्तीय सहायता उपलब्ध कराना :

चूंकि लघु उद्योग के उद्यमी प्रायः मध्यम तबके के ही लोग होते हैं इसलिए इन लघु उद्यमियों के पास हमेशा ही पूंजी का अभाव रहता है। उदारीकरण में लघु उद्यमियों की इस कठिनाई को समझा गया तथा इनकी वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक अलग संस्थान की आवश्यकता को महसूस किया गया इस तरह सिर्फ लघु उद्योगों की वित्तीय सुविधाओं की पूर्ति हेतु 'भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक' का निर्माण हुआ। उदारीकरण की नीति के जारी होने के पश्चात्, लघु उद्योगों को वित्तीय सुविधा उपलब्ध कराने वाली कुछ अन्य संस्थाएं जैसे राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम व भारतीय दस्तकारी विकास निगम आदि ने भी, इनकी वित्तीय आवश्यकताओं को समझते हुए इन्हें आसान न सुलभ शर्तों के अंतर्गत ऋण की सुविधा मुहैया कराई और इनके विकास में अपनी अहम भूमिका निभाई।

इसके साथ ही भारतीय रिजर्व बैंक ने लघु उद्योगों को प्राथमिकता क्षेत्र के अंतर्गत रखकर, देश के सभी व्यावसायिक बैंकों को अपने ऋण का कुछ प्रतिशत अनिवार्य रूप से लघु उद्योगों को देने की बात कही, जिससे भी लघु उद्योगों के विकास में मदद मिली।

विपणन की सुविधा :

लघु उद्योगों को जिन बड़ी कठिनाई से जूझना पड़ता है उनमें से एक उनके द्वारा निर्मित

वस्तुओं को बेचने की है। अब उदारीकरण के अंतर्गत सरकार ने इस ओर विशेष ध्यान दिया है और उसने अपनी 'भंडार खरीद नीति' में संशोधन कर उसमें लघु उद्योगों से निर्मित वस्तुओं को उच्च प्राथमिकता देने का निश्चय किया। इस तरह अब यदि देश के विभिन्न भंडार निगम यदि किसी वस्तु का क्रय भंडारण हेतु करते है तो वह लघु उद्योगों से निर्मित वस्तुओं को प्राथमिकता देंगे।

इसके साथ ही उदारीकरण के अंतर्गत अब देश के विभिन्न लघु उद्योगों को विक्रय संबंधी सुविधा उपलब्ध कराने हेतु 'केंद्रीय विक्रय संस्थान' की स्थापना की गई जो अब इन उद्योगों द्वारा निर्मित वस्तुओं को सीधे ही इनसे प्राप्त कर, उन्हें स्वयं ही बाजार में बेचने की व्यवस्था करेगी।

अन्य :

इसके अलावा भी उदारीकरण से देश के लघु उद्योगों को कई अन्य प्रकार के लाभ भी प्राप्त हुए, जैसे उदारीकरण के अंतर्गत प्राप्त रियायतों व सुविधाओं की वजह से देश में लघु उद्योगों की संख्या में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। इससे उन्हें आपस में कड़ी प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ा जिससे वे अधिक टिकाऊ तथा उच्च गुणवत्ता वाली वस्तुओं का निर्माण करने में सफल हुए तथा इससे लघु उद्योगों से निर्मित वस्तुओं के प्रति ग्राहकों की विश्वसनीयता में वृद्धि हुई। इसी प्रकार उदारीकरण के फलस्वरूप विभिन्न लघु उद्योगों के बाजार में सफलतापूर्वक व्यवसाय करने से, बाजार में लघु उद्योगों की साख बढ़ी और ऋण-जोखिम के संदर्भ में बैंकों व अन्य वित्तीय संस्थाओं की लघु उद्योग पर विश्वसनीयता बढ़ी, जिससे इन्हें बैंकों व अन्य वित्तीय संस्थाओं से अधिक आसान शर्तों पर ऋण मिलना संभव हुआ।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि आज उदारीकरण की वजह से देश के लघु उद्योगों को इतने अधिक स्वर्णिम अवसर उपलब्ध हो गए हैं जितने उन्हें आज से पहले न कभी उपलब्ध थे और आगे न कभी शायद ही उपलब्ध होंगे।

उदारीकरण से लघु उद्योगों को हानि :

जैसा कि प्रकृति का नियम है कि प्रत्येक कार्य के अपने दो पक्ष होते हैं लाभ व हानि। ठीक इसी तरह से हमारे लघु उद्योगों को उदारीकरण से जहां बहुत सारे लाभ हुए वहीं उन्हें इससे थोड़ी हानि भी उठानी पड़ी, जो इस प्रकार है :

1. उदारीकरण की वजह से देश में लघु उद्योगों की संख्या में वृद्धि हुई, जिससे उन्हें आपस में कड़ी प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ा और वे बड़ी राशि विज्ञापनों पर व्यय करने लगे जिसका देश के छोटे स्तर के लघु उद्योगों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।
2. उदारीकरण की वजह से देश में लघु उद्योगों के कारीगरों के लिए प्रशिक्षण

की व्यवस्था सुलभ होने पर उनकी महत्वकांक्षा में वृद्धि हुई तथा वे अधिक वेतन प्राप्त करने के लिए जल्दी-जल्दी अपना कार्यक्षेत्र बदलने लगे। यही नहीं अब इन उद्योगों के कारीगर भी अधिक वेतन व सुविधाओं आदि की मांग पर हड़ताल आदि करने लगे, जिससे हमारे लघु उद्योग बुरी तरह प्रभावित हुए और उन्हें थोड़ा नुकसान भी हुआ।

फिर भी, उदारीकरण के फलस्वरूप लघु उद्योगों को प्राप्त विभिन्न रियायती सुविधाओं को देखते हुए इससे होने वाली इस छोटी-छोटी हानियों को नजरअंदाज किया जा सकता है क्योंकि उदारीकरण से देश में कुल मिलाकर लघु उद्योगों की स्थिति अधिक सुदृढ़ ही हुई है और वे विकास की दिशा में तेजी से अग्रसर हुए हैं। उदारीकरण से जहां हमारे लघु उद्योग स्वयं लाभान्वित हुए वहीं इससे हमारे देशीय अर्थव्यवस्था पर भी अनुकूल प्रभाव पड़ा, क्योंकि इससे हमारे निर्यात में पर्याप्त वृद्धि हुई।

इस तरह अगर हम एक वाक्य में कहना चाहें तो हम यह कह सकते हैं कि आज उदारीकरण का यह दौर लघु उद्योगों के लिए स्वर्णिम अवसर बनकर उपस्थित हुआ है और हमारे देश के सभी लघु उद्यमी भी इसका पूरा फायदा उठाकर अपनी योग्यता को सिद्ध कर रहे हैं।

विजया बैंक, क्षेत्रीय कार्यालय,
कामधेनु कांप्लैक्स, पोलिटेक्निक के सामने,
अम्बावाड़ी, अहमदाबाद-380 015

देश की स्वतंत्रता के समय जब भूमि–सुधार भी नहीं हुए थे, उदारीकरण की प्रक्रिया प्रारंभ हो गई थी।...उदारीकरण ने उच्च वर्ग की पकड़ को मजबूत किया। वे हमारे प्राकृतिक संसाधनों के बल पर धनाड्य हुए। गरीबों को प्रगति का लाभ नहीं मिला। शिक्षा और रोजगार के अवसरों में सुधार नहीं हुआ। इसके स्थान पर बाल–मजदूरी, देह व्यापार तथा उग्रवाद पनपा। हमें उन ग्रामीणों तथा शहरी लोगों को आधारभूत सुविधाएं देनी चाहिएं जो इसलिए अस्पताल जाते हैं क्योंकि वे नर्सिंगहोम का खर्च वहन नहीं कर सकते।

–महाश्वेता देवी, लेखिका

वित्तीय क्षेत्र में सुधार : बैंकिंग के परिप्रेक्ष्य में

—बी.एन. सेठ

भारत सरकार की अर्थव्यवस्था के सार्वभौमिकरण का निर्णय और एक अति आधुनिक सक्षम वित्तीय प्रणाली के निर्माण के संकल्प के साथ साथ सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों को पुनरजीवित करने की प्रतिबद्धता हेतु नरसिम्हम् समिति रिपोर्ट को कार्यान्वित करने का निर्णय ही वित्तीय क्षेत्र में सुधार प्रक्रिया का शुभ आरंभ कहा जा सकता है। तत्कालीन वित्त मंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने नरसिम्हम् समिति रिपोर्ट को 17 दिसंबर 1991 को संसद पटल पर रखते हुए कहा, "एक गतिशील एवं प्रतिस्पर्द्धात्मक वित्तीय प्रणाली विकसित करने की अत्यंत आवश्यकता है जिसमें कार्यकुशलता, उत्पादकता एवं लाभप्रदता का मुख्य स्थान हो।" नरसिम्हम् समति ने इस सत्य को स्वीकार किया है कि भारतीय बैंकिंग उद्योग ने भौगोलिक प्रसार करते हुए विकास एवं कृषि तथा लघु उद्योगों सहित करोड़ों लोगों को वित्तीय सहायता देने का सराहनीय कार्य किया है, तथापि इस सराहनीय प्रगति के लिए लक्ष्यात्मक वित्तपोषण एवं निवेश के कारण बैंकों की लाभप्रदता एवं कार्यकुशलता में गिरावट आई है जिससे गंभीर समस्याएं उत्पन्न हो गई हैं। यथार्थ के धरातल पर नरसिम्हम् समिति रिपोर्ट वास्तविकता का सही मूल्यांकन है और वित्तीय प्रणाली में सुधार के लिए सकारात्मक व्यवहारिकता का अमूल्य दस्तावेज।

भारत सरकार ने अपने परिपक्व दृष्टिकोण और विवेक का परिचय देते हुए समग्र प्रस्तावों को एक मुश्त लागू करने के स्थान पर कड़ी निगरानी में क्रमबद्ध तरीके से क्रियान्वित करने का निर्णय लिया। नरसिम्हम् समिति ने संक्षेप में निम्नलिखित सुझाव दिए :—

1. सांविधित चलनिधि अनुपात एवं प्रारक्षित नकदी निधि अनुपात में कमी।
2. ब्याज दर संरचना का अधिकार बैंकों को दिया जाए।
3. पूंजी पर्याप्तता मानदंड का निर्धारण। पूंजी संवर्धन हेतु लाभ अर्जित कर रहे बैंकों को जिनकी बाजार में साख हो, पूंजी बाजार से पूंजी एकत्र करने की छूट दी जाए।
4. 'स्वास्थ्यकूट' प्रणाली का उपयोग जिसके अंतर्गत आस्तियों को चार वर्गों में विभाजित किया जाए जिन्हें 'स्तरीय', 'निम्नस्तरीय', 'संदिग्ध' एवं 'ह्रास' का नाम दिया जाए। 'निम्नस्तरीय' आस्तियों के मामले में ऐसी बकाया राशि के 10 प्रतिशत के बराबर राशि का प्रावधान किया जाए। 'ह्रास' वाली आस्तियों को या तो पूरी तरह बट्टे खाते में डाल दिया जाए अथवा इसके बराबर राशि का प्रावधान किया जाए। इस प्रकार इस प्रक्रिया को अगले चार वर्षों तक चलाया जाए। अनुत्पादक आस्तियों को समाप्त करने के बाद अंतर्राष्ट्रीय लेखांकन मानक समिति के सुझावानुसार पूरी तरह पारदर्शी बनाया जाए।

5. निजीक्षेत्र में बैंकों की शाखा खोलने पर कोई बंधन नहीं होना चाहिए। नई बैंक शाखाएं खोलने एवं अलाभकारी शाखाओं को बंद करने का निर्णय बैंकों को स्वयं ही करना चाहिए। शाखा लाइसेंस पद्धति समाप्त की जानी चाहिए तथापि वर्तमान के लिए ग्रामीण शाखाओं को बंद करने का अधिकार बैंकों को नहीं देना चाहिए। विदेशों बैंकों द्वारा शाखाएं, कार्यालय अथवा सहायक बैंक खोलने के लिए अधिक उदारता अपनानी चाहिए।
6. आधुनिकरण हेतु रंगराजन समिति द्वारा कंप्यूटरीकरण संबंधी सुझावों को लागू किया जाना चाहिए।
7. बैंकों पर से रिजर्व बैंक एवं वित्त मंत्रालय के बैंकिंग प्रभाव का दोहरा नियंत्रण तुरंत समाप्त किया जाना चाहिए।
8. नवीन संगठनात्मक संरचना का सुझाव निम्न प्रकार से दिया :
   (अ) भारतीय स्टेट बैंक सहित 3 या 4 'अंतर्राष्ट्रीय स्वरूप' के बैंक हो।
   (ब) 8 या 10 'राष्ट्रीय स्वरूप' के बैंक रहें।
   (स) 'स्थानीय बैंक' एक क्षेत्र विशेष तक सीमित रहें।
   (द) 'ग्रामीण बैंक' ग्रामीण क्षेत्र तक ही सीमित रहे।
9. ऋण वसूली हेतु विशेष न्यायाधिकरणों की स्थापना की जाए जो बैंकों एवं वित्तीय संस्थाओं से सभी अशोध्य एवं संदिग्ध ऋणों को बट्टे पर अधिगृहित कर लें। इस अधिगृहित राशि के बदले में निधि द्वारा 'बांड' जारी किए जाएं जो कि सांवधिक निधि अनुपात के लिए निवेश हेतु पात्र हों।

उपर्युक्त सुझावों में से 1 से 6 एवं 9 का कार्यान्वयन वित्तीय क्षेत्र में सुधारों का प्रथम चरण कहा जा सकता है। सुधार प्रक्रिया में नरसिम्हम् समिति रिपोर्ट के कुछ सुझावों का कार्यान्वयन सुधार प्रक्रिया का मूल आधार कहा जा सकता है। किंतु इस प्रक्रिया में उठाए गए अनेक सकारात्मक कदम, जैसे लागत को ध्यान में रखते हुए बरसों पुरानी सेवा शुल्क दरों का नवीनीकरण, भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा प्रत्येक बैंक की प्रगति का समय समय पर मूल्यांकन, अपेक्षित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु 'मैमोरेन्डम ऑफ अंडरस्टैंडिंग' के माध्यम से प्रतिबद्धता का सुनिश्चित किया जाना इत्यादि के परिणाम स्वरूप सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों का परिदृश्य तेजी से बदला है। बदलते परिदृश्य की चर्चा से पूर्व "बैंकिंग क्षेत्र में दूसरे चरण के सुधारों की आवश्यकता" व्याख्यान माला के अंतर्गत श्री तारापोर भूतपूर्व उपगवर्नर रिज़र्व बैंक ने प्रथम चरण में उठाए गए सकारात्मक कदमों का विवरण इस प्रकार दिया :

1. राजकोष ने अपने घाटे के मुद्रीकरण के लिए मांग को कम करना आरंभ किया और बाजार से संबद्ध ब्याज की दरों की दिशा में सघन प्रयास किया।
2. प्रारक्षित नकदी निधि अनुपात तथा सांविधिक चलनिधि अनुपात की दिशा में पूर्व क्रय अधिकार को घटाया गया।
3. जमा और उदार दरों को बहुत ही सीमित नियंत्रणों (2 लाख रुपए तक के ऋण और बचत बैंक ब्याज, निर्यात ऋण) को पूरी तरह मुक्त किया गया।

ऋण और बचत बैंक ब्याज, निर्यात ऋण) को पूरी तरह मुक्त किया गया।

4. बांस्ले समिति के मानदंडों का अनुपालन करते हुए पूंजी पर्याप्तता, आय निर्धारण तथा प्रावधानीकरण के लिए विवेकपूर्ण मानदंड निर्धारित किए गए।
5. बैंकों से यह अपेक्षा की गई कि वे अधिक कड़े प्रकटीकरण मानदंड अपनाएं।
6. वित्तीय पर्यावेक्षण बोर्ड की स्थापना कर विनियामक/पर्यवेक्षणात्मक प्रणाली को मजबूत बनाया गया।
7. प्रतिभूतियों, मुद्रा तथा विदेशी मुद्रा बाजारों का प्रगामी विकास तथा समेकन को सुनिश्चित करने के लिए संस्थागत सुदृढ़ता लाई गई। श्री तारापोर ने सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास मैमोरियल लेक्चर 30 अप्रैल 1998 में सुधारों के प्रथम चरण पर प्रकाश डालते हुए कहा कि "पिछले कुछ वर्षों में किए गए सुधार वास्तव में युगांतरकारी थे और उनसे एक सक्षम तथा क्रियाशील वित्तीय प्रणाली की नींव पड़ी और इसके परिणामस्वरूप सुधारों के अगले चरण के कार्यान्वयन पर विचार हुआ।" नई सहस्त्राब्दि में प्रवेश करती हुई अर्थव्यवस्था की उभरती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति के परिप्रेक्ष्य में अपेक्षित चुनौतियों का सामना करने के लिए सुधार प्रक्रिया में सुविचारित प्रयास निरंतर हो रहे हैं। इस संदर्भ में विशेषज्ञ समितियां गठित की गई है। नरसिम्हन् समिति (बैंकिंग क्षेत्र में सुधार पर), आर.वी. गुप्ता समिति (ग्रामीण ऋण पर), एस.ए. खान पैनल (बैंकों और वित्तीय संस्थाओं के सामंजस्य पर), पन्नीरसेल्वम पैनल (अनुत्पादित आस्ति/वसूल प्रबंध पर) तथा एल.सी. गुप्ता समिति (शेयर बाजार व्युत्पन्न साधनों पर) उपर्युक्त समितियों द्वारा दी गई रिपोर्टें एवं सुझाव विचाराधीन हैं। नरसिम्हम् समिति की दूसरी रिपोर्ट में 'विश्वव्यापी बैंक' का दृष्टिकोण अपनाए जाने की वकालत की गई है। समिति ने 3 स्तरीय बैंकिंग प्रणाली का सुझाव दिया है—दो या तीन बैंक अंतर्राष्ट्रीय अभिमुखता के साथ 8 या 10 बड़े राष्ट्रीय बैंक तथा तीसरे स्तर के बैंक जिन्हें लघुतर भौगोलिक क्षेत्रों तक सीमित रखा जाए। समिति ने सक्षम इकाइयों के विलयन, एक बैंक को संकीर्ण बैंकिंग स्वरूप के कार्य करने की अनुमति, उसकी अपनी पुनर्व्यवस्था को सक्षम बनाने के लिए एक अवसर के रूप में दिए जाने की शिफारिश की है। समिति 'आस्ति पुननिर्माण निधि संकल्पना' को कार्य रूप देने की सलाह के साथ साथ सूचना प्रौद्योगिकी और अविलंब इलैक्ट्रानिक निधि अंतरण प्रणाली को आधुनिक बैंकिंग के आधार स्तंभ के रूप में मान्यता देती है। समिति ने अध्यक्ष एवं प्रबंध निदेशक, कार्यपालक निदेशक और बोर्ड के निदेशकों को नियुक्त करने की वर्तमान प्रणाली को बदलकर शीर्षस्थ प्रबंधन स्तर पर व्यावसायिकता लाने की आवश्यकता को रेखांकित किया है। खान पैनल ने भी विश्वव्यापी बैंकिंग संकल्पना को कार्यरूप देने, वित्तीय संस्थाओं के मध्यविलयन एवं विनियात्मक ढांचा विकसित किए जाने की वकालत की है। पन्नीर सेल्वम पैनल ने अनुत्पादक आस्तियों, कारगर वसूली प्रबंधन की समस्या से उबरने के लिए ऋण वसूली न्यायाधिकरणों, औद्योगिक और वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड और लोक

अदालतों की कार्यक्षमता में सुधार लाने हेतु तत्काल कदम उठाने का प्रस्ताव किया है।

वित्तीय प्रणाली में चरमराती सार्वजनिक क्षेत्र की बैंकिंग को पुनर्जीवित करने का दृढ़ संकल्प और साथ साथ आधुनिक गतिशील वित्तीय व्यवस्था का नवनिर्माण, निश्चित रूप से अत्यंत कठिन अभिनव प्रयोग था। अपने परिदृश्य को बदलने की प्रतिबद्धता के परिणामस्वरूप मृत व्यवस्था में जीवन संचार हुआ। आज भी सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक संकल बैंकिंग परिदृश्य में अपना 80 प्रतिशत भाग रखते हुए राष्ट्रीय एवं सामाजिक परिप्रेक्ष्य में अपनी प्रासंगिकता को बनाए हुए हैं। इस कटु सत्य को भी पचाया नहीं जा सकता कि इस प्रक्रिया में भारत सरकार के उपक्रम न्यू बैंक ऑफ इंडिया का बैंकिंग के मानचित्र से नाम मिट गया, इंडियन बैंक, यूको बैंक एवं युनाइटेड बैंक ऑफ इंडिया अभी अपने अस्तित्व के लिए जूझ रहे हैं। इस सुदृढ़ीकरण प्रक्रिया में बैंकों के मानव संसाधन के दृष्टिकोण में व्यवसायोन्मुख एवं ग्राहकोन्मुख होने के संकेत से ही परिदृश्य में सकारात्मक परिवर्तन परिलक्षित हो रहा है।

बैंकिंग परिदृश्य में परिवर्तन

भारतीय बैंकिंग उद्योग में सुधार प्रक्रिया के परिणामस्वरूप लाभ प्रदता के घटकों पर चार वर्षों में पड़े प्रभाव का विश्लेषण :

	1992-93	1995-96
1. प्राप्त ब्याज	9.72	10.08
2. प्रदत ब्याज	7.23	6.70
3. ब्याज प्रसार	2.49	3.38
4. गैर ब्याज व्यय	2.66	3.16
(अ) मानव संसाधन	1.77	2.15
(ब) अन्य परिचालनगत व्यय	0.89	1-0.1
5. ब्याज प्रसार आय (3-4)	(-) 0.17	0.22
6. गैर ब्याज आय	1.77	1.60
7. भार (4-6)	1.49	1.59
8. परिचालनगत आय (3-7)	1.00	1.82
9. प्रावधान एवं आकस्मिकताएं	2.08	1.67
10. शुद्ध लाभ	(-) 1.08	0.15

(स्रोत आई.बी.ए. बुलिटेन)

2. प्रति कर्मचारी कारोबार

(लाख रुपए में)

	1991-92	1995-96
1. भारतीय स्टेट बैंक (ग्रुप)	32.47	61.65
2. राष्ट्रीयकृत बैंक	44.02	67.52
3. विदेशी बैंक	198.80	392.94
4. प्राचीन निजी क्षेत्र के बैंक	35.35	83.39

3. अनुत्पादित आस्तियां

सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक	वर्ष	कुल अनुत्पादित आस्तियां
	1992-93	39746
	1994-95	38385
स्रोत पन्नीर सेल्वम पैनल	1995-96	39584
1998	1996-97	43577

स्वास्थ्य कूट प्रणाली के उपयोग, आस्ति मूल्यांकन, पारदर्शी एवं प्रकटीकरण संकल्पना, इलैक्ट्रॉनिक तकनीक विकास, उत्कृष्ट कोटि की संचार व्यवस्था एवं उच्चस्तरीय प्रौद्योगिकी को आत्मसात किए जाने के कारण त्वरित गति से बैंकिंग के मूल्य बदले, प्राथमिकताएं बदलीं कार्यशैली की व्याकरण बदली, ग्राहक सेवा को नई दिशाएं नए आयाम मिले। विश्वपटल पर बैंकिंग में स्थापित हो रहे कीर्तिमानों के परिप्रेक्ष्य में स्व मूल्यांकन का अवसर प्राप्त हुआ। हमें क्या और करना चाहिए की सोच को जन्म मिला। विश्वस्तर पर अपनी उपलब्धियों के तुलनात्मक अध्ययन से ही हम जान पाए हैं कि विकासोन्मुख, व्यवसायोन्मुख एवं लाभोन्मुख होने के लिए आकार की नहीं पेशेवर दक्षता की आवश्यकता होती है। 'पूंजी खाते में परिवर्तनीयता' तारापोर समिति की रिपोर्ट में कहा गया है कि भारतीय बैंकिंग में कार्यशील पूंजी में औसतन ब्याज प्रसार 2.9 प्रतिशत है जबकि जापान में 1.1 और जर्मनी में 1.4 प्रतिशत है किंतु हमारी परिचालनगत लागत कार्यशील पूंजी का 2.6 प्रतिशत है जो थाईलैंड एवं जापान में 1.43-1.95 प्रतिशत है। अतः हमारा ब्याज प्रसार प्रतिशत अधिक होने पर भी परिचालन लागत बढ़ जाने से लाभ पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। उपरोक्त चार्ट नं. 1 से पता चलता है कि बैंकों में मानव संसाधन पर निवेश निरंतर बढ़ रहा है और अब नए वेतनमान के भार से लाभप्रदता पर प्रतिकूल प्रभाव का पड़ना अनिवार्य है। वर्मा समिति ने यूको बैंक, युनाइटेड बैंक ऑफ इंडिया एवं इंडियन बैंक को पुनर्जीवित करने हेतु वेतन वृद्धि पर रोक एवं मानव संसाधन में 25 प्रतिशत कटौती का सुझाव दिया है। भारतीय परिस्थितियों में मानव संसाधन निवेश पर नियंत्रण लगाना कठिन होगा। अतः इस महत्वपूर्ण लाभ प्रदता के घटक के सदुपयोग हेतु अन्य विकल्प ढूढ़ने होंगे, मानव संसाधन का कारगर प्रत्योजन उन्नत लाभ विकास दर प्राप्त करने में सहायक सिद्ध हो सकता है।

कार्यशील पूंजी का संरक्षण एवं संवर्धन आज बैंकों के लिए सर्वोच्च प्राथमिकता है। अनुत्पादित आस्तियों पर नियंत्रण पाने हेतु युद्ध स्तरीय प्रयास किए गए हैं। सर्वेक्षण से पता चलता है कि सरकारी क्षेत्र के बैंकों की शुद्ध अनुत्पादित अस्तियां 10 बैंकों में 10 प्रतिशत से

अधिक थीं यह केवल दो बैंकों में 5 प्रतिशत से कम पाई गई। रिज़र्व बैंक की वर्ष 1997 की रिपोर्ट में इन आस्तियों का सकल ऋण में 17075 प्रतिशत था यह प्रतिशत जापान में 33, ताईवान में 2.6 और अमेरीका में 1.6 प्रतिशत था। वर्ष 2000-2001 तक इसे 5 प्रतिशत से नीचे के स्तर पर लाने का लक्ष्य है। श्री तारापोर का विचार है कि अनुत्पादित आस्तियां 3 से 5 वर्षों में समग्र आधार पर 5 प्रतिशत और शुद्ध आधार पर 2.5 प्रतिशत तक नीचे आनी चाहिए। डी.एस.पी. मेरी लिंच की खोज बताती है कि अनुत्पादित आस्ति अनुपात में 1 प्रतिशत की कमी सकल ऋण उत्पादनों में 15 अंकों की वृद्धि करती है और डूबे ऋण प्रावधान में 20 अंकों की गिरावट लाती है।

भारत में लाभप्रदता में शुल्क आधारित सेवा आय का योग 50 से 60 प्रतिशत है जबकि अमेरीका, इंग्लैंड, जर्मनी में यह 30 से 50 प्रतिशत है। किंतु भारत में शुल्क आधारित सेवा से होने वाली आय निधिगत साख सुविधाओं पर आधारित हैं जबकि विदेशों में यह आय साख सुवधिाओं पर आधारित नहीं हैं। इससे यही दिशाबोध होता है कि लाभोन्मुख होने के लिए वर्तमान संसाधनों के समुचित संदोहन ही पर्याप्त नहीं है वरन ऐसे सेवा-क्षेत्रों की पहचान करनी होगी जिनका निधिगत दी गई साख सुविधाओं से सीध संबंध न हो क्योंकि बदलते हुए परिदृश्य में बैंकों की भूमिका एक वित्तीय आपूर्तक से अधिक पेशेवर दक्ष परामर्शदाता की रहेगी। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में गुणवत्तादल, वित्तीय विशेषा, सर्वेक्षण एवं पर्यवेक्षीय प्रक्रियाएं लागत एवं जोखिम मानकों के विकास के साथ-साथ नए लाभोन्मुख सेवाक्षेत्रों की पहचान हेतु सक्रिय हो चुकी हैं। विकासोनमुख एवं लाभोन्मुख होने के लिए विशाल आकार की नहीं व्यवसायोन्मुख पेशेवर दक्ष कार्यशैली की आवश्यकता होती है। स्वयं को समर्थ बनाने का सबसे छोटा मार्ग बहुमुखी दृष्टिकोण का अपनाना है।

बैंकों में विकसित होती इलैक्ट्रानिक प्रणाली, कारगर संप्रेषण व्यवस्था, कंप्यूटरीकरण, इलैक्ट्रानिक अंतरण, समाशोधन, स्वचालित टेलर मशीनें, बी.सेट, इंटरनेट के परिणामस्वरूप जहां कार्यक्षमता में असामान्य रूप से वृद्धि हो रही है, वहां व्यक्तिगत बैंकिंग अवधारणा, न्वोनमेष बैंकिंग में आवासन, पूंजी बाजार, व्यापार बैंकिंग, फुटकर एवं थोक सेवा उत्पाद पैकेज, डिपाजिटरी, संविभाग प्रबंधन, पट्टाकरण, फैक्टरिंग, अभिरक्षीय सेवाएं, चौबीस घंटे की तत्काल सेवा, क्रेडिट कार्ड और हाई टैक बैंकिंग में स्वर्ण बैंकिंग, समामेलन, व्यवसायकि प्रतिष्ठानों का मूल्यांकन और अब बीमा क्षेत्र ने सेवाक्षेत्र को नई दिशाएं, नए आयाम दिए हैं। वित्तीय क्षेत्र में सुधार प्रक्रिया के परिणमस्वरूप जहां सक्षम बैंकों ने स्वयं को सुपर वित्तीय बाजारों के रूप में स्थापित कर दिया है, जहां ग्राहक के रुझान और क्षमता के अनुरूप विविध सेवा उत्पाद उत्कृष्ट विपणन कला के साथ तुलनात्मक मूल्यों पर उपलब्ध हैं, वहां सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों ने अपने विस्तृत आकार का लाभ उठाते हुए अपने संसाधनों का समुचित संदोहन सुनिश्चित करते हुए अपने जनाधर को सुदृढ़ किया है और खुले बाजार में एक सशक्त प्रतिस्पर्धी के रूप में अपनी पहचान बनाई है। क्रेता का प्रभाव बढ़ जाने के कारण अब उसके रुझान पर बैंकिंग का विकास तय होता है। व्यक्ति का हाशिए से केंद में आना ही सुधार प्रक्रिया की सर्वोच्च उपलब्धि कही जा सकती है।

सहायक प्रबंधक, सैंट्रल बैंक आफ इंडिया, सब्जी मण्डी, दिल्ली

भारत में आर्थिक सुधार और वैश्विक अर्थतंत्र

जितेन्द्र गुप्त

हर देश की आर्थिक नीति का एक ही घोषित लक्ष्य होता है—देश के भौतिक और मानवीय संसाधनों का सर्वोत्तम विकास जो टिकाऊ भी हो और बहुजन हिताय भी। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अपनाई गई रणनीतियां या रास्ते सदा एक जैसे नहीं रहते। रही भी नहीं सकते, क्योंकि बदलते सामाजिक और आर्थिक रिश्ते तथा परिवर्तनशील बाह्य परिस्थितियां नए असंतुलन और अवरोध पैदा करती रहती हैं। इसलिए आवश्यकतानुसार समय-समय पर उनमें सुधार, संशोधन अथवा आमूल परिवर्तन आवश्यक हो जाता है। जिन समाजों और अर्थव्यस्थाओं में गतिशीलता होती है वे सुधार और बदलाव स्वीकार करती रहती हैं। जो जातियां और सभ्यताएं किसी मंजिल या चरमोत्कर्ष पर पहुंच कर बदलाव का मादा खो बैठती हैं वे रोम सभ्यता और प्राचीन भारतीय सभ्यता की तरह पतन की राह पर चलने लगती है।

स्वाधीन भारत के इतिहास में आर्थिक सुधार के दो युगांतकारी दौर आए। पहला दौर था औपनिवेशिक शोषण और दमन से उबरने के लिए अर्थव्यवस्था को सुधारने-संवारने के महती प्रयास का। गरीबी, पिछड़ेपन अशिक्षा के अंधकार में डूबे देश को उठाने के लिए गहन मानसिक मंथन के बाद आयोजित विकास की रणनीति तय की गई जिसमें सार्वजनिक क्षेत्र को विकास की प्रमुख भूमिका सोंपी गई। निजी क्षेत्र को गौण स्थान मिला। उन परिस्थितियों में सरकारी क्षेत्र ही बुनियादी उद्योग ओर बहुउद्देशीय परियोजनाओं के लिए यथोष्ट साधन और संकल्प जुटा सकता था। इस व्यवस्था को मिश्रित अर्थव्यवस्था की संज्ञा मिली। इस रास्ते पर चलकर 30-40 वर्षों में देश को स्वावलंबी बनाने का सपना देखा गया।

आरंभ में इस रणनीति के अनुकूल परिणाम निकले—औद्योगीकरण का आधार और बुनियादी आर्थिक ढांचे की नींव तैयार हो गई। लेकिन धीरे-धीरे, जैसा कि प्रायः होता है, केंद्र नियोजित और अफसरशाही द्वारा निर्देशित आर्थिक तंत्र लालफीताशाही, लाइसेंस परिमट राज और कुछ अर्थशास्त्रियों की शब्दावली में 'नेता-बाबू गठजोड़' के दलदल में फंस कर आर्थिक विषमताओं और समांतर अर्थ-व्यवस्था का सहयात्री बन जाता है। भारतीय समाज में सामंतवादी प्रवृत्तियों की अंतरधारा ने यह प्रक्रिया तेज कर दी। तमाम तरह की बहस हुई। समितियाँ और आयोग बने। व्यावहारिक सुझाव भी आए मगर राजनैतिक संकल्प के अभाव में रणनीति को सुधारने या बदलने की कोशिश नहीं हो सकी। स्वर्गीय प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने सार्वजनिक रूप से स्वीकार किया कि ग्राम-विकास और गरीबी उन्मूलन के लिए आवंटित राशि का केवल 15 फीसदी नीचे तक पहुंचता है।

ऐतिहासिक प्रक्रिया बड़ी निर्मम होती है। आजादी के स्वर्णिम विहान में अपनाई गई रणनीति गलत नहीं थी, लेकिन बीस-एक वर्षों के अनुभव के बाद उसमें वांछित सुधार और बदलाव नहीं किए गए। इसलिए 1990 में विदेशी मुद्रा संकट में फंसते ही भारत को पूंजीवादी

अमीर देशों और अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं (विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष) के दबाव में आकर 'आर्थिक सुधार' का वह संस्करण अपनाना पड़ा जिसके लिए हम तैयार नहीं थे। यदि हमने अपनी आर्थिक रणनीति को सुधारा और बदला होता तो अपनी सुविधा और समय सारणी के अनुसार चलते दूसरों के इशारे पर नहीं।

भारत में आर्थिक सुधार का यह दूसरा दौर है। पहला दौर सुविचारित नीति के अधीन स्वेच्छा से और भविष्य निर्माण से संकल्प के साथ शुरू हुआ था। दूसरा मौजूदा दौर मजबूरी में अनमने ढंग से अपनाया गया। इसलिए इसका विरोध भी अधिक है और अपेक्षित परिणाम भी नहीं निकल रहे। बदलाव की तैयारी होती, जनमानस को बदलाव के लिए तैयार किया गया होता अथवा आबादी का बड़ा हिस्सा विकास-कार्यक्रमों से लाभान्वित हुआ होता, गरीबी और बेरोजगारी इतनी व्यापक न होती तो अपनी खामियों के बावजूद नई आर्थिक रणनीति के विरुद्ध आशंकाओं और विरोध के काले बादल इतने न मंडराते।

पिछले आठ नौ वर्षों में मुद्रा अवमूल्यन से लेकर करों के ढांचे में परिवर्तन तो हुए ही, लाइसेंस-परमिट राज खत्म हो गया और विदेशी पूंजी के लिए दरवाजे खोल दिए गए बजट घाटा और राजकोषीय घाटा घटाने की खातिर सार्वजनिक निवेश घाटा दिया गया और निजीकरण के पक्ष में वातावरण बनने लगा।

जिस वैश्वीकरण के नाम पर यह सब किया गया वह उन विकसित देशों की आर्थिक रणनीति की देन है जो अपने उपनिवेशों के शोषण के बल पर वैज्ञानिक, प्रौद्योगिक, औद्योगिक और सामाजिक प्रगति करके दुनिया भर में अपनी चौधराहट कायम कर चुके हैं। संपन्नता के शिखर पर बने रहने के लिए वे विकासशील देशों के बाजारों में अपने माल और पूंजी की पैठ का रास्ता प्रशस्त करना चाहते हैं। सोवियत संघ के पतन के बाद उनका दबदबा एकबारगी इतना बढ़ गया कि मराकेश में विकासशील देशो ने कई समझौतों पर दस्तखत करके विश्व व्यापार संगठन के गठन का मार्ग प्रशस्त कर दिया। यही नहीं व्यापार संबंधित बौद्धिक संपदा यानी कापी-राइट कानून में ऐसे संशोधन करने स्वीकार कर लिए जिनका फायदा विकसित देशों को मिलेगा। उस वक्त विकासशलल देशों को मुक्त व्यापार के जो फायदे बताए गए थे वे पिछले पांच वर्षों में कहीं नजर नहीं आए।

नई विश्व व्यापार व्यवस्था को वामपंथियों और अनेक स्वतंत्र विचारकों ने नव-साम्राज्यवादी अर्थतंत्र की संज्ञा दी है। वे बहुत गलत भी नहीं हैं। लेकिन यह जरूरी नहीं है कि यह एकांगी और विकासशील देशों के प्रति अन्याय और भेदभाव बरतने वाली व्यवस्था अपने रचनाकारों की—विश्व अर्थतंत्र के चौधरियों की—इच्छा के अनुसार चले। नए व्यवधान और प्रवृत्तियां तथा विरोधाभास उभरने लगे हैं जो विकसित देशों की रणनीति को पूरी तरह कामयाब नहीं होने देंगे। विगत नवंबर-दिसंबर में अमेरिकी नगर सिएटल में विश्व व्यापार संगठन की मंत्री स्तर की बैठक की विफलता—विकासशील देशों का गुस्सा, विकसित देशों के गैर सरकारी संगठनों का मुखर विरोध और विकसित देशों खासकर अमेरिका और यूरोपीय देशों के हितों में टकराव—इसका सबसे बड़ा संकेत है। कुछ अन्य प्रवृत्तियां भी हैं जो विकसित

905 HA /2000 cp

देशों की मंशा के आड़े आएंगी।

इन सब के विश्लेषण से पहले उन सुधारों का जिक्र यदि न किया जाए जो किए जाने चाहिए थे, लेकिन किए नहीं गए तो आत्मप्रवंचना ही होगी। नेहरू के आर्थिक मॉडल की कई उपलब्धियां रही हैं—औद्योगिकीकरण की नीवं पड़ी, अनाज का उत्पादन आबादी के मुकाबले तेज रफ्तार से बढ़ा (कम से कम अस्सी के दशक तक) उच्च और तकनीकी शिक्षा केंद्र तथा शोध संस्थान खुले, जिनकी बदौलत हमारे वैज्ञानिकों की मांग पश्चिमी जगत में बढ़ गई है। लेकिन खामियों को दूर करने के लिए उपनिवेशकालीन प्रशासनिक ढांचे में सुधार नहीं हुए, सार्वजनिक क्षेत्र के अधिकतर बैंक और उद्यम तथा बिजली बोर्ड सफेद हाथी बन गए हैं। ग्राम विकास और गरीबी उन्मूलन के नाम पर खर्च होने वाली राशि रेगिस्तान में बारिश की बूंदें साबित हो रही हैं। आबादी का तीन-चौथाई हिस्सा आज भी विकास की मुख्य धारा का अंग नहीं बन पाया है। वित्तीय, प्रशासनिक, रणनीतिक, राजनैतिक और चिंतन के क्षेत्र में जो परिवर्तन, सुधार और समायोजन करने थे नहीं किए जा सके। राष्ट्रीयता और नैतिकता की उपेक्षा भी अखरती है। हमारी पहली जिम्मेदारी है कि पहले हम अपना घर संभालें और वित्तीय साधनों का बेहतर इस्तेमाल करें। यह किसी भी स्वाधीन देश के लिए गौरव की बात नहीं है कि बुनियादी शिक्षा कार्यक्रम विश्व बैंक से कर्ज लेकर चलाया जाए। लेकिन हमारे यहां ठीक यही हो रहा है।

जहां तक वैश्वीकरण के पश्चिमी संस्करण का सवाल है सूचना टेक्नोलाजी ने दूरियां घटा दी हैं और इंटरनेट के माध्यम ने शेयर बाजारों को ही नहीं, विभिन्न संगठनों, क्षेत्रों और वर्गों को जोड़ दिया है। सूचना क्रांति भी औद्योगिक क्रांति की तरह नए उद्यमों और उद्यमियों को आगे बढ़ाने का अवसर दे रही है। सिएटल में पश्चिम के गैर सरकारी संगठनों की एकजुटता, खासकर वैश्वीकरण के खिलाफ उनकी मोर्चाबंदी में सूचना क्रांति का विशेष योगदान रहा।

विकसित देशों के संगठन वैश्वीकरण का विरोध कर रहे हैं क्योंकि उनके बहुराष्ट्रीय निगम विकसित देशों में पूंजीनिवेश कर रहे हैं और रोजगार के अवसर निरंतर घटते जा रहे हैं। अमेरिका के इस्पात श्रमिकों को लग रहा है कि विकासशील देशों में मजदूरी की दर कम होने के कारण उनका सस्ता लोहा और इस्पात उनकी रोजी रोटी छीन लेगा। इसलिए उनकी मांग है कि इन देशों में भी मजदूरियां बढ़ाई जाएं—उच्चतर श्रम मानक लागू कराए जाएं, जो संभव नहीं दीखता। राष्ट्रपति क्लिंटन को अपने श्रमिकों के सुर में सुर मिला कर कहना पड़ा कि श्रम मानक लागू कराए जाएंगे।

बिल क्लिंटन के तानाशाही रवैए ने विकासशील देशों को अप्रत्याशित रूप से एक जुट कर दिया क्योंकि प्रस्तावों पर न उनकी राय ली जाती है और न तथाकथित मुक्त व्यापार के फायदे उन्हें मिल रहे हैं। पिछले पांच वर्ष के अनुभव से निराश विकासशील देश इस बार अपना पक्ष रखने और विश्व व्यापार व्यवस्था में सुधार की मांग जोरदार तरीके से रखने के लिए काफी तैयारी करके गए थे। सिएटल में जो 250 प्रपत्र पेश किए गए उनमें

विकासशील देशों द्वारा तैयार विश्लेषणात्मक दस्तावेजों की संख्या आधे से अधिक थी। विश्व व्यापार संगठन में फैसले मतदान के आधार पर नहीं होते (अल्पसंख्यक विकसित देश यही चाहते थे) इसलिए जब तक 134 में से अधिकांश देश 'आमराय' का हिस्सा नहीं बनते तब तक कोई निर्णय नहीं हो सकता। अभी तक विकसित देश साम, दाम, दंड भेद की रणनीति अपना कर 'आम राय' घोषित करके अपनी बात मनवा लेते थे। आगे भी यह होगा, लेकिन पहले की तरह आसानी से नहीं। उन्हें झुकना होगा और अपना रवैया बदलना होगा।

यूरोपीय संघ अमेरिका का दोस्त है और प्रतिद्वंद्वी भी। यूरोपीय देश कृषि क्षेत्र को अरबों रुपए की सब्सिडी देते हैं जिसे वे घटाने के लिए तैयार नहीं, जबकि अमेरिका अपने अनाज के निर्यात के लिए यूरोपीय सब्सिडी से तैयार बीजों से उत्पन्न मक्का और हारमोन द्वारा पोषित गोमांस यूरोप में बेचना चाहता है, पर यूरोपीय देशों को आशंका है कि ये स्वास्थ्य के लिए अहितकर साबित होंगे। यों अमेरिका और यूरोप किसानों को सब्सिडी देना बंद कर दें तो विकासशील देश अन्न-निर्यातक देश बन सकते हैं, पर अमीर देश ऐसा करेंगे नहीं।

जापान भी विकसित देशों के साथ है पर उसे भी अपने किसानों और बाजारों की चिंता है। इसलिए उसने इस बार विश्व व्यापार संगठन के महानिदेशक के चुनाव में दिलचस्पी ली। इस वर्ष न्यूजीलैंड के माइकमूर के बाद थाईलैंड के उप प्रधान मंत्री महानिदेशक बनेंगे। विकासशील देश का प्रतिनिधि संगठन के नियमों के अनुसार ही चलेगा, लेकिन विकासशील देशों के हितों, भावनाओं कठिनाइयों के प्रति निश्चय ही अधिक संवेदनशील होगा।

इन संकेतों को ध्यान में रखकर सोचें तो इसमें संदेह नहीं रह जाता कि नई सदी और नई सहस्राब्दि युगांतकारी साबित हो सकती है। जैसे किसी देश में विभिन्न वर्गों के बीच सामाजिक और आर्थिक रिश्ते बदलते रहते हैं और नए समीकरण बनते हैं उसी तरह देशों के बीच रिश्ते और समीकरण बदलते रहते हैं। जब चीन विश्व व्यापार संगठन का सदस्य बनेगा तो विकसित देशों का पलड़ा भारी हो सकता है। अगर प्रमुख विकासशील देश अपनी आर्थिक स्थिति मजबूत करते चलें और अपने आर्थिक हितों की रक्षा के लिए विश्व व्यापार संगठन में मोर्चेबंदी और व्यक्तिसंगत सौदेबाजी करते चलें तो कोई कारण नहीं कि विश्व व्यापार तंत्र में वांछनीय सुधार न हों।

परिवर्तन विश्व का शाश्वत नियम है। वह बहुत कुछ बिगाड़ता है तो काफी कुछ सुधारता भी है। बिगाड़ और सुधार शायद एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। कोई बदलाव या सुधार होता है तो उसी के साथ बिगाड़ या विनाश का बीज भी पड़ जाता है। उत्थान और पतन का चक्र इसी तरह चलता है। एक टीवी कार्यक्रम में अमेरिकी राष्ट्रपति ने स्वीकार किया है कि नई सदी में चीन और भारत की अर्थव्यवस्थाएं आकार में अमेरिका से बड़ी होंगी और हो सकता है कि हमें उन देशों से साझेदारी करनी पड़े जिनसे इन दिनों वाशिंग्टन के संबंध अच्छे नहीं हैं।

बी-9 प्रेस एन्क्लेव, साकेत, नई दिल्ली-110017

भारत के संदर्भ में पर्यावरण अनुकूल विकास

—पूर्णिमा एम. गुप्ता

किसी समाज के विकास का अर्थ उसके आर्थिक विकास से लिया जाता है जिससे तात्पर्य है, वस्तुओं व सेवाओं का और अधिक उत्पादन। विकास का यह प्रत्यय विश्व के पश्चिमी भाग से पूर्वी भाग की ओर बहुत तेज़ी से फैला और विश्व ने विकास की इस अवधारणा का अंधानुकरण करके एक बड़ी कीमत चुकाई है। प्राकृतिक संपदा जैसे, मृदा, जल एवं वनों की लगातार हो रही क्षति, विकास की इस पद्धति के कारण चुकाई गई कीमतों का प्रमाण है, हालांकि, वह भी इतनी सुस्पष्ट नहीं है। विकासशील देशों ने इन क्षतियों को और अधिक सहा है चूंकि उनके संसाधनों से पहले आर्थिक विकास की आवश्यकताएं पूरी की जाती हैं और फिर प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण की बात आती है। सिर्फ प्राकृतिक संसाधनों का विवेकहीन तरीके से प्रयोग करते रहने और उन्हें समाप्त करते जाने की ही नहीं बल्कि उनके प्रदूषण की भी एक समस्या है। भूमि, वायु एवं जल का प्रदूषण (मुख्यतः रसायनों से) सार्वमान्य तथ्य है।

किसी भी विकासशील देश का लक्ष्य आर्थिक-विकास होता है तथा इसकी आर्थिक नीतियां इसी मूलभूत लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए प्रतिपादित की जाती हैं। यह बात भारत के लिए भी उतनी ही सही है। पिछले कुछ वर्षों में भारत लगभग 3.5% प्रतिवर्ष की विकास दर की स्थिति को पार कर अब 5-6 प्रतिशत प्रतिवर्ष की औसत विकास दर की स्थिति तक आ गया है। अतः पर्यावरण संरक्षण का महत्व और भी बढ़ गया है। ऐसा इसलिए है क्योंकि आर्थिक विकास का मूल आधार ही प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग है तथा यह प्रयोग, समाप्त होते जा रहे संसाधनों में हुई समानुपातिक वृद्धि के अनुपात में ही नहीं हो रहा है। उदाहरण के लिए, औद्योगिक गतिविधियों के चलते, जंगलों की कटाई हो रही है, प्राकृतिक आपदाओं के कारण भी जंगल नष्ट हो रहे हैं, परंतु, उसी स्तर पर चलाई जा रही वनीकरण गतिविधियों द्वारा इनकी क्षतिपूर्ति नहीं हो पा रही है। परिणामस्वरूप, प्राकृतिक संसाधन जैसे, पेड़ स्वीकार्य स्तर से भी अधिक की दर से समाप्त होते जा रहे हैं। जिसके बदले में, प्राकृतिक आपदाओं जैसे बाढ़ चक्रवात एवं भूस्खलन के कारण भारी संख्या में जनहानि होती है। इसका यह अर्थ बिल्कुल नहीं है कि आर्थिक विकास, अपनी प्रकृति से ही, पर्यावरण के लिए हानिकारक है। फिर भी, इसका यह तात्पर्य तो है ही कि आर्थिक विकास के लिए प्रयास करने के अलावा पर्यावरण संरक्षण के लिए भी संगठित प्रयास करने की आवश्यकता है।

'आवर कॉमन फ्यूचर' को उन प्रमुख प्रकाशनों में से एक माना जा सकता है जिन्होंने पर्यावरण एवं विकास के मुद्दे की ओर विश्व का ध्यान आकृष्ट किया। पर्यावरण एवं विकास विषय पर विश्व आयोग द्वारा 1987 में निकाले गए इस प्रकाशन में यह मत व्यक्त किया गया कि पर्यावरण एवं विकास को अलग नहीं किया जा सकता। पुस्तक में भारत के तत्कालीन

प्रधानमंत्री द्वारा इस बात पर जोर दिया गया कि "दुनिया ने प्रौद्योगिक विशेषज्ञता हासिल करने के प्रयास में अब तक जो रास्ता तय किया है उसने शांति व पर्यावरण को जोखिम में डाल दिया है तथा उससे दुनिया के सभी लोगों के लिए समृद्धि व समानता का लक्ष्य प्राप्त करने में असफलता ही हासिल हुई है। हमारे दृष्टिकोण और हमारे तरीकों में एक बड़ा बदलाव लाने की ज़रूरत है।" ऐसी आशा की गई थी कि यह रिपोर्ट पर्यावरण अनुकूल विकास हेतु संयुक्त राष्ट्र संघ की एक कार्य योजना बनेगी।

पर्यावरणात्मक सुरक्षा एवं आर्थिक विकास की चुनौतियों का सामना करने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा एक कार्य योजना तैयार की गई। 1992 में रिओ में हुए विश्व शिखर सम्मेलन (Earth summit) में कई राष्ट्र एकत्र हुए और एजेंडा 21 के नाम से एक कार्यक्रम पर सहमत हुए। ऐसा समझा गया था कि विभिन्न राष्ट्रों की सरकारें एजेंडा 21 के कार्यान्वयन का प्राथमिक दायित्व वहन करेंगी। भारत ने एजेंडा 21 की मांगों को पूरा करने के लिए कई पहलें की हैं।

पर्यावरण अनुकूल विकास को ऐसे विकास के रूप में परिभाषित किया जाता है जो वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताएं पूरी करता हो परंतु इस बात का ध्यान रखते हुए कि भावी पीढ़ियां भी अपनी आवश्यकताएं पूरी करने में समर्थ बनी रहें। इस रास्ते पर चलना आसान नहीं है, इसीलिए और भी नहीं क्योंकि इससे कई प्रश्न उठते हैं जिनसे विशेषज्ञ अभी भी जूझ रहे हैं। उदाहरण के लिए, 'आवश्यकताओं' का निहितार्थ किस जीवन-स्तर से है, वर्तमान पीढ़ी में कौन शामिल हैं, इसका उत्तरदायित्व किसका है, आदि। अंततः इन प्रश्नों का सामना करने एवं उनके समाधान की राजनैतिक इच्छाशक्ति से ही यह तय होगा कि पर्यावरण अनुकूल विकास की राह पर चलने के लिए किस सीमा तक कार्रवाई की जाती है। इसके अतिरिक्त, पर्यावरण अनुकूल विकास में योगदान करने के लिए जनता, गैर-सरकारी संगठनों, वैज्ञानिक समुदाय एवं औद्योगिक क्षेत्र की भूमिका को भी कम करके नहीं आंका जा सकता। इन पर्यावरणात्मक मामलों के विषय में सूचना का प्रसार आवश्यक है। इससे पर्यावरण अनुकूल विकास के मुद्दों के संबंध में विभिन्न समूहों को जागरूक बनाने में बहुत मदद मिलेगी। निर्णय लेने में आर्थिक एवं परिस्थितिकी कारकों का संघटन, जरूरी नहीं कि सदैव, परस्पर विरोधी ही हो। ऐसी स्थितियां भी होती हैं जहां उनका सह-अस्तित्व होता है। उदाहरण के तौर पर पर्यावरणात्मक पहलुओं पर ध्यान देते हुए, परिस्थितिकी-मित्रवत उत्पादों के अधिक उत्पादन के माध्यम से और अधिक रोजगार अवसर सृजित किए जा सकते हैं। जलवायु परिवर्तन के मामले को ही लें। यह माना जाता है कि जीवाश्म-ईंधन को जलाने से प्रमुख ग्रीन हाउस गैसों में से एक कार्बन-डाइऑक्साइड का उत्सर्जन होता है जिससे जलवायु परिवर्तन को रोकने तथा आर्थिक क्षमता में वृद्धि करने के दोनों उद्देश्य पूरे होते हैं। उच्च ऊर्जा क्षमता के कारण ऊर्जा पर लगने वाली लागत में कमी करने से किसी भी आर्थिक गतिविधि के दौरान ऊर्जा पर कम खर्च होगा और साथ ही कार्बन डाइऑक्साइड का उत्सर्जन भी कम होगा।

भारत में प्रयुक्त होने वाली कुल ऊर्जा का 60% कोयले द्वारा पूरा होता है। कोल

इंडिया लि. सात कंपनियों का एक संघ है तथा यह कोयले के कुशल प्रयोग में, कोयले के निकाले जाने से लेकर परिवहन तक, सक्रिय रूप से संलग्न है। इसके अतिरिक्त अक्षय स्रोतों से ऊर्जा प्राप्त करने के लिए कई कार्यक्रम हैं। सरकार पैट्रोलियम की जगह मैथेनोल के प्रयोग का भी प्रयास कर रही है।

इसी तरह, भूमि एवं वन संरक्षण को भी सरकार द्वारा गंभीरता से लिया जाता है। भूमि संसाधनों के संरक्षण, विकास एवं प्रबंधन के लिए राष्ट्रीय भूमि प्रयोग एवं संरक्षण बोर्ड जोनल भावी योजनाएं तैयार करता है। पर्यावरण अनुकूल विकास के संबंध में आयोग द्वारा स्थापित अंतर्राष्ट्रीय वन पैनल का भारत एक सक्रिय भागीदार है। भारत द्वारा पर्यावरण की सुरक्षा के उत्तरदायित्व को गंभीरता से लेने के प्रमाण उन विभिन्न कदमों से मिलते हैं जो उसने इस दिशा में उठाए हैं। उत्पादों एवं प्रक्रियाओं के लिए पर्यावरणात्मक मानक तय करना; उद्योगों के स्थान-निर्धारण एवं उनकी प्रौद्योगिकियों के लिए पद्धतियों का पर्यावरणात्मक प्रभाव आकलन; पर्यावरणात्मक परीक्षा एवं पारिस्थितिकी-आकलन स्कीमों का प्रारंभ, कुछ ऐसे उपाय हैं जो भारत द्वारा किए गए हैं। इसके अतिरिक्त, भारत अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में पर्यावरणात्मक सुरक्षा को सम्मिलित करने की आवश्यकता को समझता है। पर्यावरणात्मक पहलुओं पर ध्यान देने से आयात व निर्यात किए जाने वाले सामान की लागत बढ़ सकती है। हालांकि, विस्तृत अध्ययनों के माध्यम से ही इन संभावित व्यापार विकृतियों को समझा जा सकता है।

भारतीय संस्कृति की यह विशेषता है कि यहां समृद्धि एवं बाहुल्य का महिमामण्डन नहीं किया जाता है। सादा जीवन भारतीय संस्कृति का सार तत्व है। भारत के धार्मिक उपदेशों में प्रकृति की देखभाल को आराधना ही समझा जाता है। मानवजाति के लिए कई तरह उपयोगी होने के कारण वृक्षों का आदर किया जाता है। वृक्षों एवं उन्हें बचाए रखने के इच्छुक लोग 'चिपको' आंदोलन से भलीभांति परिचित हैं। उत्तर भारत के एक गांव में, गांव वालों ने पेड़ काटने आए लोगों को ऐसा करने की अनुमति नहीं दी और उन्हें रोकने के लिए वे पेड़ों से चिपक गए (इसीलिए उस आन्दोलन को चिपको आंदोलन कहा गया)। भारत के ग्रामवासियों ने पर्यावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुए जीवन जीने की पद्धति को आत्मसात कर लिया है। 1992 में हुए विश्व शिखर सम्मेलन में जैव-विविधता का संरक्षण एक महत्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय मुद्दा बन गया परंतु, भारत में जैव-विविधता युक्त संसाधनों का संरक्षण एवं उन्हें कायम रखते हुए उनके उपयोग का मुद्दा दशकों पुराना है। जैव संसाधनों को बनाए रखते हुए उनका प्रयोग करना भारतीय स्वभाव का एक अंग है जबकि विश्व भर में विशेषज्ञ पर्यावरण अनुकूल विकास के अर्थ एवं कार्यान्वयन के प्रश्नों से जूझ रहे हैं, भारत के ग्रामवासी इससे बहुत अच्छी तरह परिचित हैं चूंकि उनका जीवन इस पर निर्भर है।

निदेशक, योजना आयोग, नई दिल्ली।

भारतीय औद्योगिक नीति

सी.पी.आर्या

पंडित जवाहर लाल नेहरू आधुनिक भारत के प्रथम प्रधान मंत्री थे, जिन्होंने स्वतंत्रता के पश्चात देश को सशक्त राष्ट्र बनाने का स्वप्न संजोया था। आज भारत जो विश्व में एक विशिष्ट स्थान रखता है और इसका जो औद्योगिक रूप दिखाई देता है वह सब उनकी देन है। उनके बनाए हुए ध्येय और संसाधनों के कारण भारत ने कृषि और औद्योगिक क्षेत्र में प्रगति की है। भारत की स्वतंत्रता के तुरंत बाद 1948 में औद्योगिक नीति से संबंधित संकल्प पास हुआ जिसके अनुसार औद्योगिक उत्पादन और विकास हुआ। संविधान के लाभ होने के पश्चात् सामाजिक तथा आर्थिक ध्येय और औद्योगिक नीति में सन् 1956 में परिवर्तन हुआ ताकि समय समय पर होने वाली चुनौती से निपटा जा सके। इसके बाद सन् 1973,1977 और 1980 में भी इस नीति में परिवर्तन किया गया।

सन् 1973 में औद्योगिक नीति में अन्य बातों के साथ-साथ बड़े उद्योगों में विदेशी निवेश की अनुमति दी गई। 1977 में औद्योगिक नीति के कथन में विकेन्द्रीकरण और लघु उद्योग, छोटे और घरेलू उद्योगों पर अधिक जोर दिया गया और सन् 1980 में प्रतियोगिता (प्रतिस्पर्धा) द्वारा घरेलू विपणन (मार्किट) में, विज्ञान में निपुणता प्राप्त करने, वैज्ञानिक और आधुनिकीकरण के कार्य को बढ़ावा देने पर ध्यान दिया गया। इन नीतियों से विदेश व्यापार में प्रतिस्पर्धा के लिए उत्साहजनक आधार मिला। इस औद्योगिकीकरण नीति से विभिन्न उद्योगों की स्थापना की निरन्तरता का वातावरण बना। इसके बाद सातवीं पंचवर्षीय योजना में इन्फ्रास्ट्रक्चर को बड़े आधार रूप में प्रस्तुत किया गया। मूल उद्योग (बेसिक इन्डस्ट्रीज) की स्थापना हुई। उच्च स्तर पर कई वस्तुओं जैसे कच्चा माल, मध्य स्तरीय एवं तैयार शुदा वस्तुओं में स्वावलम्बता प्राप्त की गई। औद्योगिक कार्यों के नए उत्पादन केंद्र आगे आए जिससे नए युग के उद्यमियों का प्रवेश हुआ। कई इंजीनियर (अभियंता) तकनीशियन और कुशल कारीगरों को तैयार किया गया। सातवीं योजना ने उनकी आवश्यकता की पुष्टि की और भारतीय उद्योगों को नई चुनौतियों से निपटने के एक प्रभावशाली कार्य का शुभारंभ हुआ। सन् 1985 और 1986 में कई नई नीतियां और पद्धतियां प्रारंभ की गईं जिसके अंतर्गत श्री राजीव गांधी के नेतृत्व में उत्पादकता के बढ़ने के कारण, वस्तुओं की कीमतों में कमी और गुणवत्ता (क्वालिटी) में सुधार आया। विदेशी प्रतिस्पर्धा का सामना करने के लिए घरेलू विपणन केंद्रों को बढ़ाया गया ताकि बढ़ी हुई प्रतिस्पर्धा का सामना किया जा सके जिसमें विदेशी व्यापार भी सम्मिलित है। सार्वजनिक सैक्टर (उद्यम) को कई रूकावटों से मुक्त किया गया व उन्हें स्वायत्तता के अधिकार भी दिए गए। वैज्ञानिकों एवं आधुनिक प्रबंधन का उद्योगों में समावेश किया गया जिससे बढ़ी हुई उत्पादकता और हमारी सांसारिक प्रतिस्पर्धा में सुधार आए। इसके परिणाम-स्वरूप सातवीं योजना में भारतीय उद्योग की वार्षिक दर 8.5 प्रतिवर्ष हो गई। आज हर देश विकास की धारा के साथ आगे बढ़ रहा है। नाना प्रकार के तीव्रगामी

आवागमन के साधन उपलब्ध होने के कारण संसार के हर कोने में तुरंत पहुंचा जा सकता है। इसी गति से संसार में हर क्षेत्र में भी विकास हो रहा है जिसमें भारत जैसा विकासशील देश भी पीछे नहीं है। अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा में पूरा उतरने के लिए भारत सरकार अन्य क्षेत्रों के साथ-साथ औद्योगिक क्षेत्र में सतत् प्रयत्न कर रही है। एक नई नीति सन् 1991 में निर्धारित की गई, जिसके अंर्तगत तीव्र विकास हेतु प्रतिस्पर्धात्मक प्रवृत्ति उत्पन्न करने की दृष्टि से उद्योग मंत्रालय के अंर्तगत मार्च 1995 में स्थापित औद्योगिक नीति एवं संवर्धन विभाग को औद्योगिक नीति के निर्धारण और संवर्धन के लिए उत्तरदायी बनाया गया। विभिन्न विशिष्ट उद्योगों के विकाास के अतिरिक्त औद्योगिक उत्पादन की प्रवृत्तियों की समीक्षा, आधारभूत सुविधाओं का विकास, आधुनिकीकरण और तकनीकी उन्नयन से भारतीय उद्योगों को अंतर्राष्ट्रीय विपणन (मार्केट) में खड़ा रखना इत्यादि शामिल हैं। उद्योग मंत्रालय द्वारा जुलाई, 1991 में प्रमुख नीति में परिवर्तनों की शुरूआत कर दी गई थी जिसके अनुसार पूंजी प्रौद्योगिकी तथा विपणन पर अधिक बल दिया गया है ताकि औद्योगिक क्षमता तथा अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा को अधिक मात्रा में लाया जा सके। सुधार की प्रतिक्रिया की निरंतरता में जहां तक जरूरी समझा गया लाइसेंस प्रणाली में भी सुधार किया गया जिसमें पूर्वापेक्षित लाइसेंस वाले उद्योगों की संख्या घटकर केवल मात्र 9 हो गई है। इसके अतिरिक्त छः उद्योग जिसमें आयुध और गोला बारूद और रक्षा उपस्कर, रक्षा वायुयान तथा युद्धपोत से संबंधित मदें, परमाणु शक्ति, कोयला लिग्नाइट खनिज तेल, परमाणु ऊर्जा आदेश 1953 को अनुसूची में विनिर्दिष्ट खनिज तथा रेल परिवहन सरकारी क्षेत्र के लिए आरक्षित सूची में हैं।

अन्य बातों के साथ निम्नलिखित कार्य औद्योगिक नीति और संवर्धन विभाग को आवंटित किए गए हैं :

विकास संबंधी आवश्यकताओं और राष्ट्रीय उद्देश्यों के अनुरूप औद्योगिक विकास हेतु औद्योगिक नीति एवं रणनीति तैयार करना,
तैयार रणनीति/नीति को लागू करना,
उद्योग (विकास तथा विनियमन) 1951, और उसके अधीन बनाए गए नियमों को लागू करना तथा
सभी औद्योगिक तथा तकनीकी मामलों में सलाह देना।

उपर्युक्त के अलावा औद्योगिक नीति और संवर्धन विभाग, आटोमोबाइल, सीमेंट, कागज और लुगदी, चमड़ा, टायर तथा रबड़, हैवी इलेक्ट्रीकल्स, कन्जूमर ड्यूरेबल्स, विद्युत उद्योग, मशीनरी, औजार, औद्योगिक मशीनरी इंजीनियरिंग उद्योग इत्यादि जैसे अनेक महत्वपूर्ण औद्योगिक क्षेत्रों का प्रशासन प्रत्यक्ष रूप से संभालता है और अपेक्षित दिशा में उनके विकास एवं संवर्धन हेतु उत्तरदायी है।

आर्थिक विकास के उच्च स्तर को प्राप्त करने के नए घरेलू निवेश सहायता के उपाय के रूप में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की भूमिका को अच्छी प्रकार पहचान लिया गया है।

देश में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश FDI प्रवाह मे वृद्धि करने के ध्येय से जो कि सरकार को आर्थिक विकास रणनीति का एक प्रमुख उद्देश्य है तथा प्रत्यक्ष विदेशी निवेश के लिए निवेश संवर्धन तथा प्रस्तावों पर अनुमोदन के लिए परामर्श नियम, प्रक्रिया तथा दिशा निर्देश निर्धारित करने के लिए विदेशी निवेश संवर्धन बोर्ड का पुनर्गठन किया गया है।

उद्यमी सहायता एकक नामक एक अलग इकाई लाइसेंसिंग नीति और पद्वति विदेशी सहयोग पूंजीगत वस्तुओं के आयात आदि के बारे में भावी उद्यमियों को दिशा-निर्देश देने का कार्य करता है।

भारतीय उद्योग की वृद्धि और विकास में प्रोत्साहन और मदद के लिए हाल ही में घोषित महत्वपूर्ण नीतिगत उपाय तथा सरल बनाई गई कार्य पद्वतियों के अनुसार अनिवार्य लाइसेंसीकरण के तहत आने वाली मदों की सूची में अब अनिवार्य लाइसेंसीकरण के तहत निम्नलिखित नौ (09) उद्योगों को शामिल किया गया है :

1. कोयला और लिग्नाइट
2. पेट्रोलियम (कच्चे तेल के अलावा) तथा इसके आसवन पदार्थ
3. मादक पेयों का आसवन एवं व्यवासवन
4. चीनी
5. तंबाकू के सिगार एवं सिगरेट तथा विनिर्मित तंबाकू प्रतिस्थापक
6. इलेक्ट्रानिक एयरोस्पेस तथा सभी प्रकार के रक्षा उपकरण
7. डिटोनेटिंग फ्यूज, सेफटी फ्यूज, गन पाउडर, नाइट्रोसेल्यूलीज तथा माचिसों सहित औद्योगिक विस्फोटक सामग्री।
8. खतरनाक रसायन
9. औषध एवं भेषज (सिंतबर 1994 में जारी संशोधित नीति के अनुसार)

अन्य सभी उद्योग लाइसेंसीकरण से मुक्त है। 6 उद्योग सरकारी क्षेत्र के लिए आरक्षित किए गए हैं तथा 821 मदों का आरक्षण लघु क्षेत्र के लिए किया गया है। सरकार की आरक्षित सूची में 6 उद्योग इस प्रकार हैं :

1. आयुध और गोला बारूद और रक्षा उपस्कर, रक्षा वायुयान तथा युद्ध पोत से संबद्ध मदें।
2. परमाणु शक्ति
3. कोयला और लिग्नाइट
4. खनिज तेल
5. परमाणु ऊर्जा (उत्पादन और उपयोग पर नियंत्रण) आदेश, 1953 की अनूसूची में विनिर्दिष्ट खनिज।
6. रेल परिवहन

सरकार की उदार लाइसेंस नीति के अनुसार ही स्थापना स्थल संबंधी नीति में भी पर्याप्त सुधार किए गए हैं। दस लाख से अधिक संख्या वाले 25 कि.मी. के अंदर न आने वाले शहरों में स्थापना स्थलों के लिए केंद्रीय सरकार औद्योगिक अनुमोदन लेने की आवश्यकता नहीं है (अनिवार्य लाइसेंसीकरण के तहत आने वाले उद्योगों को छोड़कर)। तथापि दस लाख से अधिक जनसंख्या वाले शहरों में स्थापना स्थल वाली इकाइयों के लिए शहरी क्षेत्र के 35 कि.मी. परिधि के अंदर गैर प्रदूषणकारी अधिसूचित उद्योग जैसे कि इलैक्ट्रानिक्स, कम्प्यूटर साफ्टवेयर व मुद्रण उद्योग लगाए जा सकते हैं। अन्य उद्योगों के लिए अनुमति तभी दी जा सकती है यदि वे 25.7.91 से पूर्व निर्धारित औद्योगिक क्षेत्रों में स्थापित किए गए थे। औद्योगिक स्थापना स्थलों में क्षेत्र व भूमि उपयोग कानून और पर्यावरण संबंधी कानून लागू रहेंगे।

नई औद्योगिक नीति तथा अन्य आर्थिक सुधारों के फलस्वरूप अब कुल निवेश का अनुमोदन प्रतिवर्ष 50,000 करोड़ रुपए से अधिक हो रहा है तथा इनमें और वृद्धि होगी। 80 प्रतिशत से अधिक के विदेशी प्रत्यक्ष निवेश के अनुमोदन बिजली, तेलशोधक कारखानों, इलेक्ट्रानिक्स और विद्युत उपकरण, रसायन, खाद्य प्रसंस्करण, दूर संचार आदि जैसे क्षेत्रों के लिए गए है। उपभोक्ता उद्योग क्षेत्र जो लाभांश संतुलन दायित्व के अधीन है, में कुछ विदेशी, प्रत्यक्ष अनुमोदनों का केवल 1 प्रतिशत भाग ही माना जाता है। खाद्य प्रसंस्करण उपभोक्ता इलैक्ट्रानिक्स तथा सवारी कार इस श्रेणी में अनुमोदनों का लगभग 75 प्रतिशत बनता है। सवारीकारों के क्षेत्र में कुछ प्रमुख निवेशक अपने उत्पादन के आरंभ से ही 70 प्रतिशत से अधिक की देशीकरण की परिकल्पना कर रहे हैं जिससे संकेत मिलता है कि इन उद्योगों में भी घरेलू उद्योग का आगे और पीछे दोनों दिशाओं में संबद्धीकरण के माध्यम से और अतिरिक्त रोजगार सृजन से शीघ्र लाभ पहुंचेगा।

भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा अप्रैल, 1977 और अक्टूबर, 1997 में घोषित ऋण नीति से ऋण की उपलब्धता में पर्याप्त वृद्धि हुई और ब्याज दरों में कमी आई है। इन कारणों का निवेश पर अनुकूल असर पड़ने की आशा है। विदेशी प्रत्यक्ष निवेश में पर्याप्त वृद्धि भी पूंजी निर्माण हेतु घरेलू संसाधनों के पूरक का काम करेगी। घरेलू उद्योग को पाटन (डंपिंग) से तथा अत्यधिक आयात तथा रियायती शुल्कों पर आयात से बचने के लिए उपाय किए गए। पिछड़े क्षेत्रों का विकास तथा अवसंरचनात्मक विकास हेतु आठवीं पंचवर्षीय योजना में 71 विकास केंद्रों की स्थापना का लक्ष्य है जिसके अनुसार अब तक 66 केंद्रों का अनुमोदन किया गया है। प्रत्येक विकास केंद्र की अनुमानित लागत 25 से 30 करोड़ रुपए है। विकास केंद्रों के लिए केंद्रीय सहायता के तौर पर विशेष रूप से 1994-95 में 80.39 करोड़ रुपए जारी किए गए। 1996-97 में लगभग 28-96 करोड़ रुपए तथा 1997-98 के दौरान 25 करोड़ रुपए केन्द्रीय सहायता के रूप में जारी किए गए।

परिवहन राज सहायता योजना पहाड़ी दूरस्थ तथा अन्य अगम्य क्षेत्रों के औद्योगीकरण में विशेष रूप से लाभदायक रही है। पूर्वोत्तर क्षेत्र के लिए भी एक नई औद्योगिक

नीति बनाई गई है ताकि इस क्षेत्र का औद्योगिक विकास निरंतर कारगर रूप से हो सके।

देश में चमड़ा उद्योग के एकीकृत विकास के लिए सरकार द्वारा 15 मिलियन अमेरिकी डालर से भी अधिक की **यू.एन.डी.पी** सहायता के साथ एक राष्ट्रीय चमड़ा विकास कार्यक्रम भी क्रियान्वित किया जा रहा है। इस कार्यक्रम का विशिष्ट उद्देश्य उन स्त्रियों सहित जो इस उद्योग से जुड़ी हैं, कारीगरों की दक्षता का उन्नयन करना है। इस दिशा में अनेक कदम उठाए गए हैं जिनके बेहतर परिणाम मिले हैं। देश में चमड़ा उत्पादों की गुणवत्ता में सुधार करने तथा उनकी निर्यात संभाव्यता में सुधार करने के अलावा, उक्त कार्यक्रम में रोजगार सृजित करने तथा समाज के उन कमजोर वर्गों का आर्थिक उत्थान करने में मदद की है, जो परंपरागत रूप से चमड़ा उद्योग से जुड़े हुए हैं। यूनिडो के घनिष्ट सहयोग से बेंगलूर में प्रौद्योगिक विनिर्माण हेतु एक एकीकृत केंद्र स्थापित करने के लिए कदम उठाए गए हैं।

इस प्रकार भारतीय औद्योगिक नीति से उद्योगों की प्रतियोगिता शक्ति को अनेक क्षेत्रों में प्रोत्साहन मिला है।

कनिष्ठ विश्लेषक, औद्योगिक नीति और संवर्धन विभाग, उद्योग भवन, नई दिल्ली

कल्पना और ज्ञान के क्षेत्र में मुक्त व्यापार का प्रभाव प्रत्यक्ष वस्तुओं के व्यापार की तुलना में कई तरह से अधिक दूरगामी होता है क्योंकि यहां हम उन शक्तियों की बात करते हैं जो मानवीय मन, अभिरूचियों और मूल्यों को प्रभावित करती हैं। बड़े पैमाने पर वैश्वीकरण की अपरिहार्यता के इस दौर में यह जरूरी हो गया है कि वैश्वीकरण के आदर्श रूप को अनदेखा न किया जाए, समान स्तर पर आदान–प्रदान हो जिसमें संस्कृतियां सोच समझकर परस्पर अच्छी बातों को अपनाएं और प्रसिद्ध उत्पाद नहीं बल्कि अच्छे विचार आसानी से सीमा पार करें।

–एडम हक्सचाइल्ड

भारतीय अर्थव्यवस्था और सहकारिता

देवेंद्र उपाध्याय

भारतीय अर्थव्यवस्था में सहकारिता की महत्वपूर्ण भूमिका रही है जिसने गांवों को सामंतों, महाजनों और सूदखोरों के चंगुल से मुक्त कराकर करोड़ों किसानों को आत्मनिर्भर बनाया है। आज स्वतंत्रता के 52 वर्ष बाद भी देश की कृषि और ग्रामीण अर्थव्यवस्था की कल्पना हम सहकारिता के बिना नहीं कर सकते। गांवों की बदलती हुई तस्वीर जो इन वर्षों में दिखाई दे रही है, उस सबके पीछे सहकारिता ही रही है। स्वतंत्रता से पहले तक ही नहीं बल्कि बाद के वर्षों तक यह कहावत भारत के गांवों की असलीयत थी कि यहां का किसान कर्ज में ही पैदा होता है, कर्ज में ही बड़ा होता है और कर्ज में ही मर जाता है। लेकिन स्वतंत्रता के कुछ वर्षों बाद ही यह कहावत बीते दिनों की बात हो गई।

किसानों को ऋण, बीज, खाद, कीटनाशक दवाइयों, कृषि उपकरणों के वितरण, उनके उत्पादों के प्रसंस्करण, भंडारण और विपणन से सहकारिता जुड़ चुकी है। किसानों को उनकी उपज का लाभकारी मूल्य दिलाने में भी सहकारिता का योगदान है। सहकारिता ने लगातार जो प्रगति की है उसका सीधा संबंध किसानों और ग्रामीण वर्ग से तो रहा ही है साथ ही शहरी क्षेत्रों में भी इसका तेजी के साथ विकास हुआ है। इसका लाभ आम आदमी को मिला है। सार्वजनिक क्षेत्र और निजी क्षेत्र के साथ ही सहकारी क्षेत्र भारतीय अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण अंग है। यह इस मायने में दोनों से अलग है क्योंकि यही आम आदमी के दुख-सुख के साथ गहराई से जुड़ा हुआ है।

भारतीय सहकारिता आंदोलन आज विश्व का एक सशक्त आंदोलन बन चुका है। देश में आज सहकारी समितियों की संख्या 4.52 लाख को पार कर गई है जिनकी सदस्य संख्या 20.4 करोड़ रुपए से अधिक हो चुकी है तथा इनकी कार्यशील पूंजी 157477 करोड़ रुपए से अधिक है। राष्ट्रीय स्तर पर 21, राज्य स्तर पर 361 तथा जिला स्तर पर 2741 सहकारी संस्थाएं कार्य कर रही हैं। सहकारी क्षेत्र ने करीब 1.25 करोड़ से अधिक लोगों के लिए रोजगार का सृजन भी किया है।

1946 में खेड़ा जिला (गुजरात) के कुछ गांवों से 250 लीटर दूध के साथ जिस दुग्ध उत्पादन के काम की शुरूआत हुई थी, वह काम दुग्ध उत्पादन जिले के एक हजार से अधिक गांवों में 917 समितियों के रूप में फैल चुका है। सहकारी विपणन क्षेत्र का अमूल एक जीता-जागता उदाहरण है जो अपनी सफलता की कहानी स्वयं कह रहा है। इसकी वजह से आज देश में राष्ट्रीय दुग्ध ग्रिड स्थापित हो चुका है। महानगरों में "ऑपरेशन फ्लड" सहकारिता से ही संभव हो पाया है।

वर्ष 1995-96 में प्राथमिक कृषि सहकारी समितियों की संख्या 92,260 थी जिनकी सदस्य संख्या 9,14 करोड़ थी। इन समितियों ने इस अवधि में 12046.84 करोड़ रुपए अग्रिम ऋण दिए जबकि इनमें कुल जमा राशि 3857.70 करोड़ रुपए थी। इनकी शेयर पूंजी 2105. 94 करोड़ रुपए थी जिसमें सरकार की भागीदारी 14.97 प्रतिशत थी। करीब 99.5 प्रतिशत गांव प्राथमिक कृषि सहकारी समितियों के दायरे में शामिल हैं।

आदिवासी क्षेत्रों में 3706 बड़े आकार की आदिवासी बहुउपयोगी समितियां (लैम्प्स) कार्यरत हैं, जिनमें 93.3 प्रतिशत वास्तव में सक्रिय समितियां हैं। "लैम्प्स" की सदस्य संख्या 52.14 लाख के करीब है और इनमें सरकार के 37.4 प्रतिशत अंशदान सहित कुल प्रदत्त पूंजी 108.02 करोड़ रुपए और कार्यशील पूंजी 577.9 करोड़ रुपए लगी हुई है।

सहकारी क्षेत्र में राज्य सहकारी भूमि एवं विकास बैंकों की तादाद 1996-97 में 19 थी जिसमें संस्थागत सदस्यों की संख्या 8408 तथा इनकी संचालित इकाइयों की संख्या 2452 थी। "नाबार्ड" के आंकड़ें बताते हैं कि 1996-97 में इन बैंकों की जमा राशि 812.29 करोड़ रुपए तथा कायशीलपूंजी 10770.21 करोड़ रुपए थी। अग्रिम ऋण के रूप में इन बैंकों ने 235.61 करोड़ रुपए के ऋण दिए जिनमें सर्वाधिक 81.4 प्रतिशत कृषि क्षेत्र के लिए तथा 13.3 प्रतिशत गैर–कृषि क्षेत्र को दिया गया।

आंकड़ों से स्पष्ट है कि 1996-97 में प्राथमिक भूमि/कृषि सहकारी विकास बैंकों की तादाद 733 तथा उनकी सदस्य संस्था 50 लाख से भी अधिक थी। इनकी कुल शेयर पूंजी 389.49 करोड़ रुपए में सरकार का अंशदान 153 प्रतिशत था। इन बैंकों ने 1300 करोड़ रुपए से अधिक का अग्रिम ऋण दिया, जिसमें सर्वाधिक 79.4 प्रतिशत कृषि क्षेत्र को मिला।

नाबार्ड के 1995-96 तक के आंकड़ों के अनुसार प्राथमिक सहकारी बैंको, जिनमें बाहरी बैंक भी शामिल हैं, की संख्या 1772 थी जिनकी सदस्य संख्या 1.90 करोड़ हो चुकी थी। इन बैंकों ने कुल 15184.88 करोड़ रुपए अग्रिन ऋण के रूप में दिए। इसी अवधि में 42494 ऐसी सहकारी समितियां और बैंक थे जिनकी सदस्य संख्या 2.40 करोड़ से अधिक थी। ये गैर-कृषि ऋण समितियां हैं।

विभिन्न स्तरों पर देश में 1995-96 में 8236 विपणन समितियां थीं जिनकी सदस्य संख्या 50 लाख थी। इनमें 9503.04 करोड़ रुपए लागत के कृषि उत्पादों का विपणन किया गया और 686.7 करोड़ रुपए के कृषि आदान तथा 7069.92 करोड़ रुपए की उपभोक्ता वस्तुएं वितरित की गईं। इनका व्यापारिक कारोबार 5802.85 करोड़ रुपए था और इनके गोदामों की संख्या 8622 तथा शीतगृहों (कोल्ड सटोरेज) की संख्या 2521 थी।

देश में उपभोक्ता सहकारी समितियों की संख्या प्राथमिक स्तर पर 25 हजार से भी अधिक है जिनकी सदस्य संख्या 1.30 लाख से अधिक है और उनमें कार्यशील पूंजी

234.13 करोड़ रुपए से भी अधिक है, जबकि जिला होलसेल स्टोरों की संख्या 676, डिपार्टमेंटल स्टोरों (ब्रांचों) की संख्या 263 तथा अन्य ब्रांचों की संख्या 6331 है और इनकी सदस्य संख्या 24 लाख से कहीं अधिक है। इनकी संस्थागत सदस्य संख्या 44767 है। राज्य सहकारी उपभोक्ता फेडरेशन 29 हैं और इसके अलावा 4019 छात्रों की सहकारी (स्टूडेंट्स कोआपरेटिव) भी चल रही है जिसमें 8.31 लाख सदस्यों में 89.3 प्रतिशत सदस्य छात्र हैं। देश में 27 हजार से भी अधिक उचित दर दुकानें चल रही हैं जो सार्वजनिक वितरण व्यवस्था को मजबूत बना रही है।

वर्ष 1996-97 में चीनी मिलों की तादाद 253 थी जिनका कुल कारोबार 4756.59 करोड़ रुपए का हुआ। देश के कुल चीनी उत्पादन में सहकारी क्षेत्र का हिस्सा 56.8 प्रतिशत है। सहकारी क्षेत्र में 935 कताई मिलें कार्यरत हैं और देश में स्थापित कुल कताई क्षमता का 12 प्रतिशत योगदान सहकारी क्षेत्र का है।

केंद्र सरकार ने मार्च 97 के अंत तक देश में सहाकरी विपणन संरचना के विकास के लिए 3015.98 करोड़ रुपए की राशि जारी की थी, जबकि 1997-98 में 100.65 करोड़ रुपए जारी किए गए। कमजोर वर्ग की सहकारी समितियों को सहायता देने के केंद्रीय योजना के अंतर्गत आठवीं योजनावधि में 7.44 करोड़ रुपए की राशि दी गई।

प्रसंस्करण में भी सहकारी क्षेत्र की भूमिका की अनदेखी नहीं की जा सकती है। अनेक कृषि एवं बागवानी उत्पादों के प्रसंस्करण का कार्य सफलतापूर्वक चल रहा है। अब खाद्य तेलों के प्रसंस्करण में भी सहकारी क्षेत्र ने अनेक उपलब्धियां अर्जित की हैं।

सहकारी क्षेत्र उर्वरकों (खाद) के उत्पादन में अग्रणी हैं। उसका योगदान देश के कुल उर्वरक उत्पादन में 18.64 प्रतिशत और वितरण में 30.35 प्रतिशत है। "इफ्फको" और "कृभको" ने देशभर में फैले अपने 33 हजार से भी अधिक सेवा केंद्रों के माध्यम से किसानों तक उर्वरक तथा अन्य कृषि आदानों की पहुंच को आसान बनाया है। ट्राइफेड ने आदिवासी क्षेत्रों में आदिवासियों को वनोपज का एकत्रीकरण कराने, लाभकारी मूल्य दिलाने तथा उनके उस वनोपज का विपणन कराने की दिशा में कई कदम उठाए हैं जिसकी वजह से बिचौलियों के शोषण से आदिवासियों को मुक्त कराने में काफी मदद मिली है। तम्बाकू उत्पाद सहकारी, बुनकर सहकारी, आवास सहकारी, औद्योगिक सहकारी, डेरी सहकारी, मत्स्य सहकारी, श्रम सहकारी, भारी इंजीनियरिंग, पेट्रोफाइल्स, वृक्ष उत्पादक सहकारी और पर्यटन आदि से जुड़ी अनेक सहकारी समितियां कार्यरत हैं।

देश में भारतीय राष्ट्रीय सहकारी संघ शीर्ष सहकारी संस्था है, इसके अलावा करीब 27 राष्ट्रीय सहकारी फेडरेशन और 252 बहु राज्य सहाकरी समितियां कार्य कर रही हैं। आठवीं योजना के दौरान सहकारी समितियों के केंद्र रजिस्ट्रार की भूमिका को मजबूत करने के लिए 33.25 लाख रुपए की राशि दी गई थी।

सहकारी आंदोलन अब नए क्षेत्रों कें जाने के अवसर खोज रहा है। सहकारी बीमा प्रणाली का विकास, अंतर्राष्ट्रीय सहकारी व्यापार उन्नयन, सहकारी सूचना प्रणाली का नेटवर्क तैयार करना, एग्रो-प्रोसेसिंग उद्योगों का विकास तथा मजदूर सहकारी आदि ऐसे क्षेत्र हैं जिनमें नई संभावनाएं और सफलताएं छिपी हुई हैं।

नेफेड ने कृषि उपजों का लाभकारी मूल्य देने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उत्पादको को मंडल हस्तक्षेप योजना के तहत नेफेड ने लाभकारी मूल्य दिलाया है साथ ही उपभोक्ताओं को भी उचित मूल्य उपलब्ध कराने में भी सक्रिय भूमिका निभाई है।

महानगरों में आवास समस्या को आसान बनाने में सहकारी क्षेत्र की भूमिका को अनदेखा नहीं किया जा सकता है। वर्ष 1966-97 तक इसकी सदस्य संख्या 60 लाख से अधिक हो चुकी थी तथा उनकी सहकारी समितियों की संख्या 90 हजार से अधिक थी। आवास सहकारी समितियों की वृद्धि का सिलसिला जारी है और इससे जटिल होती जा रही आवास समस्या को हल करने में काफी मदद मिली है। अब ग्रामीण क्षेत्रों में भी आवास सहकारी का विस्तार हो रहा है।

इन सबके बावजूद सहकारी क्षेत्र कई कारणों से उतना सफल नहीं हो पाया है जितना कि दूसरे देशों में। कई राज्यों में तो सहकारी आंदोलन ने निजी क्षेत्र और सार्वजनिक क्षेत्र को भी पीछे धकेल दिया है। इस सबके बावजूद अनावश्यक सरकारी हस्तक्षेप, कुछ निहित स्थार्थों का आधिपत्य और सहकारी आंदोलन में निष्ठा की कमी के कारण इसे आगें बढ़ने में पर्याप्त मदद नहीं मिल पायी है। यों सहकारी आंदोलन सभी क्षेत्रों में आगे बढ़ा है पर कई कारणों से इसमें अवरोध पैदा हुए हैं।

सहकारी समितियों के पुनरुद्धार के लिए बहुराज्य सहकारी समिति अधिनियम, 1994 को संसद में पेश किए जाने की मांग सहकारी क्षेत्र अर्से से कर रहा है। प्रस्ताविक अधिनियम का उद्देश्य सहकारी समितियों को कार्यात्मक स्वायतता प्रदान करना है ताकि वे अपने उद्देश्यों तथा उपनियमों के अनुसार अपने कामकाज का संचालन तथा प्रबंध कर सके। इससे राज्यों को अपने सहकारी समिति अधिनियमों में संशोधन करने की सुविधा से संबंधित राष्ट्रीय नीति को भी सरकार ने घोषित करने का आश्वासन दिया है।

वास्तव में सहकारिता आंदोलन उस आम आदमी से जुड़ा आंदोलन है जो आत्मनिर्भर होना चाहता है। निश्चित रूप से सहकारी आंदोलन की सफलता से हमारा लोकतंत्र और मजबूत होगा।

सहकारी क्षेत्र के बजटीय आवंटन में लगातार वृद्धि हुई है और लोगों की भागीदारी भी बढ़ी है। इन सबके बाद भी सहकारी क्षेत्र को भारतीय अर्थव्यवस्था में जो महत्वपूर्ण स्थान मिलना चाहिए नहीं मिल पाया है। जिस दिन इसके महत्व को स्वीकार कर लिया जाएगा

और इसे अर्थव्यवस्था के तीसरे क्षेत्र के रूप में मान्यता मिल जाएगी तब निश्चित रूप से सहकारी आंदोलन की जड़ें और गहरी होंगी।

सी-7/18ए, लारेंस रोड, दिल्ली-110035

आर्थिक सुधारों ने अमीरों और गरीबों के बीच के अंतर को बढ़ाया है और आधुनिकीकरण से सीमान्त किसानों, जनजातियों जैसे असुरक्षित वर्ग को एक किनारे कर दिया है तथा अपने भाग्य भरोसे छोड़ दिया है। सुधारों को गांवों पर केंद्रित किया जाना चाहिए न कि बाजार पर, पीने के पानी पर न कि कोका कोला पर, वस्तुओं पर न कि आरामदायक हवाई अड्डों पर, सार्वजनिक परिवहन पर न कि सुविधाजनक कारों पर। हम संसार के निर्धन देशों में से एक हैं, इसलिए अमीर देशों की भांति व्यवहार करना हमारे बस का नहीं।

—जय दुबाषी, अर्थशास्त्री

905 HA /2000—7A

सब्सिडियां देना कितना उचित कितना अनुचित

वेद प्रकाश अरोड़ा

देशो की अर्थव्यवस्था के समग्र परिदृश्य में गुलाबी और मटमैले दोनों रंगों का मिश्रण है। भुगतान संतुलन की स्थिति संतोषजनक है, विदेशी मुद्रा भंडार में लगभग 35 अरब डालर हैं। मुद्रत्फीति की दर दो और तीन प्रतिशत के बीच चल रही है। सकल घरेलू उत्पाद भी छह और साढ़े छः प्रतिशत के बीच रहने का अनुमान है। जहां अनाज उत्पादन के नए शिखर को स्पर्श कर लेने की भरपूर संभावना है वहां बुनियादी ढांचे की विकास दर भी लगभग साढ़े छह प्रतिशत है। पिछले वर्ष अप्रैल से अक्टूबर तक अगर आयात में 7.5 प्रतिशत की वृद्धि हुई तो निर्यात दस प्रतिशत बढ़ा। अर्थव्यवस्था के इन उजले मजबूत बुनियादी तत्वों के बावजूद राजकोषीय घाटे का ग्राफ और ऊंचा चढ़ गया है। वह इस समय सकल घरेलू उत्पाद का लगभग छह प्रतिशत है। प्रधानमंत्री ने आठ जनवरी को पुनर्गठित आर्थिक परामदर्शदायी परिषद की पहली बैठक में इस घाटे से उबरने के लिए सरकारी खर्च में कमी, करों और सकल घरेलू उत्पाद के अनुपात में सुधार तथा राजस्व उगाही में वृद्धि की आवश्यकता बताया। उनके शब्दों में प्रत्यक्ष और परोक्ष सब्सिडियों को तर्कसंगत बनाना और उनमें कमी करना इस समग्र प्रयास का अभिन्न हिस्सा होना चाहिए। यह प्रयास इसलिए भी अत्यंत आवश्यक हो गया है कि अधिकतर राज्यों का राजस्व व्यय बेतहाशा बढ़ गया है लेकिन निर्माण और पूंजीगत व्यय अपर्याप्त है, राजस्व और राजकोषीय घाटे बर्दाश्त के बाहर हैं और कर्जों का बोझ भी भारी भरकम है।

इस कमजोर वित्तीय स्थिति में केंद्र और राज्यों के लिए सब्सिडियां जारी रखना एक जबरदस्त सिरदर्द बन गया है। लेकिन सब्सिडियों को हटाना या कम करना भी कोई कम सिरदर्द नहीं है। इसलिए सब्सिडियां हटाने के लिए लाख तर्क दिए जाएं, अगर इस कदम से जनसामान्य को हल्का भी कष्ट झेलना पड़े, तो वह सरकार को माफ नहीं करता। लोकप्रियता खोने के डर से ही जुलाई 1991 में कांग्रेस को स्पष्ट बहुमत प्राप्त होने के बावजूद तत्कालीन वित्त मंत्री डा. मनमोहन सिंह सब्सिडियां हटाने की हिम्मत न दिखा सके और घाटे का बजट बनाने के लिए विवश रहे। बाद में वामपंथी दलों द्वारा समर्थित संयुक्त मोर्चा सरकार के दो प्रधानमंत्रियों-देवगौड़ा और इंद्र कुमार गुजराल के शासन काल में भी तत्कालीन वित्त मंत्री पी. चिदंम्बरम सब्सिडियां घटाने में सफल नहीं हुए जबकि वे स्वयं इन्हें घटाने के पक्षधर थे। पिछले चार वर्षों तक अनाजों का समर्थन मूल्य बढ़ाने का सिलसिला तो जारी रहा, लेकिन खजाने को भरपाई के लिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली से यानो राशन की दुकानों पर बेचे जाने वाली वस्तुओं के दाम नहीं बढ़ाए गए। नई राष्ट्रीय लोकतांत्रिक गठबंधन सरकार ने दोहरी मूल्य प्रणाली का सहारा लेते हुए गरीब तबके के लोगों से अधिक मूल्य वसूल नहीं किया। वास्तव में सब्सिडियों का प्रश्न काफी जटिल और उलझा हुआ है। यह किसी भी सरकार के लिए गले की हड्डी बन सकता है जिसे न तो निगलते बनता है और न उगलते।

905 HA./2000—7B

सरकार की बेबसी यह है कि वह राजकोशीय घाटा बढ़ते जाने के बावजूद, सैंकड़ों सब्सिडियों को, लोगों के विपरीत सब्सिडियां देने का सिलसिला अनवरत जारी रखने से सरकार का खजाना खाली हो जाता है। विकास एवं कल्याण कार्य रुक जाते हैं, राजकोष की भरपाई के लिए कागज़ी नोट छापने पड़ते हैं। इससे मुद्रा स्फीति बढ़ती है और निरंतर मुद्रास्फीति से चीजों के मूल्य बढ़ते बर्दाश्त की सीमा के बाहर हो जाते हैं और अंततः सरकार को ले डूबते हैं।

यहां यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि आखिर सब्सिडी क्या है, किसे कहते है, इसका आरंभ कब और कैसे हुआ। इसकी चाल, चेहरा, चरित्र तथा रूप स्वरूप कैसा है। सब्सिडियों को समाप्त किया जाए तो कब और कैसे ?

सबसे पहले इसके अर्थ को लेते हैं। जब किसी चीज के उत्पादन की कुल लागत से कम कीमत पर कोई चीज बेची जाए तो उत्पादन लागत और बिक्री मूल्य के बीच के जिस अंतर की भरपाई सरकार करे, उसे सब्सिडी कहा जाता है। इसी तरह अगर बाहर से आयात की गई पेट्रोलियम जैसी वस्तु आयात मूल्य से जितनी कम कीमत पर कोई चीज बेची जाएगी तो सरकार द्वारा की गई इस अंतर की भरपाई को भी सब्सिडी कहते हैं। इससे सरकार को घाटा ही घाटा होता है। लेकिन देश में लगभग 30 से 40 प्रतिशत गरीबों की हालत इतनी खराब और खस्ता है कि उन्हें दो जून सूखी रोटी भी नसीब नहीं होती। अगर अकाल पड़ जाए तो भी गरीबों को सूखी रोटी तो क्या खाने के लिए कुछ भी नहीं मिलता। इस स्थिति में उन्हें या तो मुफ्त या कब कीमत पर दवाएं और खाद्यान देना पड़ता है। न दिया जाए तो भुखमरी, मौतों और महामारियों से हाहाकार मच उठती है। जब देश की आबादी का लगभग 40 प्रतिशत गरीबी की रेखा के नीचे बदहाली और कंगाली का जीवन बसर कर रहा हो तथा कुल जनसंख्या का 70 प्रतिशत निर्धन हो, तो सब्सिडियां कम करना अपराध से कम नहीं। निर्धनों के लिए अनाज पर और किसानों के लिए उर्वरकों पर सब्सिडी को खेरात या बख्शीश नहीं समझना चाहिए और न संसाधनों का अपव्यय मानना चाहिए। इस संदर्भ में यह नहीं भूलना चाहिए कि संविधान में सभी नागरिकों को सामाजिक और राजनीतिक न्याय देने का प्रावधान है। इस सारी स्थिति को देखते हुए गरीब तबके के लिए विभिन्न सब्सिडियों के रूप में सहायता देने से सरकार का सामाजिक, मानवीय और जनकल्याणकारी चेहरा उभरता है।

सब्सिडियों को राज सहायता, सरकारी रियायत और कुछ के अनुसार सकारी अनुदान भी कहा जाता है। इनके रूप और प्रकार अनेक हैं। ये दृश्य हैं और अदृश्य भी, प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष भी। वे बजटों में होती हैं और बजटों के बाहर भी। संख्या की दृष्टि से सब्सिडियों का कुकरमुत्तों की तरह विस्तार ही नहीं हुआ, उनकी केंद्रीय बजट में ब्याज भुगतान और रक्षा-व्यय के बाद सबसे अधिक राशि सब्सिडियों पर खर्च होती है। 1971-72 में केंद्र की प्रत्यक्ष राज सहायता 140 करोड़ रुपए जो कि पिछले 26 वर्षों में बढ़कर 19444 करोड़ रुपए हो गई। राशियों ने भी विशाल आकार ले लिया है। ये समाज के लिए अनिवार्य

बुराई है, दो धारी तलवार है, जो जनरक्षक है और पूंजी भक्षक भी। ये राजनेताओं की प्रलोभनी गाजर है तो अर्थशास्त्रियों का दुःस्वप्न भी। अर्थतंत्र पर पड़ा भारी भरकंम पहाड़ है तो गरीबों की बेसाखी भी। **राजकोष के लिए जोक है तो किसानों के लिए अमृत वर्षा।** इन्हें देने का क्रम पिछले 51 वर्षों से निरंतर चलता चला आ रहा है और वे देश को अर्थव्यवस्था में गहरी जड़ें जमा चुकी हैं। आजादी मिलने के समय कृषि उद्योगों तथा आम जनता की स्थिति दयनीय थी। उन्हें कदम कदम पर सरकारी सहायता की आवश्यकता थी। सरकार भी समाजवादी ढंग की संरचना और लोक कल्याणी राज्य की स्थापना के लिए अपना मानवीय रूप अधिक उजागर करना चाहती थी। तब सब्सिडियां देने का सिलसिला यह सुनिश्चित करने के लिए संयत और विवेक सम्मत ढंग से आरंभ हुआ था कि निर्धनों को राहत मिले, किसानों को प्रोत्साहन मिले तथा व्यय किए गए धन की बेहतर वापसी हो यानी आर्थिक लाभ भी हो और सामाजिक चेहरा भी चमके। कृषि कार्यों के साथ साथ उद्योगों को लगाने, जमाने, तेजी से आगे बढ़ाने तथा अंतर्राष्ट्रीय स्पर्धा के लायक बनाने के लिए सब्सिडी का टानिक देना राज्य का कर्तव्य बन गया था, लेकिन किसी उद्योग के शैशव और बाल्यकाल पार कर लेने तथा ऊर्जा जुटा लेने के बाद सब्सिडी देते रहने का कोई तर्क या तुक नहीं था। फिर भी लगता है कि पूरा अर्धशताब्दी तक सब्सिडियां देते रहने के बावजूद वे किसी भी कमजोरी का इलाज नहीं बन पाई हैं। एक भी ऐसा उद्योग या ऐसी सेवा नहीं है जिसने सब्सिडी लेनी बंदी की हो। उलटे उद्योगों तथा सेवाओं को इतना पराश्रयी बना दिया गया है कि वे सब्सिडी की बेसाखी के बिना चल ही नहीं सकते। जो पहले टानिक या दवा थी वही बीमारी का कारण बन गई है। यहां तक कि इस समय सब्सिडियों का प्रत्यक्ष-परोक्ष ताना बाना आर्थिक, व्यापारिक और सामाजिक क्षेत्रों के अलावा धार्मिक क्षेत्रों में भी फैल गया है। हज यात्रियों के किराए पर सब्सिडी पांच हजार रुपए से बढ़ाकर सत्रह हजार छः सौ चालीस (17,640/ रुपए) कर पिछले वर्ष सरकार को लगभग एक अरब ग्यारह करोड़ रुपए से कुछ अधिक राशि सब्सिडी के रूप में खर्च करनी पड़ी। सब्सिड़ियां, उद्योग, कृषि, व्यापार, पानी, उर्वरकों और राशन की वस्तुओं सहित लगभग हर क्षेत्र में विभिन्न सेवाओं और वस्तुओं पर दी जा रही है। किसानों को विभिन्न फसलों के उत्पादन में प्रोत्साहन देने के लिए खाद, पानी और बिजली सस्ती या मुफ्त देने के साथ साथ गन्ने, गेहूं, चावल, चने और अन्य अनाजों तथा व्यावसायिक फसलों के न्यूनतम समर्थन मूल्य प्रत्येक वर्ष बढ़ा दिए जाते हैं। इस पर सभी राजनीतिक दल चुप्पी ही नहीं साधे रहते, बल्कि इस कार्रवाई का भरपूर स्वागत भी करते हैं। तब इन वस्तुओं के मूल्य बढ़ने पर उपभोक्ताओं के आंसू पोंछने के लिए कोई भी आगे नहीं आता।

यहां दूसरे पक्ष की दलील कि सब्सिडियों की एकतरफा थपथपाहट हमारे अर्थतंत्र के लिए कोई शुभशगुन नहीं है। सब्सिडियों की खुराक बहुत अधिक देते रहने से अर्थतंत्र विकृत ही नहीं हुआ, खोखला भी हो गया है। सरकारी खजाना खाली होते जाने से सब्सिडियां दो धारी तलवार बन गई हैं। पहले वे वरदान थी तो अब अभिशाप भी बन गई हैं। खाद्यान्नों और उर्वरकों पर कुल सब्सिडी बिल का 75 प्रतिशत यानी 20000 करोड़ (2 खरब रुपए) से भी अधिक व्यय होने के बावजूद मुख्य लाभ गरीबों अथवा आम लोगों की बजाय संपन्न

व्यक्तियों और नौकरशाहों को मिलता है। जाने माने कृषि वैज्ञानिक अशोक गुलाटी के अनुसार सब्सिडियों का लाभ अकसर लक्षित या निर्धारित समूहों को नहीं मिल पाता जैसे उर्वरकों पर सब्सिडी का अधिकांश भाग कभी भी सामान्य किसानों को नहीं मिला है। बड़े किसान ही सब्सिडी को निगल जाते हैं। शेष लगभग 50 प्रतिशत सब्सिडी उर्वरक इकाइयां हड़प लेती हैं। दूसरी तरफ सब्सिडियां सरकार को अपने आय स्रोतों से कहीं अधिक व्यय करने पर मजबूर कर देती हैं। पात्रता के अयोग्य सेवाओं पर 90 प्रतिशत सब्सिडियां खर्च कर दी जाती है। संयुक्त मोर्चा सरकार के तत्कालीन वित्त मंत्री पी. चिदम्बरम द्वारा तैयार किए गए श्वेत पत्र में बताया गया कि 1994-95 के दौरान 137338 करोड़ रुपए के कुल सब्सिडी बिल में से लगभग चौथा हिस्सा अर्थात् 39193 करोड़ रुपए ही पात्रता वाली सेवाओं जैसे प्राथमिक शिक्षा, लोक स्वास्थ्य, तथा सड़कों और पुलों जैसे बुनियादी ढांचे के लिए खर्च किए गए। पूर्वाक्त कुल सब्सिडी-बिल केंद्र और राज्यों के कुल राजकोषीय घाटे के बराबर तथा सकल घरेलू उत्पाद का 14.4 प्रतिशत था। इसमें पात्रता के अयोग्य या गैर-जरूरी समझी जाने वाली सब्सिडियां सकल घरेलू उत्पाद का 10.7 प्रतिशत थी। बाद में संयुक्त मोर्चा सरकार के इन्हीं वित्त मंत्री के बजट में सभी दृश्य-अदृश्य सब्सिडियों की कुल राशि बढ़कर 185000 करोड़ रुपए हो गई। सब्सिडियों पर भारी व्यय का ही परिणाम है कि वर्तमान वित्त वर्ष में राजकोषीय घाटा लगभग छह प्रतिशत रहेगा, जबकि कुशल वित्तीय प्रबंधन का तकाजा है कि यह घाटा तीन प्रतिशत से अधिक नहीं होना चाहिए, तभी मूल्यों में स्थिरता आ सकती है और ब्याज दर कम हो सकती है। सब्सिडियों का एक अन्य दुखद पहलू यह रहा है कि सिंचाई, उच्चतर शिक्षा, और यहां तक कि स्वास्थ्य सेवा क्षेत्र में केंद्र और राज्य सरकारें लागत की पांच प्रतिशत से भी कम राशि वसूल कर पाती हैं। यह तथ्य भी ध्यान देने योग्य है कि दो तिहाई से अधिक सब्सिडियां राज्य सरकारें दे रही हैं लेकिन इस राशि की वापसी बहुत कम है। इसीलिए विश्व बैंक और अंतराष्ट्रीय मुद्रा कोष इन्हें समाप्त करने की वकालत करते हैं। ग्यारहवें वित्त आयोग के अध्यक्ष डॉ. ए.एम. खुसरो के अनुसार 25 राज्यों में से कम से कम 22 राज्यों को पिछले दस वर्षों से राजस्व घाटे का सामना करना पड़ रहा है। इस घाटे के लिए नई नई रियायतें, प्रोत्साहन, और प्रतिस्पर्धात्मक लोकवादी योजनाएं मुख्य रूप से जिम्मेदार हैं। निर्धनों और जरूरत मंदों को सब्सिडी देना अच्छी बात है, लेकिन सरकारी राहतों और रियायतों की भी एक सीमा होती है। सब्सिडियों पर अत्यधिक राशि खर्च कर देने से विकास कार्यों के लिए धन कहां से उपलब्ध होगा और अगर मिलेगा भी तो कम। उदाहरण के लिए एन.टी.आर. के आंध्र प्रदेश में दो रुपए किलो चावल बेचने से निर्माण कार्यों के व्यय-प्रतिशत में गिरावट आती चली गई। 1990-91 में यह राशि 3.5 प्रतिशत थी जो घटते घटते। 1995-96 में 2.2 प्रतिशत रह गई। इस तरह 1980 के दशक में उसकी विकास दर 5.5 प्रतिशत थी, जो 1990 के पूर्वार्ध में 4 प्रतिशत से भी नीचे चली गई। परिणाम यह हुआ कि अब आंध्र प्रदेश को चावल का बिक्री मूल्य बढ़ाने पर विवश होना पड़ा है। उधर पंजाब के ट्यूबवेलों के लिए मुफ्त बिजली और सिंचाई के लिए भी मुफ्त नहरी पानी देने से खजाना कम होते जाने का ही परिणाम है कि पंजाब केंद्रीय टैक्सों में राज्यों की हिस्सेदारी बढ़ा कर 29 प्रतिशत करने का आग्रह कर रहा है। लेकिन जब केंद्र सब्सिडियां कम कर टैक्सों आदि के रूप में संसाधन जुटाने का प्रयास करता है तो राज्य आम लोगों की सस्ती वाहवाही लूटने

और अपनी लोकप्रियता को ग्रहण न लगने देने के केंद्र के विरुद्ध बगावत का झंडा उठा लेते हैं।

हालांकि सब्सिडी का रोग वट वृक्ष की तरह बहुआयामी रूप ले चुका है। तो भी इसे देर-सवेर हल तो करना ही होगा। अगर हल करना एक दुस्साध्य अथवा असाध्य कार्य है तो भी कम से कम इसकी भीषणता कम करने के उपाय तो करने ही होंगे। पूर्व वित्त मंत्री डॉ. मनमोहन सिंह का कहना है कि राजकोषीय घाटा कम करने के लिए ब्जाय का बढ़ता बोझ हल्का करना, निजीकरण में तेजी लाना, सार्वजनिक व्यय-ढांचें का पुनर्गठन करना तथा गैर-जरूरी समझी जाने वाली सब्सिडियों को तुरंत कम करना आवश्यक है। समझदारी का पहला कदम यह हो सकता है कि अनावश्यक समझी जाने वाली सेवाओं पर क्रमिक रूप से सब्सिडियां हटाते हुए उनका बोझ धनाढ्यों, नौकरशाहों, बड़े भूपतियों तथा उन लोगों पर डाल दिया जाए जो बर्दाश्त कर सकने की ताकत रखते हों। सब्सिडियां हटाई जा सकने वाली सेवाओं में उच्चतर शिक्षा, सिंचाई और बिजली शामिल हैं। प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने पिछले वर्ष 19 फरवरी को राष्ट्रीय विकास परिषद की बैठक में बताया था कि धनी वर्ग के बच्चे उच्च शिक्षा के लिए जितनी फीस देते हैं उतनी या उससे अधिक राशि तो वे कोल्ड ड्रिंक्स (शीतल पेय पदार्थों) पर ही खर्च कर देते हैं। गांवों में बिजली पर सब्सिडी का अधिकतर लाभ धनाढ्यों को मिलता है। गरीब किसानों के पास खेतों में न तो ट्यूबवैल होते हैं और न घरों में बिजली। इसके अलावा अन्य गैर-जरूरी सब्सिडियों की लंबी सूची है। इन्हें चरणबद्ध तरीक से हटाए जाने से सरकारी राजस्व में वृद्धि होगी, मुद्रा का चलन कम होगा तथा चीजें स्वतः सस्ती हो जाएंगी। सरकार को इस बात का भी ख्याल रखना होगा कि जो सब्सिडी जिस लक्षित वर्ग के लिए हो, उसका लाभ उसे ही मिले। इसके लिए पारदर्शिता और निष्पक्षता का होना जरूरी है। सरकार पर ऋणों की लगभग 60 प्रतिशत राशि ब्याज के भुगतान में व्यय हो जाती है। वह सार्वजनिक ऋण कम कर ब्याज तथा खर्चों में कमी ला सकती है। कुछ वित्तीय समीक्षक तो चाहते हैं कि वर्तमान सार्वजनिक वितरण प्रणाली बिलकुल हटा कर प्रशासनिक व्यय और नौकरशाही तंत्र पर खर्च समाप्त कर दिया जाए। सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अंतर्गत वास्तविक लाभर्थियों की खोज करने की बजाय फूड स्टाम्प पद्धति द्वारा सीधे सहायता उपलब्ध करानी चाहिए। इस से सार्वजनिक वितरण प्रणाली में व्याप्त भ्रष्टाचार रोकने में भी मदद मिलेगी। केंद्रीय उपभोक्ता मामलों के और सार्वजनिक वितरण मत्री शांताकुमार के अनुसार गरीब नागरिक को सस्ते मूल्य पर अनाज दिलाने के लिए निर्धारित दस करोड़ रुपए ही सब्सिडी की 35 प्रतिशत रकम अन्य सरणियों में चली जाती है। यह खुला भ्रष्टाचार है। सरकार को यह भी चाहिए कि वह सब्सिडियों को एक एक कर कम या समाप्त करने के लिए साथ ही कर प्रणाली को व्यापक आधार दे और करदाताओं की संख्या बढ़ाती चली जाए। एक और बात। देश की पूंजी का 40 प्रतिशत सार्वजनिक क्षेत्र पर लगा हुआ है। विश्वव्यापी मंदी के साए में चल रहे सरकारी क्षेत्र के 236 उद्योगों में से 104 उद्योग रुग्णता के शिकार हैं। इनके लिए सब्सिडियां आक्सीजन या टानिक का काम नहीं कर रही। सरकार को चाहिए कि वह इनके कर्मचारियों के रोजगार की वैकल्पिक व्यवस्था कर कम से कम मृत सरोखी इकाइयां तो बंद कर दे क्योंकि सरकारी

क्षेत्र रोगी इकाइयों के इलाज का अस्तताल नहीं है। इन सफेद हाथियों के हट जाने से सरकार सुगमता से वित्तीय संकट से उबर सकेगी। बहरहाल सरकार जो भी कदम उठाए उसे यह पक्की पुखता व्यवस्था करनी होगी कि इससे गरीबों, श्रमिकों और कार्मिको की तलखियां न बढ़ें, उन्हें सामाजिक तथा आर्थिक न्याय मिले, पर साथ ही घाटे की अर्थव्यस्था और भुगतान संतुलन की समस्या पर अंकुश लगे तथा सरकारी खजाना भर जाए।

268, सत्यनिकेतन, मोतीबाग, नई दिल्ली-110021

कुछ लोगों को संदेह है कि आर्थिक सुधारों के लागू होने का वही परिणाम यहां भी होगा जो कि मैक्सिको का हुआ है। किंतु, ऐसे लोग निराशावादी हैं और उन्हें भारत एवं मैक्सिको की परिस्थितियों में अंतर का ज्ञान नहीं है। मैक्सिको में आर्थिक सुधारों की असफलता का कारण वहां राष्ट्रीय आय की मंद विकास दर एवं प्रतिवर्ष 45 प्रतिशत मुद्रास्फीति दर रहे हैं। यहां पर आर्थिक सुधारों की गति धीमी है पर मुद्रा प्रसार दर भी नियंत्रण से बाहर नहीं हैं।

—एस.आर. मदान

भारत के ज्ञानाधारित आर्थिक समाज का भविष्य

पूरन पाल

अतीत एवम् भविष्य के परिप्रेक्ष्य में वर्तमान का विश्लेषण करने पर आज जो परिदृश्य उभर कर समाने आ रहा है उसके अनुसार भविष्य ऐसे समाजों, समुदायों, राष्ट्रों का होगा जो ज्ञान के सर्जक एवम् अधिष्ठाता होंगे। भविष्य का बाजार ज्ञान का बाजार होगा। भविष्य में लड़ी जाने वाली लड़ाइयां परंपरागत हथियारो से न लड़ी जाकर सूचना और ज्ञान नामक अभिनव एवम् अत्यंत खर्चीले हथियारों से लड़ी जाएंगी, क्योंकि ईस्ट मैन, कोडक और पोलोराइड कंपनियों के बीच लड़ी गई पेटेण्ट अधिकार संबंधी एक लड़ाई हाल में लगभग करोड़ डॉलर पर जाकर तय हुई जो भारत के अनुसंधान और विकास-बजट का आधा है। अतः ज्ञानाधारित समाज में ज्ञान की शक्ति को समय रहते पहचानना होगा। बदलती परिस्थितियां वस्तुतः नाटकीय हैं। एक शताब्दी से भी अधिक समय से विश्व के सबसे धनी व्यक्ति तेल से जुड़े रहे जो उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में **'जॉन रॉकफेलर'** से प्रारम्भ हुई और बीसवीं शताब्दी के अंत में 'ब्रुनेई के सुल्तान' के साथ समाप्त हुई। लेकिन आज इतिहास में पहली बार विश्व का सबसे धनी व्यक्ति बिल गेट्स एक ज्ञान कर्मी है, जो यह सिद्ध करता है कि ज्ञान कुछेक की बपौती नहीं हो सकता। समाज में हरेक की ज्ञान तक पहुंच होनी चाहिए और प्रत्येक नागकि को ज्ञानकर्मी बनना चाहिए। जो राष्ट्र ज्ञान का समाज तैयार नहीं करेंगे वे भविष्य में अंधकार के गहरे गर्त में समा जाएंगे। ज्ञान, समाजों का संचालन करने वाले विश्व का नेतृत्व करेंगे। भारत के लिए नेतृत्व देने का यह एक अच्छा अवसर है बशर्ते कि ज्ञान समाज के सृजन का यह प्रक्रम गति और दृढ़ता के साथ लागू किया जाए।

यदि भारतीय समाज को ज्ञान समाज बनना है, तो यह आवश्यक है कि प्रत्येक भारतीय ज्ञानकर्मी बने। हमें यथासंभव व्यापक अर्थ में ज्ञान कार्यकर्त्ता की अवधारणा को स्वीकार करने की आवश्यकता है। ज्ञानकर्मी का अर्थ केवल वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकीविद् ही नहीं हैं। एक किसान भी ज्ञानकर्मी हो सकता है बशर्ते कि उसे उस मिट्टी की समझ हो जिस मिट्टी में वह अपना बीज बो रहा है। उसे यह जानकारी हो कि जमीन के सूक्ष्म पोषकतत्व क्या होते हैं, वे कैसे कार्य करते हैं और कीटनाशी दवा डालने पर क्या होता है? वह एक सूचना ग्राम में रहता हो जहां उसे छोटे और लघु स्तर पर मौसम के पूर्वानुमान की जानकारी का लाभ मिलता हो ताकि वह अन्य बातों के साथ-साथ अपनी खेती के कार्यकलापों को उसके अनुसार सुनिश्चित कर सके। यदि वह ऐसा करता है तो वह ज्ञान का निरंतर उपयोगकर्त्ता और ज्ञानकर्मी होगा।

ज्ञानकर्मी ग्राहक बाजार की स्थिति में परिवर्तन ला सकता है। भारत में हुई **श्वेत क्रांति** पर गर्व किया जा सकता है। इससे भारत गत वर्ष विश्व में सबसे बड़े दूध उत्पादक के रूप में उभरकर सामने आया। लेकिन हमें शुरू के दिनों को याद रखना चाहिए जब दूध

उत्पादक दूध में पानी मिलाया करते थे और ग्राहक खरीदने से पहले पतले दूध की गुणता की जांच नहीं कर पाते थे। दूध में मक्खन की मात्रा निर्धारण की सरल किटों द्वारा ग्राहक का ज्ञान बढ़ने पर ग्राहक गुणता पर जोर देने लगे और दूध उत्पादन की मात्रा और गुणता दोनों में वृद्धि हुई।

ज्ञान से सुसज्जित नागरिक **पर्यावरण, पारिस्थितिकी, आर्थिकी, समता और समाचरण** के बीच महत्वपूर्ण कड़ी को पहचान सकेंगे और इस प्रकार वे स्वार्थी समूहों द्वारा फैलाई गई गलत सूचना से भ्रमित नहीं होंगे। वे अपने ज्ञान का उपयोग कर अपने आप तय कर सकेंगे कि क्या गलत है और क्या सही। वे उन परियोजनाओं को रोकना नहीं चाहेंगे जिनसे आर्थिक विकास होता है, बल्कि उन्हें रोकना चाहेंगे जिनसे विनाश होता है। भविष्य में भारत का आर्थिक विकास समाज की नए ज्ञान की समझ पर बहुत कुछ निर्भर करेगा। हरित क्रांति के उपरांत अब हम लोगों को सदाबहार हरित क्रांति और पोषण क्रांति की आवश्यकता है। हमें इसी धरती से और अधिक अनाज पैदा करना होगा। केवल नया ज्ञान ही ऐसा कर सकता है। आधुनिक जैव प्रौद्योगिकी द्वारा आनुवंशिक रूप से तैयार की गई फसलें यहां महत्वपूर्ण विकल्प बनेंगी। लेकिन समाज में जानकारी की कमी से यह ज्ञान खेतों तक पहुंचने में बाधित हो सकता है। अतः आज ज्ञानाधारित समाज की संरचना की महती आवश्यकता है।

ज्ञानाधारित समाज में ज्ञानकर्मी अलग-अलग कार्य पूरा करेंगे। उनमें से कुछ ज्ञान का सर्जन करेंगे, कुछ ज्ञान प्राप्त करेंगे, कुछ ज्ञान को अपनाएंगे और कुछ ज्ञान के बारे में बताएंगे। ज्ञान पैदा करने के लिए शुरूआती उपक्रम की आवश्यकता होगी और यह सृजनात्मकता की नींव पर खड़ा होगा। भारत परंपरागत रूप से इसमें अच्छा रहा है। ज्ञान की प्राप्ति स्वदेश में ज्ञान के विकास के साथ-साथ विदेशों से भी की जा सकेगी। ज्ञान के अपनाने से विश्वव्यापी आधारभूत शिक्षा, जीवनभर सीखने के अवसर पैदा करने, विज्ञान और प्रौद्योगिकी में तीसरी पीढ़ी की शिक्षा को समर्थन इत्यादि सुनिश्चित करने की आवश्यकता होगी। सच्चे मायने में ज्ञान-समाजों के निर्माण के लिए लड़कियों और दूसरे वंचित वर्गों तक शिक्षा को ले जाना आवश्यक होगा। विकास के लिए शिक्षा आवश्यक होगी, लेकिन अन्वेषण और ज्ञान के प्रति खुलेपन के बिना शिक्षा आर्थिक विकास नहीं कर पाएगी। सोवियत संघ में लगभग शत-प्रतिशत साक्षरता थी लेकिन व्यापार जगत में अन्वेषण के प्रति कई बाधाओं के कारण उसका आर्थिक पतन हो गया।

लोगों तक ज्ञान पहुंचाने के लिए अन्य बातों के साथ-साथ प्रतियोगात्मक पर्यावरण के द्वारा आधुनिक सूचना और संचार प्रौद्योगिकी के रचनात्मक उपयोग की भी आवश्यकता पड़ेगी। लेकिन साथ ही यह भी सुनिश्चित करना होगा कि इससे ज्ञान की पहुंच गरीब एवम् साधनहीन तक हो सके। सूचना प्रौद्योगिकी में क्रांति से ज्ञान संचार के प्रक्रम को स्फूर्ति प्राप्त होगी। पिछले 20 वर्षों में एक किलोमीटर से अधिक की दूरी के लिए सूचना के 10 लाख बिट्स के संचार करने पर 20 डॉलर से कुछ अधिक का व्यय अब घटकर कुछ सेंटों में सिकुड़

गया है। कहना न होगा कि इस व्यय का ग्राफ बनाया जाए तो इसका वक्र **"लोगैरिथमिक"** बनता है अर्थात् लागत में और भी कमी आएगी सन् 2020 में विश्व की आधी जनसंख्या इंटरनेट से जुड़ जाएगी, तब शहरों में रहने वाले सिटिजनों या नागरिकों की जगह नेटवर्क से जुडे **"नेटिजेन"** अर्थात् **"जालरिक"** की बातें की जाएंगी। सूचना और ज्ञान तक पहुंचने के संसाधनों एवम् साधनों में बदलाव आएगा।

प्रौद्योगिकी के इस युग में उत्पादन के परंपरागत कारक-धरती, श्रम और पूंजी-कम महत्वपूर्ण हो गए हैं। अर्थशास्त्रियों ने इसकी व्याख्या "उत्पादन की सीमाओं" के प्रसार के रूप में की है। प्रौद्योगिकी का स्रोत विज्ञान में है, जिसकी जड़ें ज्ञान में हैं। यह कल्पना सफलता से की जा सकती है कि आगे चलकर उद्योग ज्ञान के उद्योग होंगे और तब जोर भौतिक और दृष्टव्य पूंजियों पर नहीं बल्कि अगोचर ज्ञान की पूंजियों पर होगा। किसी उद्योग की बौद्धिक पूंजी से उसका स्तर और प्रतिस्पर्धी शक्ति तय होगी। ऐसे में उद्योग उनके हाथों से निकलकर उन लागों की ओर चला जाएगा जो प्रत्येक चरण पर ज्ञान का उपयोग करेंगे। यह आश्चर्यजनक है कि कारखानों की मशीनों जैसी भौतिक संपदा कम महत्वपूर्ण होती जा रही हैं? कुछ समय पहले तक पूंजी भी दुर्लभ वस्तु होती थी और प्रतिस्पर्धात्मक ज्ञान के लिए इसका उपयोग किया जाता है, लेकिन आज भूमंडलीकरण एवम् उदारीकरण के कारण दुनिया की कम्पनियों को बहुत सस्ते दरों पर वित्त उपलब्ध हो जाता है, यानी पूंजी भी अब कोई दुर्लभ वस्तु नहीं रह गई है। वस्तुतः अब बौद्धिक सम्पदा जैसी अगोचर वस्तुएं कम्पनियों को प्रतियोगितात्मक रूप से आगे बढ़ने का अवसर दे रही हैं।

अगोचर संपदा की प्रकृति एक उद्योग से दूसरे उद्योग में भिन्न होगी लेकिन उनकी कई बातें एक जैसी होंगी, जैसे अनुसंधान और विकास, पेटेण्ट स्वामित्व वाली प्रौद्योगिकयां, आंकड़ा-आधार, ब्रैंड और यहां तक कि आपसी संबंध, व्यक्ति और ऐसी ही दूसरी कई बातें। अगोचर ज्ञान संपदा के प्रभुत्व का अर्थ यह होगा कि हमें प्रबंध संरचनाओं में मुख्य परिवर्तन करने होंगे। संपूर्ण विश्व में प्रबंधन को एक खास सांचे में ढाला जाता है। जो सर्वोच्च प्रबंधकर्ता होता है वह सबसे बड़ा कूटनीतिज्ञ होता है और संसाधनों के आवंटन तय करता है और नीचे का प्रबंधकर्ता केवल इसे लागू करता है और कूटनीति का पालन कराता है। अप्रकट (अगोचर) संपदा के प्रभुत्व के साथ नए मॉडल बनाने होंगे। सर्वोच्च प्रबंधकर्ता केवल ऊपरी उद्देश्य और पर्यावरण का सृजन करेगा जिसमें लोग काम करने को स्वतंत्र होंगे। इसका अर्थ यह हुआ कि आगे चलकर जोर संगठन के उद्देश्य को स्पष्ट करने, सही प्रक्रम तय करने और सही लोगों को सही जगह प्रतिष्ठित करने और उनसे परिणाम प्राप्त करने के लिए उन्हें शक्ति एवम् अवसर प्रदान करने की ओर होगा।

उद्योग को अब लीक से हटकर सोचना होगा। उदाहरण के लिए ग्राहक के संतोष के फलस्वरूप पैदा होने वाली ग्राहक की निष्ठा एवम् कर्मचारियों की **कटिबद्धता** महत्वपूर्ण अप्रकट संपदाएं होंगी। पूंजी लगाने वाला केवल गोचर संपदा की ओर ध्यान नहीं देगा बल्कि ग्राहक के संतोष सूचकांक का आकलन करना चाहेगा अथवा किसी फर्म के कर्मचारियों के

संतोष-सूचकांक का मूल्यांकन करेगा। ऐसी अप्रकट संपदाएं कंपनियों की वार्षिक रिपोर्टों का केंद्र बिंदु बन सकती हैं।

आज ऋण देने के लिए प्रतिभूति या जमानत के मापदण्ड बदल रहे हैं। कई देश बौद्धिक सम्पदा के आधार पर ऋण देने लगे हैं। जापान इसका ज्वलंत उदाहरण है। जापान आज ऋण प्राप्त करने के लिए भौतिक सम्पदा पर जोर नहीं दे रहा है। यह तथ्य इस विश्वास को दृढ़ता प्रदान करने वाला है कि भविष्य में जिन कम्पनियों के पास अगोचर सम्पदा होगी उनके लिए लेखा-जोखा के मापदण्ड बदल जाएंगे? अगोचर संपदाओं का मूल्यांकन किया जाएगा और औपचारिक रूप से वे फर्म के तुलन-पत्र का हिस्सा बन सकेंगी। स्टॉक अगोचर संपदाओं को वास्तविक संपदाओं के रूप में स्वीकार कर सकेंगे, विशेषतः उस समय जब लेखा-जोखा के मापदंड ऐसा न करते हों? ऋण देने वाले जमा राशियों पर उधार देने के लिए जोर न देकर ज्ञान की संपदाओं पर ऋण देने को तैयार होंगे?

भारत जैसे नकदी की कमी वाले लेकिन बौद्धिक पूंजी से भरपूर देश के लिए ज्ञानाधारित उद्योग का उभरना एक अच्छा समाचार है। लेकिन ज्ञान के उद्योग को पूरी क्षमता से चलाने के लिए **आक्रामक और दूरदृष्टि वाले नीतिगत ढांचे** की **सृजनात्मक योजना** की **दिलेरी और जोखिम** लेने की आवश्यकता होती है। यह स्वीकारना होगा कि सॉफ्टवेयर विकास, भेषज उद्योग, जैव प्रौद्योगिकी, इंजीनियरी सेवाएं इत्यादि जैसे ज्ञान वाले उद्योग बहुत ही प्रतिस्पर्धी वातावरण में कार्य करते हैं और उन्हें गतिशील बाजार अवस्थाओं में तेज गति की भारी मांग की स्थिति में काम करना होता है। ऐसे उद्योगों के लिए उच्च कार्य संचालन क्षमता और कार्य फलन में लचीलापन महत्वपूर्ण है। इसलिए, सरकार की नीतियां इस दिशा में अनुकूल होनी चाहिए। उदाहरण के लिए ज्ञान-कर्मियों की भर्ती करने वाली ज्ञान आधारित कंपनियों की इन दिनों काफी मांग है और उनमें से कुछ को विश्व स्तर पर क्षति-पूर्ति की आवश्यकता हो सकती है जिसके लिए धन के सृजन और बटवारे की योजनाएं होनी चाहिए। ऐसे उद्योगों में नियोजकों को स्टॉक की वैकल्पिक योजनाएं उपलब्ध कराए जाने की आवश्यकता होगी। भारत की अभी प्रौद्योगिकी वित्त प्रदान करने वाले ऐसे क्रियाकलाप आरंभ करने की आवश्यकता है जो जोखिम उठा सकते हों और जो ज्ञान के उद्योगों की आवश्यकताएं पूरी कर सकते हों। आज उपयुक्त नियामक कार्य ढांचा स्थापित करने की सर्वाधिक आवश्यकता है। यदि ज्ञान वाले उद्योगों में ज्ञान कर्मियों के काम करने के पर्यावरण पर विचार किया जाए तो भारत में ये श्रम कानून अप्रासंगिक हो चुके हैं। उदहारण के लिए दुकान और वाणिज्यिक प्रतिष्ठान अधिनियम 1961 और तत्संबंधी नियमों में किसी भी दिन नौ घंटे से अधिक और सप्ताह में 48 घंटे से अधिक काम न करने की शर्त है जबकि ज्ञान के उद्योगों में विश्व के ग्राहकों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए लचीले कार्य समयों की नितांत आवश्यकता है। आज यह स्वीकार करने की आवश्यकता है कि ज्ञान बहुल उद्योगों में ज्ञान के कार्य के लिए शारीरिक श्रम करने वाले लोगों पर लागू कानूनों को ज्ञान कर्मियों पर लादकर काम नहीं चलाया जा सकता। निर्यात बहुल ज्ञान आधारित उद्योगों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए विदेशी धन विनिमय के नियमों में भी कई परिवर्तन

करने की आवश्यकता होगी।

आज यह कहा और माना जाने लगा है कि ज्ञान उत्तर से दक्षिण की ओर बहता है और उपयोगी ज्ञान धनार्जन करने वाला होता है। आज कोई भी देश, राष्ट्र, समाज, कंपनी, निगमादि बिना कीमत प्राप्त किए किसी अन्य को अपने प्रतिस्पर्धात्मक ज्ञान का लाभ नहीं देते। भारतीय अर्थ व्यवस्था को मजबूती प्रदान करने के लिए हमें अपनी पुरानी नीति 'आयात नीति' को बदलना होगा। हमें आयातित वस्तु को केवल खरीदते रहने के लिए आयातित नहीं करना होगा वरन् उसमें बेहतरी लाने, उसे और उपयोगी तथा लागत प्रभावी बनाने के लिए यथावश्यकता खरीदना होगा। हालांकि 'उत्पादन अर्थात किसी वस्तु का सर्जन अच्छी बात होती है पर कोई भी व्यक्ति सब कुछ नहीं बना सकता। साथ ही अर्थव्यवस्था की उच्चता पर पहुंचने के लिए यह आवश्यक है कि इसके लिए विकल्प के मार्ग ढूंढे जाएं। इसके लिए यह समीचीन होगा कि भारत जैसे अवसरंचना तथा आधारभूत सुविधाओं के अभाव यथा पूंजी-मशीनरी, प्रौद्योगिकी आदि की कमी वाले देश में ज्ञान के सभी केंद्रों, राष्ट्रीय अनुसंधानशालाओं तथा उत्पादकों एवम् उद्योगों के बीच ज्ञानाधारित मजबूत जालतंत्र स्थापित किया जाए।

अब प्रश्न यह उठता है कि इस ज्ञानाधारित जालतंत्र का सर्जन कैसे किया जाए। वस्तुतः उद्योगों को चाहिए कि वे सरकारी निधि से चलने वाले अनुसंधान व विकास संस्थाओं का उपयोग विचार व नई संकल्पनाओं के जनक के रूप में करें। उद्योग इन अनुसंधान संस्थानों को 'सुपर बाजार' या 'केंद्रीय भंडार' न मानें जहां अन्य वस्तुओं की भांति प्रौद्योगिकियां बिकने के लिए 'शेल्फ' पर रखी मिलेंगी। वरन् इसके विपरीत उद्योगों को एक भागीदार की भूमिका निभानी चाहिए क्योंकि उनके पास तकनीकी, वित्तीय और विपणन शक्तियां हैं जो अनुसंधानशालाओं के इन नए विचारों को बाजार तक अर्थात् आम आदमी के पास ले जा सकती हैं। अनुसंधान व विकास संस्थाओं से बाहर निकलने वाले उत्पाद ज्ञान व सूचना से जुड़े पैकेज युक्त होते हैं जिन्हें माल और सेवाओं के रूप में रूपान्तरित करने का काम उद्योगों का है। रूपान्तरण के बाद ऐसे उत्पाद बेचने योग्य बन जाते हैं जिनमें धनार्जन किया जा सकता है।

उद्योगों को यह अनुभव एवम् स्वीकार करना चाहिए कि उपयुक्त ज्ञान का श्रेष्ठतम उपयोग करके ही प्रतिस्पर्धी लाभ कमाया जा सकता है। इस प्रकार भारत आर्थिक लाभों के वैश्विक नेटवर्क में प्रमुख स्थान प्राप्त कर सकता है। आज वाणिज्यीकरण की संकल्पना अंतरराष्ट्रीय सीमाओं को पार कर रही हैं। उदाहरण के लिए आज अनेक बहुराष्ट्रीय कंपनियां सीएसआइआर अर्थात् वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद के साथ भागीदारी कर रही हैं। प्रमुख हैं—'मोबिल'; 'जंनरल इलेक्ट्रिक'; 'ड्यूपॉट'; 'बोईंग' इत्यादि। भारत के लिए अब पश्चिम से निरंतर ज्ञान प्राप्त करने के विपरीत स्वयं उन्हें ज्ञान देने के अवसर पैदा हो रहे हैं जो उसके अतीत में ज्ञान-विज्ञान एवम् प्रौद्योगिकी के शिखर पर होने की पुष्टि करते हैं।

विश्व की कई कम्पनियां प्रौद्योगिकी विकास, आत्मनिर्भरता का प्रयास करना बुद्धिमानी नहीं समझतीं। प्रौद्योगिकी का दुबारा अन्वेषण करने की अपेक्षा उन्हें दूसरों से प्राप्त करने का विचार जोर पकड़ता जा रहा है। वैश्विक आविष्कार नीति के रूप में विश्व की कई कंपनियां नए विचारों और पेटेण्टों के लिए आगे आ रही हैं। इन कम्पनियों को विश्वास है कि तकनीकी रूप से मजबूत बनने के लिए विश्व के प्रमुख संगठनों के साथ ज्ञान के नेटवर्क का संबंध बनाना सबसे अच्छा और मजबूत रास्ता है। आधुनिक सूचना प्रौद्योगिकी द्वारा वैश्विक सह-संबंध बनाने के इस युग में "वर्चुअल लेबोरेट्री" की संकल्पना जोर पकड़ती जा रही है। ये वैश्विक नेटवर्क विश्व के किसी भी भाग में प्रयोगशालाओं के संचालन और वास्तविक समय प्रबंधन की अनुमति दे रही हैं। इस प्रकार कंपनियां वैश्विक ज्ञान संसाधन का उपयोग कर और विश्व की समय-घड़ी के साथ कदम मिलाकर प्रतिस्पर्धी लाभ प्राप्त करने का कार्य कर रही हैं। फलतः मौलिक कौशल जोर पकड़ता जा रहा है और उच्च प्रौद्योगिकी वाली कंपनियां ये पूछ रही हैं कि किस प्रकार के कौशल, कार्यक्षमताएं और प्रौद्योगिकियां उन्हें तैयार करनी चाहिए? अब स्पष्ट दिखाई दे रहा है कि इन कंपनियों के साथ प्रतियोगितात्मक बढ़त की विशेषताओं पर समझदारीपूर्वक जोर डालकर भारत के लिए वैश्विक ज्ञान का मंच बनने के पर्याप्त अवसर हैं। निश्चय ही ज्ञान आधारित प्रतियोगिता में बौद्धिक संपदा अधिकार एक महत्वपूर्ण हथियार के रूप में उभरेगा। इस मामले में भारत शेष दुनिया से काफी पीछे है और बौद्धिक सम्पदा अधिकार संबंधी निरक्षरता से हमें बहुत हानि होगी। बौद्धिक संपदा अधिकार की जनन संबंधी प्रबल प्रणालियों का समावेशन, उसकी पकड़, प्रलेखन, मानांकन, संरक्षण और दोहन के लिए बहुत जोर लगाने की आवश्यकता होगी। विशेषतः पेटेण्टों के मुद्दों के चलते व्यापक स्तर पर राष्ट्रीय रुचि और बहस शुरू हो गई है। इस विशिष्ट क्षेत्र पर ध्यान देना उपयोगी हो सकता है। एक कमजोर आधारभूत संरचना, आधी-अधूरी बौद्धिक संरचना, जन जागरूकता का अभाव और सरकारी नीतियों को लागू करने में देरी के कारण आज भारत को हानि हो रही है। पेटेण्ट दिए जाने की मौलिक शर्तें हैं: अन्वेषण में अनूठापन, स्पष्टता और उपयोगिता। आज कितने भारतीय अनुसंधान ऐसे हैं जो आज ही इन मौलिक शर्तों में से कुछ भी पूरा करते हैं? भारतीय अनुसंधान और विकास संस्थाओं और औद्योगिक फर्मों में से कई ने अभी तक नकल-अनुसंधान और उलट इंजीनियरी पर ही ध्यान दिया है। हमारे सामने सबसे बड़ी चुनौती अपनी अन्वेषणात्मक अनुसंधान विचारधारा एवम् आगामी इंजीनियरी को समय के साथ बदलने की है।

आज बौद्धिक सम्पदा अधिकार की रक्षा के लिए जनशक्ति योजना को प्राथमिकता देने की आवश्यकता है। बौद्धिक पेटेण्ट अधिकार भारत के विश्वविद्यालयों में कानून की पढ़ाई में एक आवश्यकता विषय बना दिया जाना चाहिए। इंजीनियरी और प्रौद्योगिकी की धाराओं से आनेवाले स्नातकों को बौद्धिक संपदा अधिकार के बारे में कुछ भी पता नहीं है। लेकिन, तब भी इन्ही युवा व्यक्तियों को ज्ञान के बाजार से उभरते हुए युद्धों को लड़ना ही होगा। अनेक पेटेण्ट ट्रेनिंग प्रशिक्षण संस्थानों की स्थापित किए जाने की आवश्यकता है। चीन ने अब पांच हजार पेटेण्ड प्रशिक्षण संस्थान स्थापित कर लिए हैं। पेटेण्ट सूचना के सही-सही प्रबंध के लिए सूचना सृजनकारी केंद्र सूचना संबंधी प्रलेख लिखने वालों यानी प्रलेखकों और

उनमें सुधार करने वालों, सूचना उपयोगकर्त्ताओं, बौद्धिक संपदा अधिकार विशेषज्ञों और सूचना प्रौद्योगिकी विशेषज्ञों को सुसंगठित ढंग से एक साथ कार्य करने की आवश्यकता होगी। आज उन सिद्धांतों को विकसित करने की आवश्यकता है जिनमें यह तय किया जा सके कि कब ज्ञान सार्वजनिक रूप से उपलब्ध कराया जाए और कब इसे निजी बनाए रखा जाए? जनसामान्य की भलाई के लिए ऐसी एजेंसियां स्थापित किए जाने की आवश्यकता है। साथ ही भूमि अधिग्रहण की कार्रवाई में उन सिद्धांतों का उपयोग किया जाना चाहिए, लेकिन इसके लिए निश्चित कानूनी और नीतिगत ढांचे की आवश्यकता होगी।

भारत में ज्ञान आधारित उद्योग जैसे सूचना प्रौद्योगिकी उद्योग, भेषज उद्योग, इत्यादि को नए बौद्धिक सम्पदा अधिकार क्षेत्र में नई चुनौतियों का सामना करना होगा। सूचना प्रौद्योगिकी उद्योग ने अब तक प्रभावशाली वृद्धि दर बनाए रखी है और हम लोग अगले इस वर्षों में सॉफ्टवेयर के निर्यात को दो सौ करोड़ डॉलर से बढ़ कर पांच हजार करोड़ डॉलर कर सूचना प्रौद्योगिकी का 'सुपर पावर" बनाने का स्वप्न संजोते हैं। यदि यह होना है तो, इसके बाद हम लोगों को भौतिक खरीददारी की मात्रा घटानी होगी और अनूठी सूचना प्रौद्योगिकी की ओर जाना होगा जिसके लिए बौद्धिक संपदा संरक्षण की आवश्यकता होगी। भारतीय सूचना प्रौद्योगिकी उद्योग ने अब तक इसकी परवाह नहीं की है लेकिन उसे इस पहलू पर और अधिक ध्यान देने की आवश्यकता होगी। यही हाल हमारे भेषज उद्योग का है। 1950 के प्रारंभ में नुस्खों के आयात से छुटकारा पाकर आज हमारा भेषज उद्योग एक संपूर्ण निर्यातक बन चुका है। हमें यह स्वीकार करने की आवश्यकता है कि बहुत शीघ्र ही विश्वव्यापी प्रतियागिता की गर्म हवा के झुलसाते झोंके इसे महसूस होंगे वैश्विक भेषक उद्योग एक ज्ञान उद्योग है और उभरता हुआ भारतीय भेषज उद्योग इसका अपवाद नहीं। अब तक यह उद्योग बिना नए भेषज अणुओं के विकास के जीवित रह रहा है। निश्चत ही पिछले 40 वर्षों में केलव 14 नए भेषज अणु विकसित किए गए हैं जिनमें से 11 सी.ए.आइ.आर की प्रयोगशालाओं की देन हैं।

परंपरागत ज्ञान और जैविक विविधता पर आधारित अर्थशास्त्र के मुद्दे बहुत जटिल हैं। भारत में विश्व की लगभग 8 प्रतिशत जैव विविधता पाई जाती है और यह परंपरागत ज्ञान के सबसे बड़े भंडारों में से एक है। इसमें जड़ी-बूटी आधारित नुस्खों, औषधियों और उत्पादों के क्षेत्र में विश्व व्यापार के एक बड़े खिलाड़ी बनने के सभी गुण हैं। "एक्सिम बैंक" द्वारा किए गए एक आकलन के अनुसार औषधीय पौधों से संबंधित व्यापार का अंतर्राष्ट्रीय बाजार प्रतिवर्ष छः हजार डॉलर है, जो प्रतिवर्ष 7 प्रतिशत की दर से बढ़ रहा है। इस बाजार में भारत की हिस्सेदारी केवल 2.5 प्रतिशत है।

स्थानीय समुदायों और व्यक्तियों के पास अपनी सम्पदा का संरक्षण करने का ज्ञान एवम् साधन नहीं होता है। ऐसे समुदायों के पास उनके वनस्पति और जीव-जंतुओं के बारे में ज्ञान का भण्डार होता है। उन्हें उनके स्वभाव, निवास स्थान और उनके ऋतु आधारित व्यवहार और ऐसी बातों का पता होता है और यह तर्कसंगत भी है। यह स्वाभाविक न्याय

भी है कि उन्हें जैव विविधता के अध्ययन, निष्कर्षण और वाणिज्यीकरण से संबंधित सभी मामलों में अधिकाधिक कहने का अवसर दिया जाना चाहिए।

आज कहा जा रहा है कि अगली शताब्दी एशिया की होगी। विश्वास किया जा सकता है कि भारत को नेतृत्व का अवसर मिलेगा। संभवतः अपनी महान बौद्धिक पूंजी और ज्ञान के अर्थशास्त्र के सिद्धांत व व्यवहार पर पकड़ के कारण भारत एक आर्थिक शक्ति के रूप में उभरेगा। करोड़ों भारतीय लोगों की सृजनात्मक क्षमता अपने ऊपर स्वयं लादी गई मानसिक बेड़ियों के बंधनों से मुक्त होगी। भारत को अपने मूल्यों और आदर्शों पर आधारित विलक्षण ज्ञान-समाज होगा और वह अमर्त्य सेन के 'नोबेल पुरस्कार' की तरह 'ज्ञान-अर्थशास्त्र' के क्षेत्र में भी ऐसे ही नोबेल पुरस्कार प्राप्त कर सकेगा।

वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद, अनुसंधान भवन, रफी मार्ग, नई दिल्ली

भारत को विश्वमंडलीय अर्थव्यवस्था के साथ मिलने के लिए सावधानीपूर्वक और धीरे–धीरे आगे बढ़ना चाहिए और ऐसा करते समय उसे इस प्रकार आचरण करना चाहिए जो उसके राष्ट्रीय हित में हो...। उदारीकरण और आर्थिक सुधार की प्रक्रिया के लिए व्यापक राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रखते हुए उपयुक्त नीति बनाए जाने की आवश्यकता है और उसे तर्कसंगत और चरणबद्ध ढंग से लागू किया जाना चाहिए।

–भा.ज.पा का चुनाव घोषणा पत्र

प्रबंध में कार्मिकों की भागीदारी

अमरेश्वर मिश्र

ठीक ही कहा गया है कि प्रबंधन से ही संस्थान की छवि निखरती है। इसकी कार्य शैली, कार्यप्रणाली, कार्य क्षमता, कार्य दक्षता, इस बात का संकेत देती है कि संस्थान सजग, एवं ग्राहकोन्मुखी है या नहीं। वह प्रतिस्पर्धा की दौर में टिक सकता है या नहीं। वह संस्थान के मूल्यों, आदर्शों एवं लक्ष्यों को प्राप्त कर सकता है अथवा नहीं। वह अपना अलग स्वतंत्र अस्तित्व बनाकर बाजार में व्यापार कर सकता है या नहीं। वह अपनी साख बरकरार रखते हुए ग्राहक को संतुष्टि दे सकता है या नहीं। अतएवं प्रबंधतंत्र ही संस्थान का मूलतंत्र है।

परंतु आज के वातावरण में किसी भी संस्थान की सफलता वहां के कार्मिकों की संतुष्टि से देखी जाती है। इसीलिए कहा गया है कि प्रबंधन को कार्मिक संकेंद्रित होना चाहिए और उसकी भागीदारी प्रबंध में रखी जानी चाहिए ताकि संस्थान का कार्य सकारात्मक व सुचारूरूप से चलता रहे। कार्मिक संस्था की प्रगति के लिए काम करें, उसकी लाभप्रदाता बढाएं, उचित औद्योगिक वातावरण एवं कार्य संस्कृति को विकसित करें, उसे उत्कृष्टता की ओर ले जाएं और सतत रूप से उसकी छवि में अभिवृद्धि करते रहें।

कार्मिक संस्थान के महत्वपूर्ण घटक हैं। उनकी भागीदारी संस्थान में लचीलापन एवं अनुकूल अनुक्रिया देती है। इससे कार्मिकों में उत्तरदायित्वों एवं जिम्मेदारियों का निर्वाह करने की ललक पैदा होती है। उनमें आत्मीयता एवं विश्वसनीयता की भावना आती है। विश्वसनीयता आत्मीयता से आती है। इसी विश्वसनीयता एवं आत्मीयता से संस्थान मजबूत होता है, फूलता एवं फलता है, घनीभूत एवं प्रभावपूर्ण होता है जिसके श्रेष्ठ परिणाम शीर्घ ही मिलने लग जाते हैं।

मधुर एवं सौहार्दपूर्ण औद्योगिक संबंध बनाए रखना संस्थान का गुरुतर दायित्व है। यह तभी संभव है जब कार्मिकों की प्रबंध में भागीदारी हो। इसी भागीदारी से कार्मिकों में संस्थान के प्रति प्रतिबद्धता एवं तन्मयता आती है। ये कार्मिक ही हैं जो पद्धतियों व प्रक्रियाओं को पूर्ण होने देते हैं और उन्हें प्रभावी बनाते हैं। वे ग्राहकों से संपर्क रखते हैं, चर्चा करते हैं। उनकी आवश्यकताओं को उत्पादों व सेवाओं के माध्यम से अंजाम देते हैं। प्रक्रियाओं में सुधार लाते हैं और उन्हें प्रबंधित करते हैं। आपूर्ति कर्त्ताओं के साथ काम करते हैं। नाप-जोख कर उपयोग करते हैं और उसे निर्धारित करते हैं। अपनी प्रक्रियाओं का दूसरी प्रक्रियाओं के साथ तुलनात्मक अध्ययन करते हैं। समाज के लिए योगदान देते हैं और वे सब कार्य निष्पादित करते हैं जो संस्थान को सफल बनाने में सहायक होते हैं। अतः कार्मिक ही संस्थान की महत्वपूर्ण सम्पत्ति हैं।

भागीदारी से कार्मिक संस्थान को अपना परिवार समझते हैं। संस्थान के निर्णय, निदेश एवं अनुदेश को अपना निर्णय, निदेश एवं अनुदेश समझते हैं। और वे उसी रूप में उसे संवर्धित एवं विकसित करते हैं। अपनी दक्षता एवं क्षमता का पूर्ण उपयोग करते हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि संस्थान भी अपेक्षा कर सकता है कि कार्मिक अच्छी तरह से कार्य करें तथा उद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्रयास करें। इससे संस्थान को फीड बैक प्राप्त होता है। कार्मिकों की क्या मनःस्थिति है वे क्या सोचते हैं और विभिन्न मुद्दों से कितना सरोकार रखते हैं।

भागीदारी से संस्थान को बहुत सी जानकारियां मिलती हैं जो बहुत मूल्यवान होती हैं एवं जिससे प्रबंध की शीर्षस्थ शैली में सोच-विचार का दौर चलने लगता है तथा उनके नेतृत्व शैली में सुधार में भी मदद मिलती है। आगे की कार्य-योजनाओं को मूर्त्तरूप देने में भी मदद मिलती है। प्रबंधतंत्र को ऐसे नए-नए उपाय ढूंढ़ने पड़ते हैं जिससे विभिन्न प्रकार के संस्थानों के आचरण से संबधित अद्यतन जानकारी अपने कार्मिकों को दे पाते हैं जिससे आकर्षक वेतन के अलावा अनेक कार्मिक कल्याण योजनाएं समय-समय पर पदोन्नति देने के साथ-साथ जिम्मेदारियां दिलाने के प्रावधान भी सम्मिलित होते हैं।

कार्मिकों की भागीदारी कई तरह प्राप्त की जा सकती है। उदाहरण के लिए उन्हें प्रबंध मण्डल का सदस्य बनाया जा सकता है। कई संस्थानों में इसी तरह की परम्परा कई वर्षों से चली आ रही है। इससे उन्हें दूरदृष्टि एवं विशाल परिप्रेक्ष्य प्राप्त होता है। वे प्रबंधकों के दृष्टिकोण को भली-भांति समझ पाते हैं। उनमें संस्थान के उद्देश्यों के प्रति अपनत्व की भावना उत्पन्न होती हैं। इससे विभिन्न योजनाओं को कार्यान्वित करने में उनकी सीधी भागीदारी होती है। चूंकि वे मूल रूप में पैदा होनेवाली समस्याओं को अच्छी तरह जानते हैं। अतः वे कार्यान्वयन में इन समस्याओं के समाधान भी प्रबंधकों को सुझाते हैं। आपस में विचार विर्मश कर उसके व्यावहारिक नुसखे निकालने में मदद करते हैं। फलस्वरूप संस्थान की कार्यशैली में कहीं भी रुकावट नहीं आती है और वह निरंतर अवाधगति से लक्ष्यों और उद्देश्यों की ओर बढ़ती रहती है। इस संदर्भ में टाटा उद्योग की विभिन्न इकाइयों पर गौर कर सकते हैं। ये इकाईयां इस बात को परिलक्षित करती हैं कि कार्मिकों की भागीदारी किसी भी संस्थान के लिए कितनी महत्वपूर्ण है। वस्तुतः इन इकाइयों के सर्वांगीण विकास का एक मुख्य कारण यह है कि यहां पर कार्मिकों की भागीदारी की संस्कृति को फलन-फूलने दिया गया है। लेकिन इसके साथ ही साथ कार्मिकों की प्रबंध में भागीदारी के कुछ नकारात्मक पहलू भी है जैसे कभी-कभी प्रबंध समिति की बैठक में कार्मिक प्रतिनिधि अपनी धाक जमाने के लिए बेवजह अपने मनमाने विचारों को लादना चाहते हैं। प्रबंध समिति की बैठक में गतिरोध पैदा करते हैं, फलस्वरूप वातावरण दूषित हो जाता है। लेकिन इससे उनकी भागीदारी के महत्व को न्यून नहीं किया जा सकता है। ऐसी परिस्थितियां नहीं आए इसके तरीके प्रबंधतंत्र को ढूंढ़ने चाहिए और यदि किसी कारणवश आ भी जाए तो उसे दक्षतापूर्वक हल करना चाहिए। इससे कार्मिकों के बीच प्रबंध की सही तस्वीर भी उभरेगी तथा आलोचना व समालोचना से वस्तुस्थिति भी सामने आएगी। कुछ लोगों का सोचना है कि बैंकों में

कार्मिकों की भागीदारी के कारण ही इनकी कार्यप्रणाली एवं ग्राहक सेवा में गिरावट आई है। उनका यह भी मानना है कि कार्मिकों की युनियनों को बहुत अधिक मान्यता दिए जाने के कारण ही बैंकों की कार्यप्रणाली एवं कार्यशैली में ह्रास हुआ है। किंतु यह विचार ठीक नहीं है।

कार्मिक किसी भी संस्थान के हाथ होते हैं। हाथ जितना ही मजबूत होगा संस्थान का काम भी उतना ही सुव्यवस्थित और सुचारू होगा। हाथ स्वस्थ एवं तंदुरूस्त होगा तो काम भी अधिक निकालेगा। अतः हमें किसी भी प्रबंधतंत्र के लिए योग्यता प्राप्त पूर्ण कुशल एवं पूर्ण व्यावहारिक कार्मिकों की नियुक्ति को अधिक महत्व देना चाहिए। कार्मिकों को हम जितना कुशल बनाएंगे हमारा प्रबंध उतना ही कुशल होगा। फिर भी हाथ हमारा तबतक ही अपना है तबतक वह हमारे हित में काम करता है और जब वह अहित करने लगे तो वीर कुंअर सिंह की तरह काटकर फेंक देने में भी हमें संकोच नहीं करना चाहिए। जिस तरह शरीर के लिए हाथों का महत्व है उसी तरह प्रबंधन के लिए कार्मिकों का महत्व है। दोनों के बीच सौहार्दपूर्ण संबंध ही कुशल प्रबंधन की निशानी है।

सफलता की कुंजी है टीम भावना, सबको साथ लेकर चलना और सबसे अच्छे से अच्छा आउटपुट प्राप्त करने में सफल होना। टीम भावना वैसे संस्थान में ज्यादा बलवती होती है जहां कार्मिकों की भागीदारी प्रबंध में रहती है। कुछेक उदहारण इसके विपरीत भी दिए जा सकते हैं लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि इससे टीम भावना प्रभावित नहीं होती। तकनीकी उन्नयन एवं कम्प्यूटरीकरण के बाद भी टीम भावना बहुत हद तक कार्यप्रणाली एवं कार्यसंस्कृति को सजाती एवं सवांरती है। आखिर मशीन व माल दोनों को संचालित कार्मिक ही तो करते हैं।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि संस्थान दवारा सदैव सहभागिता प्रबंधन शैली को विकसित किया जाना चाहिए ताकि कार्मिक वृंद सुधार प्रक्रिया में सहभागी हो सके। किसी संस्थान की शक्ति निश्चित ही उसके ऐसे परिपक्व, सच्चे एवं प्रतिबद्ध कार्मिकों पर निर्भर करती हैं, जो अपनत्व की भावना से काम करते है।

मुख्य अधिकारी, कृषि एवं संबंध क्षेत्र, प्रधान कार्यालय, कलकत्ता-700001

विकासशील देश आने वाले वर्षों के दौरान आर्थिक भूमंडलीकरण के फायदों में अपना हिस्सा सुनिश्चित करने पर ध्यान करेंगे। भूमंडलीकरण खुशहाली के लिए संभावनाएं और अवसर प्रदान करता है।

—कोफी अन्नान, महासचिव, संयुक्त राष्ट्र संघ

भारतीय निर्यात—एक दृष्टिकोण

—हेमन्त श्रीवास्तवा

नई सहस्त्राब्दि के प्रथम चरण में संपूर्ण विश्व निःसंदेह एक नवीनतम वातावरण की अनुभूति कर रहा है। यह सभी देशों की सरकारों द्वारा आर्थिक विकास के लिए नई रणनीतियों को अपनाए जाने का समय है। ऐसे में विश्व व्यापार जगत में भी विभिन्न साधनों व संसाधनों में नई नई संभावनाएं खोजी जा रही हैं व आर्थिक विकास की प्रक्रिया को तेजी से बढ़ावा देने के लिए विदेश व्यापार पर अधिक बल दिया जा रहा है। सभी देशों द्वारा आर्थिक सुधारों के लिए किए जा रहे प्रयास एक प्रतिस्पर्धा का रूप ले चुके हैं। इसी को हम आर्थिक स्पर्धा कहते हैं। इस क्षेत्र में पूर्णतया सक्रिय भारत देश की सरकार भी ऐसी ही नीतियों पर विचार कर रही है जिसमें देश का आर्थिक सुधार निहित हो। भारत द्वारा आर्थिक सुधार के संदर्भ में अभी तक जो कदम उठाए गए वे पुनः शोधनीय हैं क्योंकि 21वीं सदी में हमें विकास की उस मंथर गति को तोड़ कर आगे निकलना पड़ेगा जिसके कारण समर्थ होते हुए भी हम अपनी अर्थव्यवस्था को विश्व आर्थिक प्रतिस्पर्धा में उचित स्थान नहीं दे सके हैं। यह एक सत्य है कि देश का आर्थिक उत्थान देश के वास्तविक विकास का प्रमुख संकेत होता है। अतः एक विकासशील देश तभी विकास की ओर अग्रसर माना जा सकता है जब उसकी आर्थिक उन्नति निरंतर प्रगतिशील हो। भारत सरकार को भी इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए नई नीतियां, प्रणालियां व सिद्धांत लागू करने होंगे एवं विदेश व्यापार की महत्ता को ध्यान में रखते हुए इसे बढ़ावा देना होगा जिससे देश का आर्थिक पटल शीघ्रातिशीर्घ सुदृढ़ हो सके।

विदेश व्यापार आर्थिक सुधारों के परिप्रेक्ष्य में एक सशक्त माध्यम है जिसमें अर्थ व्यवस्था को मजबूत बनाने का पूरा सामर्थ्य है। विशेषकर देश की निर्यात प्रणाली पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए क्योंकि विदेश व्यापार की यह एक सबसे लाभकारी कड़ी है। यद्यपि खुले व्यापार की धारणा से व्यापार जगत में असंतुष्टि व्याप्त है, विशेषकर ऐसे विकासशील देश जो विश्व व्यापार संगठन द्वारा लागू गए कानूनों से असंतुष्ट हैं, खुले व्यापार के वर्तमान स्वरूप को अपने हितों के विरूद्ध ही पा रहे हैं। एक ओर विकासशील देश हैं जो विश्व व्यापार संगठन द्वारा लागू किए गए कानूनों से असंतुष्ट होकर भी इन कानूनों को मानने पर विवश हैं। वे ऐसे विकल्पों की खोज में हैं जिनसे उनका विदेश व्यापार स्वछंद हो सके तो दूसरी ओर विकसित देश है जो विश्व व्यापार संगठन की आड़ में मनमानी कर रहे हैं। भारत की सरकार भी आर्थिक सुधारों के लिए विदेश व्यापार की महत्ता को ध्यान में रखते हुए इसे बढ़ावा देना चाहती है किंतु यहां भी विश्व व्यापार संगठन के वही कानून रोड़ा बने हुए हैं जो विकसित देशों का पक्षपात करते हैं। ऐसी परिस्थितियों में स्पष्ट रूप से यह तथ्य प्रकाश में आता है कि सरकार को कुछ ऐसे ठोस कदम उठाने होंगे जिनके माध्यम से देश की विदेश व्यापार प्रणाली विश्व व्यापार संगठन के अनावश्यक दबावों से निपट सके। कदम

905 HA/2000—9

शीघ्रातिशीघ्र उठाने होंगे।

गेट (जनरल एग्रीमेंट ऑन टेरिफ्स एण्ड ट्रेड) के गर्भ से उद्भत विश्व व्यापार संगठन आरंभ से ही संरक्षणवादी नीतियों को लागू करता रहा है। बल्कि यदि उरूग्वे दौर से ही आंकलन किया जाए तो विकासशील व गरीब देशों के हित जैसे किसी विषय पर ध्यान नहीं दिया गया क्योंकि विकसित देशाों का वर्चस्व सदैव ही व्यापार के अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर हावी रहा। यदि ऐसा न होता तो भारत के निर्यात कारोवार में आ रही गिरावट के क्या कारण माने जा सकते हैं? ऐसा इसलिए भी हो रहा है क्योंकि विकसित देशों ने तीसरी दुनियां से आयात को रोकने के व्यापक बहाने बना रखे हैं, जबकि विकसित देश अपने बचे हुए खाद्य पदार्थों को विश्व बाजारों में डंप करके प्रतिवर्ष 250 अरब डालर सबसिडी के रूप में कमा लेते हैं। इसका विकासशील देशों पर बहुत बुरा असर पड़ता है क्योंकि उनके किसानों की आजीविका तक खतरे में पड़ जाती है। इसका कारण यह है कि वे सबसिडी वाले आयात का मुकाबला नहीं कर पाते।

विकसित व औद्योगिक देश भारत जैसे विकासशली देशों से जो बढ़त हासिल कर चुके हैं उसे वे कम नहीं होने देना चाहते हैं। इसलिए वे आपस में गुटबाजी करके इन विकासशील देशों से ऐसा व्यापारिक संबंध बनाना चाहते हैं जिससे उनके देशों में आयात कम और निर्यात ज्यादा हो। इनकी कूटनीतियों से प्रभावित हमारे देश का निर्यात कारोबार वर्तमान में मात्र 35 अरब डॉलर है जो कि कुल विश्व व्यापार में बहुत कम है। कपड़ सॉफ्टवेयर व जवाहरात जैसे निर्यातों को छोड़कर भारतीय निर्यात व्यापार मात्र चार अरब डॉलर है। निर्यात कारोबार की इस गिरावट पर यदि शीघ्र अंकुश न लगाया गया तो देश की अर्थव्यवस्था पर इसका कुप्रभाव पड़ेगा। सरकार को तत्काल इस दिशा में कदम उठाने चाहिए तथा ऐसी स्वच्छंद निर्यात प्रणाली की संरचना करनी चाहिए जिसमें देश का वर्तमान निर्यात कारोबार विश्व व्यापार संगठन के अनुचित कानूनों को और न ढोए। बल्कि देश के हित को प्राथमिकता देते हुए सरकार को विश्व व्यापार संगठन के उन सभी कानूनों क बहिष्कर कर देना चाहिए जो देश के आर्थिक उत्थान में बाधा बन रहे हैं।

ज्ञातत्य है कि हाल ही में वाणिज्य मंत्री श्री मुरासोली मारन ने निर्यात संवर्द्धन परिषदों के साथ 3 जनवरी को हुई चर्चा में निर्यात संबंधी समस्याओं पर विशेष ध्यान देने पर सहमति दी थी। इनमें मुख्यतः विदेशी मुद्रा कमाने वाले प्रत्येक व्यक्ति को निर्यात सुविधा देना, सर्वाधिक विदेशी मुद्रा अर्जित करने वाली छोटी या बहुत छोटी इकाइयों पर भी विशेष ध्यान देना तथा सेवा क्षेत्र को निर्यात क्षेत्र की सुविधाएं दिए जाने का उद्देश्य था, व इन्हीं पर विशेष बल दिया जाना था। सरकार द्वारा इन क्षेत्रों में बल दिया जाना चाहिए किंतु इसके अतिरिक्त सरकार को बाहरी निवेश की वर्तमान नीतियों पर भी विशेष ध्यान देना चाहिए व इसमें कुछ परिवर्तन करने चाहिए। देश में बाहरी निवेश का दायरा बढ़ाने के लिए इन निवेशकों का लाभांश भी पुनः सुनिश्चित किया जाना चाहिए। भारत के कपड़ा, सॉफ्टवेयर, स्वर्णाभूषण जवाहरात जैसे, निर्यातक उत्पादों की विश्व के बाजारों में अच्छी मांग है। इसलिए

सरकार को छोटे व बड़े उद्यमियों को इस क्षेत्र में प्रेरित करना चाहिए व इन्हीं निर्यातकों के अधिक उत्पादन के लिए उद्यमियों को प्रोत्साहित करना चाहिए। यदि इसके लिए बाहरी निवेश का अधिक इस्तेमाल हो तो ठीक है। पर ऐसी स्थिति में सरकार को निवेशकों के लिए लाभांश की सीमाएं बना देनी चाहिए। भारतीय निर्यात कारोबार ने बीते वर्ष यानि 1999 में अप्रैल से सितम्बर की अवधि में काफी सफलता पाई थी जबकि इससे पहले इसी अवधि में हुए निर्यात से यह 20.14 प्रतिशत अधिक थी। चालू वित्तीय वर्ष में समीक्षित अवधि के दौरान हीरों के निर्यात में 17.19 प्रतिशत तथा रंगीन रत्नों के निर्यात में 12 प्रतिशत की वृद्धि दर्ज की गई थी। सोने के आभूषणों के निर्यात में इस वर्ष अपेक्षाकृत ज्यादा वृद्धि हुई है जिसके अंतर्गत 438.38 मिलियन डॉलर (1885 करोड रुपए) के स्वर्णाभूषण भारत से निर्यात किए गए जबकि गत वर्ष 391.35 मिलियन डॉलर के स्वर्णाभूषण भारत से निर्यात किए गए थे। इसके अलावा इस वर्ष रत्नों का निर्यात कारोबार 86.53 मिलियन अमेरिकी डॉलर (372 करोड़) रहा। यह पिछले वर्ष की समीक्षित अवधि में 79.90 मिलियन डॉलर था।

प्रस्तुत आंकड़ों से यह पता चलता है कि स्वर्णाभूषण व रत्नों का निर्यात कारोबार बढ़त पर है। विदेशी बाजारों में इन निर्यातकों की अच्छी मांग है। परंतु स्वर्णाभूषणों, रत्नों की निर्यात क्षमता को बनाए रखने व बढ़ाने पर विचार किया जाना आवश्यक है। इसी प्रकार कपड़ा निर्यात कारोबार भी देश में बहुत बड़े पैमाने पर है। यह देश के निर्यात के एक तिहाई हिस्से से भी अधिक है। भारत के इन निर्यातकों ने विश्व के बाजारों में स्थान बना रखा है और बढ़त पर भी हैं, परंतु देश का कुल निर्यात उतना नहीं है कि देश की अर्थव्यवस्था चीन व जापान की अर्थव्यवस्थाओं को फिलहाल चुनाती दे सके जबकि भारत विश्व में तेजी से उभरती हुई अर्थव्यवस्थाओं में से एक है।

कुल मिलाकर यह समझना कठिन नहीं है कि भारत के पास सब कुछ होते हुए भी कुछ नहीं है। क्योंकि यदि निर्यात कारोबार इसी प्रकार गिरावट पर रहा तो भारत की अर्थव्यवस्था डगमगा जाएगी। कारण चाहे विश्व व्यापार संगठन को मानिए या उसके उन कानूनों को मानिए जो विकसित व बड़े औद्योगिक देशों के हित में हैं व विकासशील देशों के आर्थिक उत्थान में बाधक हैं। जो भी हो इन परिस्थितियों में आर्थिक सुधार की प्रक्रिया को बढ़ावा दिया जाना बहुत आवश्यक है और उससे भी अधिक आवश्यकता है निर्यात प्रणाली को स्वछंद बनाने की और इस क्षेत्र में स्वछंद व स्थायी नीतियों की है। यदि सरकार भारत की निर्यात क्षमता को बढ़ाने का प्रयत्न करे तो आर्थिक विकास स्वयं सक्रिय रह सकता है।

ए-29, कैलाश कालोनी, नई दिल्ली

बैंकिंग : कल आज और कल

विजय कुमार गुप्त

इन दिनों दुनिया भर में बैंकों के स्वरूप में परिवर्तनों की चर्चा है। वित्तीय सेवाओं के उदारीकरण और टेक्नॉलॉजी के अभूतपूर्व विकास से बैंको के कारोबार में पिछले कुछ समय में बड़ा बदलाव आया है। कल तक के बहुत सारे काम जिन पर परंपरा से बैंकों का कब्जा था, अब गैर-बैंकिंग कंपनियां भी करने लगी हैं। आज अपने उद्योग के लिए धन लेने एक उद्योगपति को बैंको और वित्तीय संस्थाओं की शरण में जाना अनिवार्य नहीं है। पूंजी बाजार, मुद्रा बाजार, गैर-बैंकिंग वित्तीय संस्थाओं की मदद से आज अपने संसाधन जुटा सकता है। दूसरी ओर बैंकों ने भी धनराशि जमा करने और ऋण देने जैसे अपने परंपरागत कामों के अलावा वित्तीय गतिविधियों के बहुत से नए क्षेत्रों में प्रवेश किया है।

हमारे देश में बैंकिंग गतिविधियों का एक लंबा और दिलचस्प इतिहास रहा है। समय के साथ बैंकिग कारोबार में हमेशा ही कुछ परिवर्तन होते रहे हैं और यह कार्य एक व्यापक समाज में आते हुए बदलावों के अनुरूप निरंतर विकासमान रहा है। भारत में बैंकिग कारोबार में स्वरूप में निरंतर आए परिवर्तनों और उसके बदलते आयामों को देखना बड़ा रोचक है।

परंपरागत बैंकिग के दो मुख्य काम हैं। एक धनराशि जमा करना और दूसरा ऋण मुहैया कराना। बैंकिंग के महान लेखक श्री क्रोथर ने कहा था कि धन समतल होता है जिसे आप रखते जाएं तो वह अपने आप ऊंचा होता जाएगा। इसके अलावा धन भी होता है और एक हाथ से दूसरे हाथ तक जाता रहता है। धन के इन दोनों रूपों पर ही बैंकिंग का कारोबार टिका हुआ है।

सभी समाजों में ऐसे बहुत से लोग होते हैं जिनकी आमदनी उनके खर्च से ज्यादा है और उनके पास धन बचा रहता है। दूसरी तरफ ऐसे लोग हैं जिनकी आमदनी की तुलना में खर्च ज्यादा है और जिन्हें धन की जरूरत रहती है। बैंक का बुनियादी काम अतिरिक्त धन और धन की कमी वाले लोगों के बीच मध्यस्थ का काम करना है। एक का धन वह जमा करता है और दूसरे को वह ऋण देता है। पर इस बुनियादी काम के अलावा बैंक परम्परागत रूप से दूसरे भी कुछ काम करते रहे हैं। मसलन बिलों, हुंडियों, प्रामिसरी नोटों, कूपनों, ड्राफ्टों, वारंटियों, ऋणपत्रों, स्क्रिपों, अन्य दस्तावेजों और प्रतिभूतियों की भुनाई इत्यादि से जुड़े हुए कुछ काम। सेफ डिपाजिट लॉकर रखना, धन प्रतिभूतियों का संग्रह करने और उन्हें भेजने, ग्राहकों के अटार्नी के रूप में काम करने, किसी संपत्ति का प्रबंध करने, अपने दावों के निपटाने में किसी संपत्ति को बेचने और धन वसूल करने के लिए काम बैंकिंग व्यवसाय से जुड़े रहे हैं। व्यापारिक बैंकिंग से जुड़े अनेक काम भी बैंकों के दायरे में रहे

हैं। ये मुख्यतया ग्राहकों के बॉन्डों, स्क्रिपों और दूसरी तरह की प्रतिभूतियों को जारी करने, खरीदने बेचने, धन निवेश करने, हामीदारी देने इत्यादि से जुड़े हुए काम हैं।

भारत में बैंकिंग का आधुनिक रूप 19वीं सदी में कलकत्ता और मुंबई के इंग्लिश एजेंसी हाउस ने आरंभ किया था पर व्यवस्थित रूप 1860 में ही उभरा। बाद में स्वदेशी आंदोलन ने इंडियन ज्वाइंट स्टॉक बैंकिंग की स्थापना को प्रोत्साहन किया और आज के कुछ प्रमुख बैंक 19वीं सदी के अंतिम वर्षों में या 20वीं सदी के आरंभ में स्थापित हुए इंडियन ज्वाइंट स्टॉक बैंकों का काम मुख्यतया नकद ऋणों और ओवर ड्राफ्टों के रूप में व्यापक जगत को अल्प अवधि के लिए ऋण देना था। इस बैंको की कृषि से संबंधित वित्तपोषण में विशेष रूचि नहीं थी। हां, शहरी क्षेत्रों को अनाज भेजने के काम में वे अवश्य दिलचस्पी लेते थे। उस समय विदेशी विनियम का काम भी इन बैंकों के पास नहीं था। यह सारा काम केवल इंग्लैंड में गठित बैंकों की शाखाओं के जरिए होता था। जिन्हें 'एक्सचेंज बैंक' कहा जाता था, 1935 में जब भारतीय रिज़र्व बैंक की स्थापना हुई तब तक ऐसे 17 एक्सचेंज बैंक देश में कार्यरत थे।

रिजर्व बैंक की भूमिका

भारतीय रिजर्व बैंक की स्थापना के बाद उसे देश की बैंकिंग प्रणाली को नियंत्रित करने, उसका निरीक्षण करने और विकसित करने की जिम्मेदारी सौंपी गई। बैंकों के लिए यह अनविार्य हो गया कि वे अपनी शाखाएं खोलने से पहले रिजर्व बैंक से लायसेंस प्राप्त करें। रिजर्व बैंक ने सुव्यवस्थित प्रबंध व्यवस्था वाले बैंकों के कामकाज को मानक आधार बनाकर बैंकों के कार्य-निष्पादन का मूल्यांकन करना आंरभ किया। पर छोटे बैंक इन मानक आधारों का सामना नहीं पर पाए। पर इसी के साथ जो सुव्यवस्थित बैंक थे उनकी शाखाओं की संख्या में बढ़ोतरी हुई। वर्ष 1955 से देश में सार्वजनिक क्षेत्र की बैंकिंग व्यवस्था की शुरुआत होती है। ग्रामीण ऋण सर्वेक्षण समिति की सिफ़ारिशों को मानते हुए सरकार ने इम्पीरियल बैंक ऑफ इंडिया को राज्य की भागीदारी वाले बैंक के रूप में मान्यता दी और भारतीय स्टेट बैंक अधिनियम लाया गया। इस अधिनियम में यह कहा गया कि स्टेट बैंक को ग्रामीण क्षेत्रों में ऋण सुविधाओं की कमी को दूर करने के लिए सक्रिय भूमिका अदा करनी चाहिए।

1969 का वर्ष भारतीय बैंकिग प्रणाली के इतिहास का सर्वाधिक गौरवपूर्ण वर्ष है जब बैंकों के कारोबार को समाजोन्मुख बनाने की दिशा में एक बुनियादी कदम उठाया गया। 1969 में 14 बड़े बैंकों के राष्ट्रीकरण के पीछे मुख्य उद्देश्य यह था कि बैंकिंग का कारोबार करने वाले संस्थान देश के लाखों करोड़ों लोगों के जीवन से प्रत्यक्ष रूप में जुड़ें और देश की प्रार्थमिकताओं के अनुरूप कार्य करें। बैंकों से कहा गया कि वे कृषि, लघु उद्योगों, निर्यातों के विकास को प्राथमिकता दें, रोजगार के अवसरों को बढ़ावा देने वाली योजनाओं को धन दें। नए उद्यमियों को प्रोत्साहित करें और ग्रामीण और पिछड़े क्षेत्रों के विकास पर ध्यान

केंद्रित करें। इस तरह देश में सार्वजनिक क्षेत्र की बैंकिंग की जिम्मेदारियां बहुत बढ़ गईं। 1969 के पहले यह कार्य केवल स्टेट बैंक के हवाले था और उसका व्यापार वाणिज्यिक बैंकों के व्यापार के एक तिहाई से भी कम था।

1975 में भारत में क्षेत्रीय ग्राणमी बैंको की भी शुरुआत हुई जिनका काम पूरी तरह ग्रमीण विकास से जुड़ना था। ये बैंक ग्रामीण क्षेत्रों में ऋणों के अंतराल को भरने के लिए स्थापित किए गए ताकि छोटे किसानों, कृषि मजदूरों और ग्रामीण कारीगरों इत्यादि की जरूरतों को पूरा किया जा सके। सामान्यतः क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक किसी एक जिले या कुछ मामलों में आसपास के जिलों की जरूरतों पर ध्यान देते हैं। भारत में आज बैंकिंग का कारोबार मुख्यतया वाणिज्यिक बैंकों और सहकारी बैंकों की श्रेणियों में विभाजित है। जहां वाणिज्यिक बैंक मोटे तौर पर उद्योगों और व्यापार की जरूरतों को पूरा करते हैं, सहकारी बैंक ग्रामीण इलाकों में कृषि और उससे जुड़ी गतिविधियों और शहरी क्षेत्रों में व्यापार और सेवाओं के वित्तपोषण का कार्य करते हैं। वाणिज्यिक बैंकों की श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है।

राष्ट्रीयकरण का लाभ

1969 में राष्ट्रीकरण के बाद से हमारी बैंकिंग व्यवस्था ने देश में तरह-तरह की सामाजिक, आर्थिक गतिविधियों के विकास के लिए बहुत महत्वपूर्ण योगदान किया है। इन तीन दशकों में बैंकों की शाखाएं देश के कोने-कोने में फैल गई हैं। साधारण जनता की बचत धनराशियों को जमा करने, जरूरतमंदों को ऋण उपलब्ध कराने, उन्हें विकासपरक गतिविधियों से जोड़ने में उन्हें अभूतपूर्व सफलता मिली है। लाखों-करोड़ों साधनहीन और निर्धन व्यक्ति बैंको द्वारा शिक्षित बेरोजगारों के लिए बनाई गई स्वरोजगार योजनाओं और विभेदक ब्याज दर योजनाओं से लाभन्वित हुए हैं।

दरअसल राष्ट्रीयकरण के बाद के दो दशक भारत में जनता जनार्दन से जुड़ी बैंकिंग व्यवस्था के दशक रहे हैं। इन दो दशकों में देश में जो आर्थिक विकास हुआ, बैंक व्यवस्था पूरी तरह उसके अनुरूप रही है। हमारे बैंकिंग ढांचे में हुए इस विराट परिवर्तन और विकास की मिसाल पूरी दुनिया में कहीं नहीं है। पर यहीं एक बात यह भी स्वीकार करनी होगी कि बैंकिंग ढांचे के त्वरित विकास की वजह से बैंकों में लाभप्रदत्ता की धारणा पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जा सका। बैंकों के आंतरिक कामकाज में कुछ ढांचागत कमजोरियां भी मौजूद रही। सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों ने ग्रामीण निर्धनों, प्राथमिकता प्राप्त क्षेत्रों और कृषि की जरूरतों को पूरा करने की प्रक्रिया में विशाल प्रशासनिक लागतों और भारी अतिदेय राशियों को अनदेखा किया। ब्याज की दरें बहुत कम रखी गईं। इस सबकी वजह से बैंकों को भारी वित्तीय घाटे भी उठाने पड़े क्योंकि यह जरूरी था कि ग्रामीण और अविकसित क्षेत्रों और कमजोर वर्गों को एक उचित स्तर पर ऋण दिया जाता। परिणामस्वरूप ऋणों की वसूली का कार्य भी बहुत प्रभावशाली नहीं बन पाया। कृषि क्षेत्रों को दिए जाने वाले ऋणों की राशि

दूसरे क्षेत्रों को दिए जाने वाले ऋणों की तुलना में बहुत कम होती है इसलिए ऐसी निधियों की लागत और ब्याज दरों के बीच पर्याप्त मार्जिन नहीं होता, फिर भी समाजोन्मुख बैंकिग व्यवस्था के कारण ऐसे ऋण देने ही पड़ते हैं। भविष्य में भी एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रमों, कमजोर वर्गों और अन्य लक्ष्य समूहों को कम ब्जाज दरों पर ऋण दिया जाना अनिवार्य बना रहेगा। अतः बैंकों की लाभप्रदता इस सबसे गहरे प्रभावित हुई। अस्सी के दशक के उत्तरार्द्ध में बैंकिंग की कार्यपद्वति पर एक नए ढंग से विचार करने की आवश्यकता पैदा हो गई।

अस्सी के दशक में भारत की बैंकिंग व्यवस्था अपने तीसरे चरण में प्रवेश करती है। अस्सी के दशक में विशेषकर बाद वाले वर्षों को बाजार अर्थव्यवस्था और निजीकरण के दशक के रूप में कहा जा सकता है। सरका ने यह महसूस किया कि विश्व में हो रहे परिवर्तनों के अनुरूप अपनी आर्थिक गतिविधियों में भी कुछ परिवर्तनों का लाना जरूरी है। यह समय की मांग थी। यह अनुभव किया गया कि व्यापार और अर्थ जगत की गतिविधियों में भी कुछ परिवर्तनों का लाना जरूरी है। यह समय की मांग थी। यह अनुभव किया गया कि व्यापार और अर्थ जगत की गतिविधियों पर नियंत्रण रखने के बजाय जिन स्थितियों में बाजार सर्वोत्तम रूप में कार्य कर सकता है, उन स्थितियों में निर्णय लेने का कार्य बाजार पर ही छोड़ देना चाहिए। बाजार उदारीकरण, खुलापन और प्रतिस्पर्धा आर्थिक विकास के मूल मंत्र माने जाने लगे। आर्थिक सुधार के इन कदमों के तहत हमारी अब तक की बहुत सारी नीतियों, कार्यक्रमों और प्राथमिकताओं की पुनरीक्षा की गई और अर्थ व्यवस्था के बहुत सारे क्षेत्रों में बृहद् सुधार कार्यक्रम आरंभ किए गए।

आर्थिक उदारीकरण और बैंक

बैंकिंग व्यवस्था क्योंकि आर्थिक कारोबार का एक महत्वपूर्ण घटक है, इसलिए आर्थिक सुधार कार्यक्रम की प्रक्रिया जल्दी ही बैंकिंग व्यवस्था में दिखाई देने लगी। सच तो यह है कि हमारे यहां आर्थिक सुधार कार्यक्रम लागू देने के काफी पहले ही बैंकिंग जगत ने विश्व अर्थ जगत के परिवर्तनों से खुद को जोड़ना आरंभ कर दिया था। भारत में बहुत सारे अंतर्राष्ट्रीय बैंक बहुत सारी नई योजनाएं और उत्पाद लेकर बाजार में आए। ग्राहक सेवा की गुणवत्ता सुधारने पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा। निर्यात वित्त, रिटेल बैंकिंग और संरचना विकास को प्रमुखता दी जाने लगी। वेंचर पूंजी, लीजिंग, आवास वित्त, सूचना प्रौद्योगिकी, शेयर निर्गम और इक्विटी जैसे एकदम नए किस्म के कामों को बैंकों के कारोबार में तरज़ीह दी जाने लगी। 1991 में नरसिंहम् समिति की सिफ़ारिशों ने भारतीय बैंकिंग कारोबार में एक बुनियादी परिवर्तन लाने की पेशकश की। बैंकिंग को अंतर्राष्ट्रीय परिवेश से जोड़ने की तरफ विशेष ध्यान दिया गया। यह अनुभव किया गया अंतर्राष्ट्रीय-बैंकिंग मानकों के अनुरूप वित्तीय सुधार के अंतर्गत बढ़ती हुई पारदर्शिता और विवेकपूर्ण मानदंडों को लागू करना भी शामिल है। नरसिंहम् समिति के सुझावों के अनुरूप बैंकों को ये निर्देश दिए गए कि वे अशोध्य और संदिग्ध ऋणों के लिए प्रावधान करने और आय

निर्धारण करने में अंतर्राष्ट्रीय रूप से मान्यताप्राप्त मानदंडों का अनुसरण करें। वे अपने सभी अशोध्य और संदिग्ध ऋणों की जानकारी दें और उनके लिए प्रावधान करें। उन्हें अपने तुलनपत्र और खातों में सच्ची और सही तस्वीर पेश करनी होगी। इसके मूल वें यह भावना है कि बैंक गलत ढंग से लाभ को बढ़ा चढ़ा कर दिखाने के बजाय ईमानदारी और पारदर्शिता को सुनिश्चित करें। बैंकों से यह कहा गया कि वे पूंजी पर्याप्तता, आय निर्धारण, आस्तियों के स्पष्टीकरण के संबंध में लागू कठोर और विवेकपूर्ण मानकों का पूरी तरह पालन करें।

इसी के साथ बैंकों के प्रबंधन की गुणवत्ता में सुधार लाने के लिए अनेक नीतिगत उपाय शुरू किए गए। निरीक्षणों को प्रभावशाली बनाने पर जोर दिया गया। बैंकों के कामकाज को अधिकाधिक लाभप्रद और प्रभावक्षम बनाने की दिशा में आधुनिक टेक्नॉलाजी, कम्प्यूटर और उन्नत सूचना प्रणाली से युक्त करना आज की प्राथमिकता बन गई है।

ऐसा लगता है कि आने वाले वर्षों में बैंकिंग कारोबार में युगों पुराने नियंत्रण और अधिक शिथिल होंगे और बैंकिंग व्यवस्था जो अब तक के खास तरह के संरक्षण में कार्य करती थी उसे और अधिक प्रतियोगिता--उन्मुख बनाया जाएगा। नरसिंहम् कमेटी ने वित्तीय क्षेत्र में क्रमिक रूप से सुधार लाने के लिए जो सुझाव दिए हैं उनके आधार पर बैंकों को बदलते समय के अनुरूप अब अपने कामकाज में भारी परिवर्तन लाना जरूरी हो गया है। बैंकों के राष्ट्रीकरण के दो दशक बाद पहली बार बैंकिंग उद्योग के दरवाजे निजी क्षेत्र के बैंकों के लिए खोल दिए गए हैं। विदेशी बैंकों को भी नई शाखाएं खोलकर अपने कामकाज के आधार को मजबूत बनाने की अनुमति दी गई है। इसी प्रकार शहरी को-ऑपरेटिव बैंकों को भी अधिक शाखाएं खोलने की अनुमति दी गई है।

पिछले 20 वर्षों में सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक निधि व्यापार अर्थात जमाराशियों के संग्रहण और इन संसाधनों को उत्पादक कार्य में लगाने के एजेंट का कार्य ही करते हैं। 90 के दशक में बैंकों को मर्चेन्ट बैंकिंग, म्यूच्युअल फंड, आवास वित्त, उपभोक्ता सामग्री वित्त, वेंचरिंग के कार्य जैसे गैर-परंपरागत क्षेत्रों में अपनी गतिविधियों को फैलाना पड़ा है। भविष्य में भी ये गतिविधियां बैंकों के कार्य का अधिकाधिक महत्वपूर्ण हिस्सा बनती जाएगी। आने वाले समय में बैंकों की सफलता ज्यादातर इस बात पर निर्भर करेगी कि उन्होंने अपनी गैर-निधिक व्यापारिक गतिविधियों में कितनी विविधता पैदा की है। बैंकों की ऐसी गैर-निधिक व्यापारिक गतिविधियों में आने वाले समय में बहुत अधिक स्पर्धा भी रहेगी। इक्कीसवीं सदी में भारतीय बैंकों के समक्ष चुनौती यह होगी कि वह बैंकिंग व्यवस्था को इस प्रकार पुनर्गठित करें कि प्रशासनिक कार्यालयों का ढांचा बहुत बड़ा न हो और अलाभप्रद शाखाएं-विशेषकर जो महानगर और शहरी क्षेत्रों में अलाभप्रद शाखाएं हैं—उन्हें या तो बंद कर दिया जाए या उनका आपस में विलय कर दिया जाए। साथ ही बैंकों को शाखाओं का जो विशाल नेटवर्क है उसमें कुछ नए प्रकार के समन्वय पैदा करना भी आवश्यक हो जाएगा। इसी के साथ जहां जिन क्षेत्रों में ग्राहकों की संख्या अधिक है वहां की स्थानीय परिस्थितियों, कार्यसंस्कृति,

गतिविधियों और व्यापार की जरूरतों के हिसाब से बैंकों की कार्यपद्धति को विकसित करना अनिवार्य हो जाएगा। इसी प्रकार भविष्य में बैंकों के समक्ष यह चुनौती भी होगी कि वे बेहतर ग्राहक सेवा के लिए ऐसी योजनाएं और सेवाएं विकसित करें जो स्पर्धात्मक माहौल में उन्हें सफल बना सकें। बैंकों की गतिविधियां अधिक से अधिक उपभोक्ता केंद्रित होंगी। उत्पाद सेवाओं में अधिक से अधिक विविधता लाई जाएगी और उन सेवाओं में टेक्नोलॉजी के स्तर को उठाना बहुत बुनियादी जरूरत बन जाएगी क्योंकि नए माहौल में ग्राहकों का संतोष ही किसी बैंक की सेवाओं की सफलता की गारंटी होगा। अर्थव्यवस्था में आए परिवर्तनों से व्यापार के नए अवसर निर्मित होंगे पर उभरती हुई नई जरूरतों और प्रतिस्पर्धा के वातावरण में बैकों के प्रबंध ढांचे को भी अधिक व्यावसायिक या प्रोफेशनल बनाते जाना जरूरी हो जाएगा और उनमें अधिकाधिक गतिशीलता लाना भी आवश्यक होगा।

उत्पादकता, कुशलता और लाभप्रदता ये तीन ऐसे बिंदु हैं, जिनमें आने वाले वर्षों में बैंकों को अपनी सारी गतिविधियों को केंद्रित करना होगा। किसी भी बैंकिंग संस्थान का सफल होना उसके विकास से जुड़ा होगा और उसका विकास लाभप्रदता के मूल तत्व से जुड़ेगा। इसी बात का दूसरा पहलू यह है कि भविष्य में बैंकों के लिए रिज़र्व बैंक द्वारा निर्धारित पूंजी पर्याप्तता अनुपात को हर हालत में उपलब्ध करना और उसे बनाए रखना जरूरी होगा। उन्हें अपने अग्रिमों को इस प्रकार देना होगा कि व्यापार में घाटे की आशंका कम से कम हो। इस रणनीति के तहत बैंकों को एक ओर जहां निर्धारित पूंजी पर्याप्तता मानकों को देखते हुए अपनी लाभ प्रदता पर ध्यान देना होगा, वहीं ऋण पोर्टफोलियो की गुणवत्ता को भी बनाए रखना होगा।

ग्राहक सेवा को प्रमुखता

ग्राहक सेवा को अधिक बेहतर और कुशल बनाने की दृष्टि से भारतीय बैंकिंग उद्योग में इस समय एक प्रकार की टेक्नोलॉजी क्रांति सी हो रही है। वास्तव में आने वाले वर्षों में टेक्नोलॉजी व्यावसायिक रणनीतियों को विकसित करने में एक निर्णायक भूमिका अदा करेगी। बड़े व्यापारिक घरानों और महत्वपूर्ण ग्राहकों को बैंकों से यह उम्मीद होगी कि उन्हें कहीं भी और किसी भी समय बैंकों से व्यावसायिक संपर्क की सुविधाएं उपलब्ध हों। दिन या रात किसी भी समय ग्राहक बैंक से संपर्क करना चाहेगा। इसलिए पूरे संपर्क तंत्र को कंप्यूटरों से जोड़ना अनिवार्य होगा। बैंकिंग सेवाओं में विश्वसनीयता, पूर्णता, समयबद्धता, कुशलता और शीघ्रता पर अधिक से अधिक जोर होगा। 'एटीएम' और 'बीटीएम' भारतीय बैंकिंग व्यवस्था में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाएंगें।

बैंक अब तक परंपरागत ढंग से जिन क्षेत्रों को सेवाएं देते हैं, उनकी बजाय भविष्य में उपभोक्ता वस्तुओं के ऋणों और आवास क्षेत्रों को दिए जाने वाले ऋणों का महत्व बढ़ेगा। पूंजी पर्याप्तता मानकों को ध्यान में रखते हुए बैंक फीस आधारित गैर-निधिक व्यापारिक गतिविधियों पर ध्यान देना होगा। यह बात गैर-निधिक व्यापारिक गतिविधियों पर विशेष रूप

से लागू होगी जहां संस्था के विशेष व्यापार से प्राप्त आय को अतिरिक्त पूंजी प्रदान करने की आवश्यकता के समक्ष रखकर देखा जाएगा।

अब तक भारतीय बैंकों ने किसी भी दूसरी बात की अपेक्षा जमा राशियों की तादाद पर ही सबसे ज्यादा ध्यान दिया है। अब तक यह सिद्धांत रहा था कि ज्यादा से ज्यादा व्यापार किया जाए। इसमें लागत संबंधी तथ्य पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था क्योंकि बैंकों की चिंता यह थी कि कुछ लक्षित व्यापार स्तरों को प्राप्त किया जाए। हालांकि भारी जमा राशियों के कारण बैंक अपने संसाधनों को ऋण और आय के उच्चतम स्तरों पर लगाने के लिए जुटा लेते थे पर ऐसी जमा राशियों को जुटाने की जो लागत है वह इन वर्षों में काफी बढ़ी है। बैंक अपने कामकाज को बढ़ाते हुए निधियों को अधिक से अधिक विनियोजित तो करते रहे पर इस बात पर ध्यान कम दिया जाता रहा कि इस प्रकार के ऋणों की गुणवत्ता क्या है? आने वाले वर्षों में बैंकों को न केवल अपनी जमा राशियों को बढ़ाना होगा बल्कि वे उन जमा राशियों को जुटाने में आने वाली लागत को कम करने के प्रति भी सतर्क रहेंगे। उसके अलावा कॉरपोरेट उधारकर्ता या प्रथम श्रेणी का उधारकर्ता अब ज्यादा से ज्यादा धनराशि पूंजी बाजार से उठा रहा है, इसलिए बैंकों के समक्ष अपने संसाधनों को भारी लाभप्रदता वाले अग्रिमों के रूप में देने की एक बहुत बड़ी चुनौती भी भविष्य में रहेगी क्योंकि ऊंची गुणवत्ता वाले अग्रिम उलब्ध करने में उन्हें कठिनाई होगी। परिणामस्वरूप नए नियंत्रण मुक्त बैंकिंग माहौल में व्यावसायिक बैंकों को बहुत कम मार्जिन पर अपना काम करना होगा। उसकी वजह से बैंकों को बाजार की अनिवार्यताओं और उसके कारण जमा राशियों और अग्रिमों की ब्याज दरों में जल्दी होने वाले परिवर्तनों के प्रति भी बहुत अधिक सतर्क रहना होगा। उन्हें आस्तियों और देयताओं के प्रबंध के संबंध में बहुत कुशल रणनीतियां बनानी होंगी।

इधर के वर्षों में आस्ति गुणवत्ता का प्रश्न बैंकों के लिए बहुत महत्वपूर्ण हो गया है। भारतीय बैंकिंग क्षेत्र में गैर निष्पादक आस्तियों का स्तर एक चिंताजनक स्थिति तक पहुंच गया है। गैर निष्पादक आस्तियों का यह बढ़ा हुआ स्तर ऐसे ऋणों के कारण है जिनकी वसूली में कठिनाइयां हैं। गैर निष्पादक आस्तियों का बैंकों की नकदी स्थिति और लाभप्रदता पर काफी दबाव पड़ रहा है। बैंकों की समग्र कार्यकुशलता और विश्वसनीयता गैर-निष्पादक आस्तियों की वजह से प्रभावित हो रही है। यह वर्तमान संदर्भ में व्यापक रूप से चर्चित मुद्दा है क्योंकि सार्वजनिक क्षेत्र में बैंकों ने अपने इक्विटी आधार को विस्तृत करने के लिए पूंजी बाजार में प्रवेश किया है। भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा आय निर्धारण, आस्ति वर्गीकरण और प्रावधान संबंधी दिशा निर्देश जारी किए जाने के बाद भारत में बैंकों के लिए न केवल अपने तुलन पत्रों में वास्तविक स्थिति को दर्शाना जरूरी हो गया है, बल्कि ऋण पोर्टफोलियों को बेहतर बनाने के लिए सुधारात्मक उपाय करना भी जरूरी हो गया है। इन दिशा निर्देशों के बाद बैंक आज अपने ऋण आस्तियों की गुणवत्ता के बारे में न केवल पहले से अधिक सतर्क हैं बल्कि वे अपनी गैर-निष्पादक आस्तियों को कम करने के लिए अनेक प्रकार के कदम भी उठा रहे हैं। चूंकि 21वीं सदी की चुनौतियां सामने हैं और पिछले कुछ वर्षों में बैंकों की

प्राथमिकताओं में काफी बदलाव आया है, बैंकिंग की यात्रा विकास और सामाजिक बैंकिंग से होते हुए व्यावसायिक रूप से लाभप्रदता प्रधान बैंकिंग की ओर जा रही है। कार्य-निष्पादन में लाभप्रदता आज का मुख्य बिंदु है और इसी आधार पर आने वाले वर्षों में बैकों की वित्तीय मजबूरी और कार्यकुशलता को जांचा जाएगा। आने वाले वर्षों में बैंकों को एक स्पर्धात्मक माहौल में अधिक से अधिक विविधतापूर्ण सेवाओं को प्रदान करने, किफायती दरों पर संसाधन जुटाने, उन्हें लाभप्रद ढंग से विनियोजित करने, ब्याजदरों की परिवर्तनशीलता के अनुरूप अपने कामकाज को ढालने, ग्राहक सेवा की उत्कृष्टता और श्रेष्ठता को बनाए रखने, बदलती हुई प्रौद्योगिकी को आत्मसात कर अपनी लाभप्रदता को अधिक से अधिक बढ़ाने पर जोर देना होगा।

बाजार में निजी क्षेत्र के बैंकों, म्युच्युअल फंडों, गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियों, लीजिंग और हायर परचेज कंपनियों, मर्चेन्ट बैंकिंग व्यवस्थाओं, आवास वित्त देने वाली एजेंसियों के आ जाने से बैंकों को दिनों दिन तमाम तरह की कठोर प्रतिस्पर्धाओं से गुजरना होगा। इससे बैंकों के व्यापार का जो वर्तमान स्तर है उस पर बहुत अधिक दबाव बन गया है। सच तो यह है कि बैंकिंग क्षेत्र में आज जो परिवर्तन हो रहे हैं उनसे एक ओर जहां तमाम नए-नए अवसरों को व्यापार लाभों में बदलने की सुविधाएं निर्मित हो रही हैं वहीं दूसरी ओर अपनी परिवेशगत सूक्ष्मताओं और जटिलताओं से ज्यादा गहराई के साथ और प्रोफेशनल तरीके से जुड़ने की कठिन चुनौतियां भी आ गई हैं।

भावी चुनौतियां

विश्व बैंकिंग व्यवस्था में हो रहे परिवर्तनों से जुड़ना एक पहलू है पर एक और भी पहलू है जिसे हमारे बैंक कभी नजर अंदाज नहीं कर सकते। हमारे जैसे देश में एक साथ अनेक प्रकार के समाज, जीवन स्थितियां, सांस्कृतिक रहन-सहन और वर्ग मौजूद हैं। इसलिए बैंकिंग क्षेत्र में चाहे जो तकनीकी, क्रांति और आधुनिकता के उपकरण आ जाएं पर परंपरागत समाजोन्मुख बैंकिंग का महत्व हमारे देश में भविष्य में भी उतना ही बना रहेगा। भविष्य में भी एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रमों, कमजोर वर्गों और अन्य लक्ष्य समूहों के उत्थान के लिए एक उदार ऋण नीति का बने रहना ही जरूरी होगा। भारत में सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के समक्ष यही दोहरा दायित्व है—सामाजिक बैंकिंग की जिम्मेदारियां और साथ ही विकास के साथ बढ़ती हुई लागत को पूरा करने के लिए पर्याप्त लाभ का अर्जन। बैंकों के पास एक छोर पर यदि अति आधुनिक शहरी और महानगरीय बाजार और कारपोरेशन हैं और दूसरी ओर सदियों की अपनी निद्रा से जागता अर्ध-शहरी ग्रामीण है। आज भी सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों की दो तिहाई से अधिक शाखाएं ग्रामीण और अर्ध-शहरी क्षेत्रों में हैं। जहां एक ओर बैंकों को भविष्य में महानगरीय और शहरी क्षेत्रों में तीव्र व्यापारिक स्पर्धा के बीच आधुनिकतम सेवाओं को प्रदान करना है, वहीं दूसरी ओर ग्रामीण और अर्ध-शहरी क्षेत्रों की जनता में बचत की आदतों को विकसित करना है। उनकी सीधी सादी जरूरतों को पूरा करना है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था में आय के स्तर को उठाना है। आधुनिक विकास

की नित नई कड़ी प्रतिस्पर्धा में बने रहने की क्षमता और दूसरी ओर अपने सामाजिक दायित्वों के प्रति गहन जागरूकता का सफल समन्वय ही बैंकों में भविष्य में अनेक नई नई रणनीतियों, योजनाओं और कार्यपद्धतियों को सामने लाएगा। हम जिस दौर से आज गुजर रहे हैं उसमें आने वाले कल को सचमुच बड़ी दिलचस्पी और कौतूहल के साथ देखा जाना चाहिए।

महाप्रबंधक (हिंदी) भारतीय औद्योगिक विकास बैंक, आई डी बी आई टावर, मुंबई-400005

ऐसे समय में, यही उपयुक्त होगा कि हम भारत और उसकी जनता की सेवा करने की नई प्रतिज्ञा करें...विदेशी आधिपत्य को उखाड़ फेंकना ही सब कुछ नहीं है। जब तक प्रत्येक भारतीय आज़ादी की हवा में सांस नहीं लेता और जब तक उसके दुख दूर नहीं होते और उसकी नियति में सुधार नहीं होता, तब तक हमारा काम अधूरा है।

—जवाहर लाल नेहरू